राजा भोज

लेखक

श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ

इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०

१९३२

राजा भोज

लेखक

श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ

इलाहाबाद
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०
१९३२

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

परिशिष्ट

———

राजा भोज ।

राजा भोज को इस असार संसार से विदा हुए करीब पौने नौ सौ वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु फिर भी इसका यश भारत के एक सिरे से दूसरे तक फैला हुआ है। भारतवासियों के मतानुसार यह नरेश स्वयं विद्वान् और विद्वानों का आश्रयदाता था। इसीसे हमारे यहाँ के अनेक प्रचलित किस्से-कहानियों के साथ इसका नाम जुड़ा हुआ मिलता है।

राजा भोज का वंश ।

यह राजा परमार वंश में उत्पन्न हुआ था। यद्यपि इस समय मालवे के परमार अपने को विक्रम संवत् के चलाने वाले प्रसिद्ध नरेश विक्रमादित्य[1] के वंशज मानते हैं, तथापि इनके पुराने शिला-लेखों, दान-पत्रों और ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस विषय का कुछ भी उल्लेख न मिलने से केवल आधुनिक दन्तकथाओं पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि वास्तव में पूर्वकाल के परमार-नरेशों का भी ऐसा ही विश्वास होता तो मुञ्ज और भोज जैसे विद्वान् नरेश अपनी प्रशस्तियों में अपना विक्रम के वंशज होने का गौरव प्रकट किये बिना कभी न रहते, परन्तु उनमें तो परमार वंश का वसिष्ठ के अग्निकुंड से उत्पन्न होना लिखा मिलता है। आगे इस विषय के कुछ प्रमाण उद्धृत किए जाते हैं।

---

[1] विक्रमादित्य के विषय में ऐतिहासिकों में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम के साथ विक्रमादित्य की उपाधि लगी देख कर उसे ही विक्रम संवत् का प्रवर्तक मानते हैं।

(भारत के प्राचीन राजवंश, भा० २, पृ० ३८६-३६२)

उदयपुर[1] (ग्वालियर) से मिली एक प्रशस्ति में लिखा[2] है कि एक बार विश्वामित्र नामक ऋषि पश्चिम दिशा में स्थित, आबू[3] पहाड़

---

[1] इस चरित के नायक राजा भोज का उत्तराधिकारी जयसिंह था और उसके पीछे उदयादित्य गद्दी पर बैठा। इसी उदयादित्य ने अपने नाम पर यह उदयपुर नगर बसाया था।

[2] अस्त्युर्वीध्रः प्रतीच्यां हिमगिरितनयः सिद्धदं [दां] पत्यसिद्धेः।
स्थानञ्च ज्ञानभाजामभिमतफलदोऽखर्वितः सोऽर्व्वुदाख्यः॥
विश्वामित्रो वसिष्ठादहरत व[ल] तो यत्र गां तत्प्रभावा-
ज्जज्ञे वीरोग्निकुण्डाद्रिपुवलनिधनं यश्चकारैक एव [५]
मारयित्वा परान्धेनुमानिन्ये स ततो मुनिः।
उवाच परमारा [ख्यपा] र्थिवेन्द्रो भविष्यसि [६]
तदन्ववायेऽखिलयज्ञसंघतृप्तामरोदाहृतकीर्तिरासीत्।
उपेन्द्रराजो द्विजवर्गरत्नं सौ(शौ)र्य्यार्ज्जितोत्तुङ्गनृपत्व[मा]नः[७]
(ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३४)

[3] आबू पहाड़ की उत्पत्ति के विषय में लिखा मिलता है कि पहले इस स्थान पर उत्तङ्क मुनि का खोदा हुआ एक गड्ढा था और उसी के पास वसिष्ठ ऋषि ने अपना आश्रम बनाया था। एक बार वहीं आसपास में चरती हुई वसिष्ठ की गाय उस गड्ढे में जा गिरी। यह देख आगे फिर होने वाली ऐसी ही घटना से बचने के लिये वसिष्ठ ने, अर्बुद नामक सर्प के द्वारा, हिमालय के नन्दिवर्धन नामक शिखर को मँगवाकर उस गड्ढे को भरवा दिया।

अर्बुद नामक सर्प द्वारा लाए जाने के कारण ही उस शिखर का नाम अर्बुद (आबू) हो गया।

गिरवर (सिरोही राज्य) के पाट नारायण के मन्दिर से मिले, वि० सं० ११८७ (ई० सं० ११३०) के लेख से भी उपर्युक्त कथा की ही पुष्टि होती है। उसमें लिखा है:—

पर के, वसिष्ठ के आश्रम में घुस कर उसकी गाय को छीन ले गया। इस पर वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए एक वीर ने शत्रुओं का नाश कर उसकी गाय उसे वापिस ला दी। यह देख मुनि ने उस योद्धा का नाम परमार रख दिया और उसे राजा होने का आशीर्वाद दिया।

उसी परमार के वंश में द्विज-वर्ग में रत्नरूप और अपने भुजबल से नरेश-पद को प्राप्त करने वाला उपेन्द्रराज[1] नाम का राजा हुआ।

पद्मगुप्त[2] (परिमल) के बनाये 'नवसाहसाङ्कचरित' में

उत्तङ्कसुषिरे भीमे वशिष्ठो नन्दिवर्द्धनम्।
किलाद्रिं स्थापयामास भुजङ्गार्बुदसंज्ञया॥

इसी प्रकार जिन प्रभसूरि के बनाए अर्बुद कल्प में भी लिखा है:—

नन्दिवर्धन इत्यासीत्प्राक् शैलोयं हिमाद्रिजः।
कालेनार्बुदनागाधिष्ठानात्त्वर्बुद इत्यभूत् ॥२५॥

[1] इसकी सातवीं पीढ़ी में राजा भोज हुआ था।

[2] यह मृगाङ्कगुप्त का पुत्र और भोज के चचा मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) का सभा-कवि था।

तंजोर से मिली नवसाहसाङ्कचरित की एक हस्तलिखित पुस्तक से इस कवि का दूसरा नाम कालिदास होना पाया जाता है। यद्यपि इस कवि ने अपने आश्रयदाता मुञ्ज के मरने पर कविता करना छोड़ दिया था, तथापि अन्त में मुञ्ज के छोटे भ्राता (भोज के पिता) सिन्धुराज के कहने से नवसाहसाङ्कचरित नामक १८ सर्गों के काव्य की रचना की थी। यह घटना स्वयं कवि ने अपने काव्य में इस प्रकार लिखी है:—

दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रामदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।
तस्यानुजन्मा कविबांधवोसौ भिनत्ति तां संप्रति सिन्धुराजः॥
(सर्ग १, श्लोक ८)

लिखा[१] है कि सरिताओं से सुशोभित आबू पर्वत पर, फल-मूल आदि की अधिकता को देख, मुनि वसिष्ठ ने वहाँ पर अपना आश्रम बनाया था। एक रोज विश्वामित्र वहाँ से उसकी गाय को छीन ले गया।[२] इस

इस काव्य में सिन्धुराज की कल्पित (आलङ्कारिक) कथा लिखी गई है।

(भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० १०७—११०)

[१] ब्रह्माण्डमण्डपस्तम्भः श्रीमानस्त्यर्बुदो गिरिः।
उपोढहंसिका यस्य सरितः सालभञ्जिकाः ॥४९॥

* * *

अतिस्वाधीननीवार-फल-मूल-समित्कुशम्।
मुनिस्तपोवनं चक्रे तत्रेक्ष्वाकुपुरोहितः ॥६४॥
हृता तस्यैकदा धेनुः कामसूर्गाधिसूनुना।
कार्तवीर्यार्जुनेनैव जमदग्नेरनीयत ॥६५॥
स्थूलाश्रुधारासन्तानस्नपितस्तनवल्कला।
अमर्षपावकस्याभूद्भर्तुस्समिदरुन्धती ॥६६॥
अथाथर्वविदामाद्यस्समन्त्रामाहुतिं ददौ।
विकसद्विकटज्वालाजटिले जातवेदसि ॥६७॥
ततः क्षणात्स कोदण्डः किरीटी काञ्चनाङ्गदः।
उज्जगामाग्नितः कोऽपि सहेमकवचः पुमान् ॥६८॥
दूरं सन्तमसेनेव विश्वामित्रेण साहृना।
तेनानिन्ये मुनेर्धेनुर्दिनश्रीरिव भानुना ॥६९॥

* * *

परमार इति प्रापत्समुनेर्नाम चार्थवत्।
मीलितान्यनृपच्छत्रमातपत्रञ्च भूतले ॥७१॥

(सर्ग ११)

[२] वसिष्ठ और विश्वामित्र के इस झगड़े का हाल वाल्मीकीय रामायण में भी आया है। परन्तु उसमें वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से एक पुरुष के

पर वसिष्ठ की स्त्री अरुन्धती रोने लगी। उसकी ऐसी अवस्था को देख मुनि को क्रोध चढ़ आया और उसने अथर्व मंत्र पढ़ कर आहुति के द्वारा अपने अग्निकुंड से एक वीर उत्पन्न किया। वह वीर शत्रुओं का नाशकर वसिष्ठ की गाय को वापिस ले आया। इससे प्रसन्न होकर मुनि ने उसका नाम परमार रक्खा और उसे एक छत्र देकर राजा बना दिया।

धनपाल[१] नामक कवि ने वि० सं० १०७० (ई० स० १०१३) के करीब राजा भोज की आज्ञा से तिलकमञ्जरी नामक गद्य काव्य लिखा था। उसमें लिखा है[२] :—

आबू पर्वत पर के गुर्जर लोग, वसिष्ठ के अग्निकुंड से उत्पन्न हुए और विश्वामित्र को जीतनेवाले, परमार नामक नरेश के प्रताप को अब तक भी स्मरण किया करते हैं।

गिरवर (सिरोही राज्य) के पाट नारायण के मन्दिर के वि० सं० १३४४ (ई० स० १२८७) के लेख में इस वंश के मूल पुरुष का नाम

उत्पन्न होने के स्थान पर वसिष्ठ की नन्दिनी गाय के हुंकार से पल्हव, शक, यवन, आदि म्लेच्छों का उत्पन्न होना लिखा है :—

तस्या हुंभारवोत्सृष्टाः पल्हवाः शतशो नृप ॥१८॥

❀ ❀ ❀

भूय एवासृजद्‌घोराच्छकान्यवनमिश्रितान् ॥२१॥

(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५५)

[१] इस कवि का पूरा हाल आगे अन्य कवियों के इतिहास के साथ मिलेगा।

[२] वासिष्ठैस्म कृतस्मयो वरशतैरस्त्यग्निकुण्डोद्भवो।
भूपालः परमार इत्यभिधया ख्यातो महीमण्डले॥
अद्याप्युद्गतहर्षगद्गदगिरो गायन्ति यस्यार्बुदे।
विश्वामित्रजयोज्झितस्य भुजयोर्विस्फूर्जितं गुर्जराः॥३९॥

परमार के स्थान पर धौमराज दिया है और साथ ही उसे परमारवंशी और वसिष्ठ गोत्री लिखा है।[1]

संस्कृत में परमार शब्द की व्युत्पत्ति 'परान् मारयतीति परमारः'[2] होती है और इसका अर्थ 'शत्रुओं को मारनेवाला' समझा जाता है।

परमारों के मूल पुरुष ने वसिष्ठ के शत्रुओं को मारा था, इसी से वह परमार कहाया। यह बात आबू पर के अचलेश्वर के मन्दिर से मिले लेख से भी सिद्ध होती है। उसमें लिखा है[3] :—

वसिष्ठ ने अपने अग्निकुंड से उत्पन्न हुए पुरुष को शत्रुओं का नाश करने में समर्थ देख कर उसका नाम परमार रख दिया। परन्तु हलायुध[4] ने अपनी 'पिङ्गलसूत्रवृत्ति' में परमार वंश को अग्निवंशी

---

[1] आनीतधेन्वे परनिर्जयेन
मुनिः स्वगोत्रं परमारजातिम्।
तस्मै ददावुद्धतभूरिभाग्यं
तं धौमराजं च चकार नाम्ना ॥४॥
(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ४५, पृ० ७७)

[2] तत्पुरुष समास।

[3] तत्राथ मैत्रावरुणस्य जुह्वत-
श्चण्डोग्निकुण्डात्पुरुषः पुराभवत्।
मत्वा मुनीन्द्रः परमारणक्षमं
स व्याहरत्तं परमारसंज्ञया ॥११॥

[4] कथाओं से ज्ञात होता है कि जिस समय यह हलायुध भोज के चचा मुञ्ज का न्यायाधिकारी था उस समय इसने 'राजव्यवहारतत्त्व' नाम की एक कानून की पुस्तक भी लिखी थी।

न लिखकर 'ब्रह्मक्षत्रकुलीनः' लिखा है।[1] यह विचारणीय है। सम्भवतः इस पद का प्रयोग या तो ब्राह्मण वसिष्ठ को शत्रु के प्रहारों से बचाने वाला वंश मानकर ही किया गया होगा,[2] या ब्राह्मण वसिष्ठ के द्वारा (अग्निकुंड) से उत्पन्न हुए क्षत्रिय वंश की सन्तान समझ कर ही। परन्तु फिर भी इस पद के प्रयोग से इस वंश के ब्राह्मण और क्षत्रिय की मिश्रित सन्तान होने का सन्देह भी हो सकता है।[3]

---

[1] ब्रह्मक्षत्रकुलीनः प्रलीनसामन्तचक्रनुतचरणः ।
सकलसुकृतैकपुञ्जः श्रीमान्मुञ्जश्चिरं जयति ॥

[2] क्षतः त्रायते इति क्षत्रं । ब्रह्मणः क्षत्रं ब्रह्मक्षत्रम् ।
एतादृशं कुलं, तत्र जातः 'ब्रह्मक्षत्रकुलीनः' ।

कालीदास ने भी अपने रघुवंश में लिखा है :—

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।
(सर्ग २, श्लोक ५३)

[3] इस सन्देह की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण भी सहायता देते हैं :—

उदयपुर (ग्वालियर) से मिली प्रशस्ति में लिखा है :—

मारयित्वा परान्धेनुमानिन्ये स ततो मुनिः ।
उवाच परमारा [ख्यपा] र्थिवेन्द्रो भविष्यसि [६]
तदन्ववाये ऽखिलयज्ञसंघ-
तृप्तामरोदाहृतकीर्तिरासीत् ।
उपेन्द्रराजो द्विजवर्गरत्नं
सौ [शौ] र्यार्ज्जितोत्तुङ्गनृपत्व [मा] नः [७]
(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३४)

यहाँ पर मालवे के प्रथम परमार नरेश उपेन्द्रराज का एक विशेषण 'द्विजवर्गरत्नं' भी मिलता है।

सूर्य, चन्द्र और और अग्निवंश की पौराणिक कल्पनाओं को नहीं माननेवाले ऐतिहासिकों का अनुमान है कि एक समय बहुत से क्षत्रिय वैदिक और पौराणिक धर्मों से विमुख होकर बौद्ध और जैन धर्मों के अनुयायी हो गए थे। परन्तु कुछ समय बाद आबू के वसिष्ठगोत्री ब्राह्मणों ने उन्हीं में से कुछ क्षत्रियों को प्रायश्चित्त और हवन आदि द्वारा फिर से ब्राह्मण धर्म का अनुयायी बनाकर इस क्षत्रिय-वंश की उत्पत्ति की होगी।

पृथ्वीराज रासो में इस वंश की क्षत्रियों के ३६ वंशों में गिनती की गई है।[1]

वसन्तगढ़ में मिले वि० सं० १०६६ (ई० स० १०४२) के पूर्णपाल के लेख से ज्ञात होता है कि आबू के परमार नरेश पूर्णपाल की बहन का विवाह विग्रहराज के साथ हुआ था। आगे उसी लेख में इस विग्रहराज के पूर्वज योट के लिये लिखा है :—

आसीद्द्विजातिर्व्विदितो धरण्यां
ख्यातप्रतापो रिपुचक्रमर्दी।
योटः स्वसो (शौ) र्य्यार्जितभूपशब्दः
क्षोणीश्वर—[नृ] पप्रधानः ॥ १२ ॥
(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ६, पृ० १२-१५)

अर्थात्—द्विजाति योट ने अपने बाहुबल से ही राजा की उपाधि प्राप्त की थी।

यद्यपि याज्ञवल्क्यस्मृति के लेखानुसार :—

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्मणः क्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥३६॥
(आचाराध्याय)

अर्थात्—जन्म के बाद मौञ्जिबन्धन संस्कार होने के कारण ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण द्विज कहलाते हैं।

तथापि ऊपर उद्धृत किए गए द्विज शब्द के प्रयोग कुछ खटकते हैं।

[1] 'रवि ससि जाधववंस ककुस्थ परमार सदावर।'

परमारों के राज्य

पहले लिखा जा चुका है कि इस वंश की उत्पत्ति आबू पर्वत पर हुई थी। इसलिये अधिक सम्भव यही है कि इनका पहला राज्य भी वहीं पर स्थापित हुआ होगा[1]। परन्तु मालवे के परमारों की प्रशस्तियों

---

[1] आबू के परमारों की वंशावली

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष
	धौमराज	इस वंश का मूल पुरुष	
१	सिन्धुराज	धौमराज के वंश में	वि० सं० १२१८ के किराडू (जोधपुर राज्य) से मिले परमार सोमेश्वर के लेख में इसे मारवाड़ का राजा लिखा है।*
२	उत्पलराज	सं० १ का पुत्र	वि० सं० १०९९ के वसंतगढ़ से मिले पूर्णपाल के लेख में उत्पलराज से ही वंशावली दी है।
३	आरण्यराज	सं० २ का पुत्र	
४	कृष्णराज (प्रथम)	सं० ३ का पुत्र	
५	धरणीवराह	सं० ४ का पुत्र	पाटण (अणहिलवाड़े) के राजा मूलराज सोलंकी ने जिस समय, वि० सं० १०१७ से १०५२ के बीच, इस

---

* सिन्धुराजो महाराजः समभून्मरुमण्डले।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			पर हमला किया था उस समय इसे हथूँडी के राष्ट्रकूट नरेश धवल* की शरण लेनी पड़ी थी।
६	महीपाल (देवराज)	सं० ५ का पुत्र	इसका वि० सं० १०५६ का एक दान-पत्र मिला है।
७	धन्धुक	सं० ६ का पुत्र	जिस समय इस पर पाटण के सोलंकी नरेश भीमदेव प्रथम ने चढ़ाई की थी उस समय यह भागकर चित्तौड़ (मेवाड़) में स्थित मालव नरेश भोज की शरण में चला गया था।
८	पूर्णपाल	सं० ७ का पुत्र	इसके समय के तीन शिला-लेख मिले हैं। इनमें के दो वि० सं० १०९९ के† और तीसरा वि० सं० ११०२ का है।
९	कृष्णराज (द्वितीय)	सं० ८ का छोटा भाई	इसके समय के दो शिला-लेख मिले हैं। इनमें का पहला वि० सं० १११७ का‡ और दूसरा ११२३ का§ है। सोलंकी भीमदेव प्रथम ने इसे क़ैद कर दिया था। परन्तु नाडोल के चौहान नरेश बालप्रसाद ने इसकी

* भारत के प्राचीन राजवंश, भाग ३, पृष्ठ ९२।

† ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भाग ९, पृ० १२-१५।

‡ बांबे गज़टियर, भा० १, खण्ड १, पृ० ४७२-४७३।

§ बांबे गज़टियर, भा० १, खण्ड १, पृ० ४७३-४७४।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			सहायता कर इसे छुड़वा दिया।* सम्भवतः किराडू के परमारों की शाखा इसी से चली होगी।
१०	ध्रुवभट	सं० ६ का वंशज	इसका कृष्णराज द्वितीय से क्या सम्बन्ध था, इसका कुछ भी पता नहीं चलता।
११	रामदेव	सं० १० का वंशज	यह किसका पुत्र था यह भी ज्ञात नहीं होता।
१२	विक्रमसिंह	सं० ११ का उत्तराधिकारी	वि० सं० १२०१ के करीब, जिस समय, सोलंकी कुमारपाल ने अजमेर के चौहान नरेश अर्णोराज पर चढाई की थी, उस समय यह भी उसके साथ था।† परन्तु ऐसा भी लिखा मिलता है कि युद्ध के समय यह शत्रुओं से मिल गया था। इसीसे कुमारपाल ने इसे क़ैद कर आबू का राज्य इसके भतीजे यशोधवल को दे दिया।‡
१३	यशोधवल	सं० १२ का भतीजा	इसके समय का वि० सं० १२०२ का एक शिला-लेख मिला है। इसने सोलंकी कुमारपाल के शत्रु मालवराज बल्लाल को मारा था।§

* ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ६, पृ० ७५-७६।

† द्वयाश्रयकाव्य, सर्ग १६, श्लो० ३३-३४।

‡ कुमारपालप्रबंध।

§ यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिप्रत्यर्थितामागतम्।

सं०	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
१७	धारावर्ष	सं० १३ का पुत्र	इसने सोलंकी कुमारपाल की सेना के साथ रहकर उत्तरी कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन को मारने में बड़ी वीरता दिखाई थी। यह, गुजरात की सेना के साथ रहकर, अणहिलवाड़े पर चढ़ कर जाते हुए, कुतुबुद्दीन ऐबक से, आबू पर्वत के नीचे के कायद्रां नामक गाँव के पास दो बार लड़ा था। इनमें की दूसरी लड़ाई वि० सं० १२५३ में हुई थी। यद्यपि सोलंकी भीमदेव द्वितीय के समय उसके अन्य सामन्तों के समान ही यह भी स्वतन्त्र हो गया था तथापि दक्षिण के यादव राजा सिंहण और देहली के सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश की गुजरात पर की चढ़ाई के समय यह उसकी सहायता को तैयार हुआ था। यह राजा बड़ा पराक्रमी था। इसने एक ही तीर से तीन भैंसों के पेट छेद दिये थे।* आबू पर

मल्लामल्लरमेष मालवपतिं बल्लालमालब्धवान् ॥३५॥
(ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० २१०-२११)

यह बल्लाल कौन था, इसका पता नहीं लगता है।

* आबू पर के पाट नारायण के वि० सं० १३४४ के लेख में लिखा है :—

एकबाणनिहतं त्रिलुलुलायुं यं निरीक्ष्य कुरुयोधसदृशं।
(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ४५, पृ० ७७)

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			के अचलेश्वर के मन्दिर के बाहर, मन्दाकिनी नामक कुण्ड पर इसकी धनुष लिए एक पाषाण की मूर्ति खड़ी है। उसके आगे पत्थर के पूरे कद के तीन भैंसे रक्खे हुए हैं, और उनके पेट में आरपार समानान्तर रेखा में छेद बने हैं। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है। इसके समय के वि० सं० १२२०, १२३७, १२४६, १२६५ और १२७६ के लेख मिले हैं।
१५	सोमसिंह	सं० १४ का पुत्र	इसके समय के तीन लेख मिले हैं। दो वि० सं० १२८७ के* और तीसरा वि० सं० १२६३ का है।
१६	कृष्णराज (तृतीय)	सं० १५ का पुत्र	
१७	प्रतापसिंह	सं० १६ का पुत्र	इसने जैत्रकर्ण (सम्भवतः मेवाड़ नरेश जैत्रसिंह) को हराकर चन्द्रावती में फिर से परमार वंश का अधिकार स्थापन किया था। वि० सं० १३४४ का इसके समय का एक शिला-लेख मिला है।†

इस वंश के नरेशों की रजधानी चन्द्रावती‡ थी और उसका अधिकार

* ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० २०८—२२२।

† इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ४५, पृ० ७७।

‡ इस नगरी के खंडहर सिरोही राज्य में आबूरोड स्टेशन से करीब ४ मील दक्षिण में विद्यमान हैं।

को देखने से अनुमान होता है कि आबू पर के परमार राज्य और मालवे पर के राज्य की स्थापना का समय करीब करीब एक ही था[1]।

आबू पर्वत, उसके आसपास के प्रदेश, सिरोही, पालनपुर* तथा मारवाड़ और दाँता राज्यों के एक भाग पर था।

विक्रम संवत् की दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में अणहिलवाडे (पाटण) में चालुक्यों (सोलंकियों) और ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में नाडोल (मारवाड़) में चौहानों का राज्य स्थापित हो जाने से वे लोग परमारों के राज्य को इधर उधर से दबाने लगे थे। परन्तु वि० सं० १३६८ के करीब (देवड़ा) चौहान राव लुंभा ने इन (परमारों) के राज्य की समाप्ति कर दी।

वि० सं० १३०० का चन्द्रावती के महाराजाधिराज आल्हणसिंह का एक शिला-लेख कालागरा नामक गाँव (सिरोही राज्य) से और विक्रम सं० १३५६ का महाराज कुल (महारावल) विक्रम सिंह का शिलालेख वर्माण नामक गाँव (सिरोही राज्य) से मिला है। परन्तु ये नरेश कौन थे और इनका आबू के परमार नरेशों से क्या सम्बन्ध था इस बात का पूरा पता नहीं चलता।

[1] मि० वी० ए० स्मिथ आबू के परमार राज्य का मालवे के परमार राज्य से बहुत पहले स्थापित होना मानते हैं।

(अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४१०)

---

* आबू के परमार नरेश धारावर्ष का छोटा भाई प्रल्हादनदेव बड़ा ही विद्वान् और वीर था। उसका बनाया 'पार्थपराक्रम व्यायोग' और उसके द्वारा की गई, मेवाड़ नरेश सामन्त सिंह और गुजरात के सोलंकी नरेश अजयपाल के आपस के युद्ध के समय की, गुजरात की रक्षा इसके प्रमाण हैं।

इसी प्रल्हादन ने अपने नाम पर 'प्रल्हादनपुर' नामक नगर बसाया था जो आजकल पालनपुर के नाम से प्रसिद्ध है। 'पार्थपराक्रमव्यायोग' औरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा से प्रकाशित हो चुका है।

जालोर के परमारों की वंशावली

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
१	वाक्पतिराज	सम्भवतः धरणी-वराह का वंशज	
२	चन्दन	सं० १ का पुत्र	
३	देवराज	सं० २ का पुत्र	
४	अपराजित	सं० ३ का पुत्र	
५	विज्जल	सं० ४ का पुत्र	
६	धारावर्ष	सं० ५ का पुत्र	
७	वीसल	सं० ६ का पुत्र	वि० सं० ११७४ का इसके समय का एक लेख मिला है।

किराडू के परमारों की वंशावली

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
१	सोछराज	इस शाखा का प्रवर्तक	यह आबू के परमार नरेश कृष्णराज द्वितीय का पुत्र था।
२	उदयराज	सं० १ का पुत्र	इसने, गुजरात नरेश सोलंकी जयसिंह (सिद्धराज) के सामन्त की हैसियत से चोड, गौड, कर्णाट और मालवे वालों से युद्ध किए थे।
३	सोमेश्वर	सं० २ का पुत्र	इसने सोलंकी जयसिंह (सिद्धराज) की कृपा से, सिन्धुराजपुर के राज्य को फिरसे प्राप्त कर लिया था।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			इसी ने वि० सं० १२१८ में जज्जक से १७०० घोड़े दण्ड स्वरूप लिये थे और उसके तणु कोट्ट (तँनोट, जैसलमेर राज्य में) और नवसर (नौसर, जोधपुर राज्य में) के दो क़िले भी छीन लिए थे। परन्तु अन्त में जज्जक के सोलंकी कुमारपाल की अधीनता स्वीकार कर लेने पर वे क़िले उसे वापिस लौटा दिए। इसके समय का वि० सं० १२१८ का एक लेख किराडू से मिला है।

इसके बाद का इस शाखा का इतिहास नहीं मिलता है।

दाँता के परमार

यद्यपि हिन्दराजस्थान नामक गुजराती भाषा में लिखे इतिहास में यहाँ के परमारों का सम्बन्ध मालवे के परमारों की शाखा से बतलाया गया है, तथापि ये आबू के परमार कृष्णराज द्वितीय के वंशधर ही प्रतीत होते हैं।

इसके अलावा मारवाड़ राज्य के रोल नामक गाँव से भी इनके ११५२ से १२४५ तक के ४ शिला-लेख मिले हैं।

(भारत के प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० ८७)

राजा भोज के पूर्वज ।

राजा भोज मालवे के परमारों की शाखा में नौवाँ राजा था ।[1]

[1] मालवे के परमारों की वंशावली

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
१	उपेन्द्र* (कृष्ण राज)	मालवे के परमार राज्य का संस्थापक	'नवसाहसाङ्क चरित' के एक श्लोक† से ज्ञात होता है कि सीता नामकी विदुषी ने इसकी प्रशंसा में कोई काव्य लिखा था ।
२	वैरसिंह (प्रथम) (वज्रट)	सं० १ का पुत्र	इसके छोटे पुत्र डंबरसिंह से बागड़ (डूंगरपुर और बांसवाड़े में) के पर-

* कुछ लोग इस उपेन्द्र और आबू की शाखा के उत्पलराज का एक होना अनुमान करते हैं ।

† सदागतिप्रवृत्तेन सीतोच्छ्वसितहेतुना ।

हनूमतेव यशसा यस्याऽलङ्घ्यत सागरः ॥७७॥

(नवसाहसाङ्क चरित, सर्ग ११)

(यद्यपि 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और 'भोज प्रबन्ध' में सीता पंडिता का भोज के समय होना लिखा है, तथापि 'नवसाहसाङ्क चरित' का लेख इस विषय में अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है ।)

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			मारों की शाखा चली थी।* परन्तु वि० सं० १२३६ के अर्थूणा से मिले लेख में डंबरसिंह को वैरिसिंह का छोटा भाई लिखा है।
३	सीयक	सं० २ का पुत्र	
४	वाक्पति राज (प्रथम)	सं० ३ का पुत्र	उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति में इसको उज्जैन की तरुणियों के नेत्ररूपी कमलों के लिये सूर्य समान लिखा है। इससे अनुमान होता है कि शायद उस समय वहीं पर इसकी राजधानी होगी।

* वागडवालों की वंशावली इस प्रकार मिलती है: —

१ डंबरसिंह, २ धनिक (यह सं० १ का उत्तराधिकारी था), ३ चच (यह सं० २ का भतीजा था), ४ कंकदेव (यह सं० ३ का उत्तराधिकारी था और मालवे के परमार नरेश श्रीहर्ष की तरफ़ से कर्णाटक के राष्ट्रकूट राजा खोट्टिगदेव से लड़ता हुआ नर्मदा के तट पर मारा गया।), ५ चण्डप (यह सं० ४ का पुत्र था), ६ सत्यराज (सं० ५ का पुत्र), ७ लिंबराज (सं० ६ का पुत्र), ८ मण्डनदेव (मण्डलीक सं० ७ का छोटा भाई। इसके समय का वि० सं० १११६ का एक लेख मिला है।), ९ चामुण्डराज (यह सं० ८ का पुत्र था। इसके समय के वि० सं ११३६, ११३७, ११५७ और ११५९ के चार लेख मिले हैं।), १० विजयराज (सं० ९ का पुत्र। इसके समय के वि० सं० ११६५ और ११६६ के दो लेख मिले हैं।)

इसके बाद के इस शाखा के नरेशों का पता नहीं चलता। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि मेवाड़ नरेश सामन्तसिंह और उसके वंशजों ने इनके राज्य पर अधिकार कर लिया होगा।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
५	वैरिसिंह(द्वितीय) (वज्रट स्वामी)	सं० ४ का पुत्र	
६	श्रीहर्ष (सीयक द्वितीय, सिंहभट)	सं० ५ का पुत्र	इसने राष्ट्रकूट नरेश खोट्टिग पर चढ़ाई कर उसे नर्मदा के तट पर के खिलिघट्ट नामक स्थान पर हराया था।* इसके बाद वहाँ से आगे बढ़, वि० सं० १०२९ में, इसने उसकी राजधानी मान्यखेट को भी लूटलिया। यह बात धनपाल की इसी वर्ष की बनाई 'पाइअलच्छी नाम माला' से प्रकट होती है।† इसने हूणों को भी जीता था। वि० सं० १००५ का इस राजा का एक दानपत्र मिला है।‡
७	मुञ्ज (वाक्यपति राज द्वितीय)	सं० ६ का पुत्र	यह बड़ा ही प्रतापी§ और विद्वान् राजा था। इसने कर्णाट, लाट, (केरल

* ऐपिग्राफिया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५।

† विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि।
मालवनरिंद धाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि ॥२७८॥

‡ पुरातत्व (गुजराती) वि० सं० १९७९-१९८०, पृ० ४४-४६।

§ इसकी उपाधियों में परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर के अलावा, (दक्षिण के राष्ट्र कूटों से मिलती हुई) अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ और वल्लभ नरेन्द्रदेव ये तीन उपाधियां और मिलती हैं। ये इसके पूर्वज की और इसकी राष्ट्रकूटों पर की विजय की सूचक हैं।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			और चोल) देश के राजाओं को जीता।* चेदि के हैहय (कलचुरि) नरेश युवराजदेव द्वितीय को हराकर उसकी राजधानी त्रिपुरी को लूटा।† मेवाड़ पर चढ़ाई कर आहाड को नष्ट किया‡ और चित्तौरगढ और उसके पास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया।§ इसने ६ वार सोलंकी नरेश तैलप द्वितीय को हराया था। परन्तु ७ वीं वार गोदावरी के पास के युद्ध में यह क़ैद कर लिया गया और वि० सं० १०५० और १०५४ के बीच मार डाला गया।‖ इसके वि० सं० १०३१¶ और १०३६$ के दो दानपत्र मिले हैं। यह राजा भोज का चचा था। अमितगति ने अपना 'सुभाषितरत्न

* ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५।

† ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५।

‡ ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १०, पृ० २०।

§ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, (काशी), भा० ३, पृ० ५।

‖ भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० ६३, १०३।

¶ इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भा० ६, पृ० ५१-५२।

$ इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १४, पृ० १६०

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			संदोह' वि० सं० १०५० में, इसी के समय समाप्त किया था।* 'पाइअलच्छी नाममाला' का कर्ता धनपाल, 'नव साहसाङ्क चरित का कर्ता पद्मगुप्त (परिमल), 'दशरूपक' पर 'दशरूपावलोक' नाम की टीका का लेखक धनिक, 'पिंगलछंदः सूत्र' पर 'मृत संजीवनी' टीका का कर्ता हलायुध और उपर्युक्त अमितगति इसी राजा मुञ्ज की सभा के रत्न थे।† यद्यपि स्वयं मुञ्ज का बनाया कोई ग्रन्थ अब तक नहीं मिला है‡ तथापि इसकी कविता के नमूने सुभाषित

* समारूढे पूतत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पंचादशधिके (पंचदशाधिके)।
समाप्ते पंचम्यामवति धरणिं मुञ्जनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम् ॥९२२॥
(सुभाषित रत्नसन्दोह)

† भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० १०३-१०६।

‡ 'गौडवहो' नामक (प्राकृत) काव्य का कर्ता वाक्पति राज इस मुञ्ज से भिन्न था। (तिलक मंजरी, श्लोक ३१)

विद्वान् लोग 'गौडवहो' का रचनाकाल वि० सं० ८०७ (ई० सं० ७५०) के करीब अनुमान करते हैं।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			के ग्रन्थों में देखने को मिल जाते हैं।*
८	सिन्धुराज (सिन्धुल)	नं० ७ का छोटा भाई	यह राजा भोज का पिता था। यद्यपि मुञ्ज ने अपने जीतेजी ही भोज को गोद ले लिया था† तथापि उस की मृत्यु के समय भोज के बालक

* वनोद्यानच्छायामिव मरुपथाद्दावदहना-
तुषाराम्भोवापीमिव विषविपाकादिव सुधाम्।
प्रवृद्धादुन्मादात्प्रकृतिमिव निस्तीर्य विरहा-
ल्लभेयं त्वद्भक्तिं निरुपमरसां शंकर! कदा॥
(सुभाषितावलिः ४४६, नं० ३४१४)।

मालवे के परमार नरेश अर्जुनवर्मा की लिखी 'अमरुशतक' की 'रसिक-संजीवनी' टीका में २२ वें श्लोक की टीका करते हुए लिखा है:—

'यथास्मत्पूर्वजस्य वाक्पतिराजापरनाम्नो मुञ्जदेवस्य—
दासे कृतागसि भवत्युचितः प्रभूणां
पादप्रहार इति सुन्दरि! नास्मि दूये।
उद्यत्कठोरपुलकाङ्कुरकण्टकाग्रै-
र्यत्खिद्यते तव पदं ननु सा व्यथा मे॥'

यादव नरेश भिल्लम द्वितीय के श० सं० ९२२ के लेख से ज्ञात होता है कि उसने मुञ्ज को हराया था। (एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० २ पृ० २१७)।

(†) 'नवसाहसाङ्क चरित' में मुञ्ज के भोज को गोद लेने का उल्लेख नहीं है।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	विशेष बातें
			होने के कारण यह गद्दी पर बैठा।* इसने हूणों† को, तथा दक्षिण कोशल, वागड लाट और मुरलवालों को जीता था।‡ इसकी एक उपाधि 'नव साहसाङ्क' भी थी। पद्मगुप्त (परिमल) ने इसी राजा की आज्ञा से 'नव साहसाङ्क चरित' नामक काव्य लिखा था। उसमें इस राजा का कल्पित अथवा अलङ्कारिक इतिहास लिखा गया है। यह वि० सं० १०६६ से कुछ पूर्व ही गुजरात नरेश सोलंकी चामुण्डराज के साथ की लड़ाई में मारा गया था।§

* तिलकमञ्जरी' में धनपाल ने मुञ्ज के पीछे भोज का ही गद्दी पर बैठना लिखा है।

(देखो श्लोक ४३)।

† ऐपिग्राफिया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५।

‡ नवसाहसाङ्क चरित, सर्ग १०, श्लो० १५-१६।

§ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० १, पृ० १२१-१२४।

ई० स० की १४वीं शताब्दी में होने वाले जयसिंह देव सूरि ने लिखा है :—

राजा चामुण्डराजोथ यः..............।
सिंधुराजमिवोन्मत्तं सिंधुराजं मृधेऽवधीत्॥३१॥

इसके दादा का नाम श्रीहर्ष (सिंहभट—या सीयक द्वितीय) था। उसके दो पुत्र हुए। बड़ा मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) और छोटा सिन्धुराज (सिन्धुल)। परन्तु मेरुतुङ्ग ने अपनी बनाई 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में[1] परमार नरेश श्रीहर्ष का पुत्र न होने के कारण मुञ्ज-वन से

---

(१) मेरुतुङ्ग ने अपनी यह पुस्तक वि० सं० १३६१ (ई० स० १३०४) में लिखी थी।* उसमें लिखा है कि—

मालवे के परमार नरेश सिंहदन्त (सिंहभट) के कोई पुत्र न था। एकवार वह अपने राज्य में दौरा करता हुआ एक ऐसे वन में जा पहुँचा जहां पर चारों तरफ़ मुञ्ज (मूंज) नामक घास के पौदे उगे थे और उन्हीं में से एक पौदे के पास एक तुरत का जन्मा हुआ सुन्दर बालक पडा था। राजा ने उसे देखते ही उठाकर रानी को सौंप दिया और इस बात को गुप्त रख कर उसे अपना पुत्र घोषित कर दिया। यह बालक मुञ्ज के वन में मिला था, इसी से इसका नाम भी मुञ्ज रक्खा गया।

अर्थात्—चामुण्डराज ने समुद्र की तरह उन्मत्त हुए सिन्धुराज को युद्ध में मार डाला। परन्तु वहाँ पर उसी के आगे लिखा है :—

तस्माद्वल्लभराजोभूद्यत्प्रतापाभितापितः ।
मुञ्जोवंतीश्वरो धीरो यंत्रेपि न धृतिं दधौ ॥३२॥

अर्थात्—उससे उत्पन्न हुए वल्लभ राज के प्रताप के सामने अवन्तिका राजा मुञ्ज (या मूंज) कारागार में (या रहट पर) भी स्थिर नहीं रह सकता था। परन्तु यहां पर सिन्धुराज के बाद मुञ्ज का उल्लेख होना विचारणीय है।

* उसमें १३६१ की फागुन सुदि १५ रविवार को उक्त पुस्तक का वर्धमानपुर में समाप्त होना लिखा है। परन्तु इण्डियन ऐफैमैरिस के अनुसार उस दिन बुध वार आता है।

कुछ काल बाद दैवयोग से रानी के गर्भ से भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सिंधुल रक्खा गया। परन्तु राजा सिंहदन्त मुञ्ज की भक्ति को देख उसे अपने औरस पुत्र से भी अधिक प्यार करता था। इसलिये उसने मुञ्ज को अपना उत्तराधिकारी बनाना निश्चित किया।

इसके बाद एक बार सिंहदन्त स्वयं मुञ्ज के शयनागार में पहुँचा। उस समय मुञ्ज की रानी भी वहीं बैठी थी। परन्तु अपने पिता को आता देख मुञ्ज ने उसे एक मौंढे के नीचे छिपा दिया और स्वयं आगे बढ़ पिता को बड़े आदर मान के साथ कमरे में ले आया। राजा को उसकी स्त्री के वहाँ होने का पता न था इसलिये एकान्त देख उसने मुञ्ज को उसके जन्म की सारी सच्ची कथा कह सुनाई और साथ ही यह भी कहा कि तू किसी बात की चिन्ता मत कर। मैं तेरी पितृभक्ति से प्रसन्न हूँ और अपने औरस पुत्र सिन्धुल के होते हुए भी तुझे ही राज्याधिकारी बनाना चाहता हूँ। परन्तु तुझको भी चाहिए कि तू सिन्धुल को अपना छोटा भाई समझ, उसके साथ सदा प्रेम का बर्ताव करता रहे और उसे बालक समझ किसी प्रकार धोका न दे। मुञ्ज ने यह बात सहर्ष स्वीकार करली। समय आने पर वृद्ध सिंहदन्त ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, और वह मुञ्ज को अपना उत्तराधिकारी बनाकर स्वर्ग को सिधारा।

राज्य प्राप्ति के बाद मुञ्ज ने सोचा कि पिता ने जिस समय मेरे मुञ्ज वन में पड़े मिलने की कथा कही थी उस समय मेरी स्त्री पास ही मौंढे के नीचे छिपी बैठी थी। इसलिये उसने अवश्य ही वह बात सुनी होगी और बहुत सम्भव है कि वह उसे प्रकट करदे। यह विचार उठते ही उसने रानी को मार डाला।

इसके बाद मुञ्ज ने राज्य का सारा प्रबन्ध तो रुद्रादित्य नाम के एक सुयोग्य मन्त्री को सौंप दिया और स्वयं अपना समय आनन्दोपभोग में बिताने लगा। इसी बीच उसका एक स्त्री से गुप्त प्रेम हो गया इसलिये वह एक शीघ्र-गामी ऊँट पर चढ़ रात्रि में उसके पास आने जाने लगा।

बड़े होने पर सिन्धुल ने अपना स्वभाव उद्धत बना लिया था। इससे मुञ्ज ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को भुला कर उसे देश से निकल जाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार अपमानित होने से वह गुजरात की तरफ़ चला गया और वहाँ पर कासहद नामक नगर के पास झोंपड़ा बनाकर रहने लगा। एक बार दिवाली की रात में शिकार की इच्छा से इधर उधर घूमते हुए उसे एक स्थान पर एक सूअर खड़ा दिखाई दिया। उसे देखते ही सिन्धुल वीरासन से (एक घुटना ज़मीन पर टेक कर) बैठ गया और धनुष पर बाण चढ़ाकर उसपर लक्ष करने लगा। उस समय सिन्धुल अपने कार्य में इतना तन्मय हो रहा था कि उसे अपने घुटने के नीचे एक लाश के, जो वहाँ पड़ी थी, दब जाने का भी कुछ आभास न हुआ। दैवयोग से उस शव की प्रेतात्मा भी वहीं मौजूद थी। उसने अपनी लाश की यह हालत देख सिन्धुल को डराने के लिये उस लाश को हिलाना प्रारम्भ किया। परन्तु सिन्धुल ने लक्ष विचलित हो जाने के भय से उस हिलती हुई लाश को ज़ोर से दबाकर उस पशु पर तीर चलाया, और उसे ठीक निशाने पर लगा देख, जब वह उस शिकार को घसीटता हुआ लेकर चला, तब उसने देखा कि वह शव उसके सामने खड़ा हँस रहा है। फिर भी सिन्धुल ने उसकी कुछ परवाह न की। उसकी इस निर्भयता को देख प्रेत ने उसे वर माँगने को कहा। इसपर सिन्धुल ने उससे दो वरदान माँगे। पहला यह कि—'मेरा तीर कभी पृथ्वी पर न गिरे।' और दूसरा यह कि—'सारे जगत की लक्ष्मी मेरे अधिकार में रहे।' प्रेत ने 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और उसे समझाया कि यद्यपि मालवे का राजा मुञ्ज तुझसे अप्रसन्न हो रहा है, तथापि तुझको वहीं जाकर रहना चाहिए। ऐसा करने से वहाँ का राज्य तेरे वंश में आ जायगा। इस प्रकार की बातचीत के बाद सिन्धुल मालवे को लौट आया और वहीं एक छोटे से गाँव में गुप्त रूप से रहने लगा। परन्तु अभी उसे वहाँ रहते अधिक दिन नहीं हुए थे कि, यह बात मुञ्ज को मालूम हो गई। इससे उसने सिन्धुल को पकड़वा कर और अंधा करवा कर कुछ दिन तक तो एक पिंजरे में बन्द कर रक्खा (और फिर एक स्थान पर नज़रबन्द कर दिया)।

इसी अवस्था में सिन्धुल के पुत्र भोज का जन्म हुआ। यह बड़ा ही चतुर और होनहार था। इसने थोड़े समय में ही शस्त्र और शास्त्र दोनों विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त करली। भोज के जन्म समय उसकी कुण्डली को देख किसी विद्वान् ज्योतिषी ने कहा था कि, यह गौड़ देश के साथ ही सारे दक्षिण देश पर ५५ वर्ष ७ महीने और ३ दिन राज्य करेगा। जब यह बात राजा मुञ्ज को मालूम हुई तब उसने सोचा कि यदि मालवे का राज्य भोज के अधिकार में चला जायगा तो मेरा पुत्र क्या करेगा ? इसलिये जहाँ तक हो भोज का वध करवा कर अपनी सन्तान का पथ निष्कण्टक कर देना चाहिए। यह विचार दृढ़ होते ही उसने वधिकों को आज्ञा दी कि वे अर्धरात्रि के समय भोज को किसी निर्जन वन में लेजाकर मार डालें। राजा की आज्ञा के अनुसार जिस समय वे लोग उसे लेकर वध-स्थान पर पहुँचे उस समय उसके शरीर की सुकुमारता को देख उनका हृदय पसीज उठा, और वे विचार में पड़ गए। कुछ देर बाद जब भोज को यह हाल मालूम हुआ तब उसने एक श्लोक लिखकर उन्हें दिया और कहा कि राजा की आज्ञा का पालन करने के बाद जब तुम लोग घर लौटो तब यह पत्र मुञ्ज को दे देना। भोज के ऐसे दृढ़ता भरे वचन सुन वधिकों ने अपना विचार बदल दिया और उसे लेजाकर एक गुप्त स्थान पर छिपा दिया।

इसके बाद जब वे लोग नगर को लौटे तब उन्होंने भोज का दिया वह पत्र मुञ्ज को दे दिया। उसमें लिखा था :—

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः॥
अन्येचापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते।
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति॥

अर्थात्—हे राजा ! सतयुग का सर्वश्रेष्ठ मान्धाता भी चला गया; त्रेतायुग का, वह समुद्र पर पुल बाँधकर रावण को मारनेवाला, राम भी न

रहा; द्वापरयुग के युधिष्ठिर आदि भी स्वर्गगामी हो गए। परन्तु पृथ्वी किसी के साथ नहीं गई। सम्भव है कलियुग में अब तुम्हारे साथ चली जाय।

इस श्लोक को पढ़कर राजा को बड़ा दुःख हुआ और वह ऐसे होनहार बालक की हत्या करवाने के कारण पश्चात्ताप करने लगा। उसके इस सच्चे अफ़सोस को देखकर वधिकों को भी दया आगई और उन्होंने भोज के छिपा रखने का सारा हाल उससे कह सुनाया। यह सुन मुञ्ज बड़ा प्रसन्न हुआ और भोज को बुलवाकर अपना युवराज बना लिया।

आगे उसी पुस्तक में मुञ्ज की मृत्यु के विषय में लिखा है कि तैलंग देश के राजा तैलप ने मालवे पर ६ बार हमला किया था। परन्तु हर बार उसे मुञ्ज के सामने से हारकर भागना पड़ा। इसके बाद उसने सातवीं बार फिर चढ़ाई की। इस बार मुञ्ज ने उसका पीछा कर उसे पूरी तौर से दण्ड देने का निश्चय कर लिया। परन्तु जब इस निश्चय की सूचना मुञ्ज के मन्त्री रुद्रादित्य को, जो उस समय बीमार था, मिली तब उसने राजा को समझाया कि चाहे जो कुछ भी हो आप गोदावरी के उस पार कभी न जाँय। फिर भी दैव के विपरीत होने से राजा ने उसके कथन पर कुछ भी ध्यान न दिया। इससे दुःखित हो मन्त्री ने तो जीते जी अग्नि में प्रवेश कर लिया और राजा मुञ्ज गोदावरी के उस पार के युद्ध में पकड़ा गया।

इसके बाद कुछ दिन तक तो तैलप ने उसे मूंज से बाँधकर काठ के पिंजरे में बन्द रक्खा, और अन्त में पिंजरे से निकाल नज़र कैद कर दिया। उस समय उसके खाने पीने की देखभाल का काम तैलप ने अपनी बहन मृणालवती को सौंपा था। (यह मृणालवती बाल-विधवा होने के साथ ही बड़ी रूपवती थी।) इससे कुछ ही दिनों में इसके और मुञ्ज के बीच प्रीति होगई।

जब मुञ्ज को क़ैद हुए अधिक समय बीत गया और उसके छूटने की कोई आशा न रही, तब उसके सेवकों ने उसे शत्रु की क़ैद से निकाल ले जाने

के लिये उसके शयनागार तक एक सुरंग तैयार की। परन्तु ऐन मौक़े पर मुञ्ज ने मृणालवती के वियोग-भय से घबराकर वहाँ से अकेले निकल जाने से इनकार कर दिया। इसके बाद जैसे जैसे वह अपने आगे के कर्तव्य को स्थिर करने की चेष्टा करने लगा, वैसे वैसे उसका चित्त अधिकाधिक उदास रहने लगा। राजा के इस परिवर्तन को मृणालवती भी बड़े ग़ौर से ताड़ रही थी। फिर भी अपने विचार की पुष्टि के लिये उसने मुञ्ज के भोजन में कभी अधिक और कभी कम नमक डालना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु जब मुञ्ज ने चिन्तामग्न रहने के कारण इसपर भी कोई आपत्ति न की, तब उसे उसके किसी गहरे विचार में पड़े होने का पूरा निश्चय हो गया। इसी से एक रोज़ प्रेम-प्रपंच खड़ा कर उसने मुञ्ज से सारा भेद पूछ लिया और उसके साथ भाग चलने की अनुमति प्रकट कर अपना ज़ेवरों का डिब्बा ले आने के बहाने से उस घर से बाहर निकल आई।

इसके बाद उसने सोचा कि यद्यपि अभी तो यह मुझे साथ लेजाकर अपनी पटरानी बनाने को कहता है तथापि मेरी अवस्था अधिक होने के कारण घर पहुँचकर यह अवश्य ही किसी न किसी युवती के प्रेम-पाश में फँस जायगा और उस समय मुझे धता बता देगा। इसलिये इसको यहाँ से निकल जाने देना उचित नहीं है। चित्त में इस प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न होते ही उसने सारी बात अपने भाई तैलप से कह दी। यह सुन उसे क्रोध चढ़ आया और उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि वे मुञ्ज के हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डालकर उससे नगर भर में भीख मँगवावें और बाद में उसी भीख का अन्न खिलाकर उसे सूली पर चढ़ा दें। तैलप की आज्ञा पाकर उसके सेवकों ने भी जहाँ तक हो सका उसका पालन किया और इस प्रकार अन्त में मुञ्ज की मृत्यु हुई। इसके बाद तैलप ने उसके सिर को सूली पर टँगवाकर अपना क्रोध शान्त किया।

जब इस घटना की सूचना मुञ्ज के मन्त्रियों को मिली तब उन्होंने भोज का राज्याभिषेक कर उसे गद्दी पर बिठा दिया।

एक नवजात बालक को उठा लाना, उसका नाम मुञ्ज रखना, इसके बाद अपने औरस पुत्र सिन्धुल के होने पर भी उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना, राज्य प्राप्ति के बाद मुञ्ज का सिंधुल को अन्धा कर क़ैद करना, और उसके पुत्र भोज को मरवाने की चेष्टा करना, तथा अन्त में भोज के लिखे श्लोक को पढ़कर उसे ही अपना युवराज बनाना, आदि बातें लिखी हैं। परन्तु ये ऐतिहासिक सत्य से बिलकुल विरुद्ध हैं।

'नव साहसाङ्क चरित' का कर्ता पद्मगुप्त (परिमल) जो मुञ्ज का सभासद और उसके भाई सिन्धुराज के दरबार का मुख्य कवि था, लिखता है[1] कि जिस समय वाक्पतिराज (मुञ्ज) शिवपुर को चला उस समय उसने राज्य का भार अपने छोटे भाई सिन्धुराज को सौंप दिया।

तिलकमञ्जरी के कर्ता धनपाल के जो वाक्पति के समय से लेकर

मेरुतुङ्ग का मुञ्ज के वृत्तान्त को इस प्रकार उपहसनीय ढँग से लिखना गुजरात और मालवे के नरेशों की आपस की शत्रुता के कारण ही हो तो आश्चर्य नहीं।

मुनि सुन्दर सूरि के शिष्य शुभशील सूरि के लिखे भोजप्रबन्ध से ज्ञात होता है कि मृणालवती का जन्म तैलप के पिता देवल द्वारा सुन्दरी नाम की दासी के गर्भ से हुआ था। यह मृणालवती श्रीपुर के राजा चन्द्र को व्याही गई थी। परन्तु येवूर के लेख से प्रकट होता है कि तैलप के पिता का नाम देवल न होकर विक्रमादित्य था।

[1] पुरा कालक्रमात्तेन प्रस्थितेनाम्बिकापतेः।
भौर्वीभ्रणकिणाङ्कस्य पृथ्वीदोष्णि निवेशिता ॥९८॥

(नवसाहसाङ्कचरित, सर्ग ११)

भोज के समय तक विद्यमान था लिखा[1] है कि—राजा मुञ्ज अपने भतीजे भोज पर बड़ी प्रीति रखता था और इसी से उसने उसे अपना युवराज बनाया था।

इन प्रमाणों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि न तो सिन्धुराज अन्धा ही था और न उसके और उसके बड़े भाई मुञ्ज के ही बीच किसी प्रकार का मनोमालिन्य था। मुञ्ज ने पुत्र न होने के कारण अपने भतीजे भोज को गोद ले लिया था। इसके बाद जिस समय वह तैलप द्वितीय से लड़ने गया उस समय भोज के बालक होने के कारण उसने राज्य का भार उसके पिता (अपने छोटे भाई) सिन्धुराज को सौंपा। अन्त में तैलप द्वितीय के द्वारा मुञ्ज के मारे जाने और भोज के बालक होने के कारण सिन्धुराज[2] गद्दी पर बैठा। परन्तु वि० सं० १०५४ (ई० स० ९९७) और वि० सं० १०६६ (ई० स० १०१०) के बीच किस

[1] आकीर्णाङ्घ्रितलः सरोजकलशच्छत्रादिभिर्लाञ्छनै-
स्तस्याजायत मांसलायुतभुजः श्रीभोज इत्यात्मजः ॥
प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसतिः ख्यातेन मुञ्जाख्यया।
यः स्वे वाक्पतिराजभूमिपतिना राज्येभिषिक्तः स्वयम् ॥४३॥
(तिलकमञ्जरी)

[2] बल्लाल पण्डित ने अपने भोजप्रबन्ध में लिखा है कि सिंधुराज की मृत्यु के समय भोज पाँच वर्ष का था। इसी से उसने अपने छोटे भाई मुञ्ज को गद्दी देकर भोज को उसकी गोद में बिठा दिया। इसके बाद एक दिन एक ब्राह्मण राजसभा में आया और बालक भोज की जन्मपत्रिका देखकर बोला कि यह ५५ वर्ष ७ महीने, और ३ दिन राज्य करेगा। यह सुन यद्यपि मुञ्ज ने ऊपर से प्रसन्नता प्रकट की तथापि वह मन ही मन इतना घबरा गया कि उसने तत्काल भोज को मरवाने का निश्चय कर वह काम बंगाल के राजा वत्सराज को सौंप दिया। इसपर पहले तो वत्सराज ने राजा को ऐसा कार्य न करने की

समय वह भी गुजरात के सोलंकी नरेश चामुण्डराज के साथ के युद्ध में मारा गया ।[1]

सलाह दी । परन्तु जब उसने न माना तब वह भोज को लेकर उसे मारने के लिये भुवनेश्वरी के जंगल की तरफ़ चला गया । इसकी सूचना पाते ही लोग दुखी होकर आत्महत्याएँ और उपद्रव करने लगे । इसी बीच जब भोज वध-स्थान पर पहुँच गया, तब उसने बड़ के पत्ते पर एक ('मान्धाता स महीपतिः......) श्लोक लिखकर वत्सराज को दिया और कहा कि अपना काम करके लौटने पर यह पत्र मुञ्ज को दे देना । भोज की इस निर्भीकता को देख-कर वत्सराज का हाथ न उठ सका और इसी से उसने उसे चुपचाप घर लेआकर तहखाने में छिपा दिया । इसके बाद जब वह भोज का बनावटी सिर और उपर्युक्त पत्र लेकर राजा के पास पहुंचा, तब उस पत्र को पढ़कर राजा को अपने निन्दित कर्म पर इतनी ग्लानि हुई कि वह स्वयं मरने को तैयार होगया। यह देख वत्सराज ने राज्य के मन्त्री बुद्धिसागर की सलाह से एक योगी के द्वारा भोज को फिर से जीवित करवाने का बहाना कर वास्तविक भोज को प्रकट कर दिया ।

इसके बाद राजा ने भोज को गद्दी पर बिठा दिया, और अपने पुत्रों को एक एक गाँव जागीर में देकर स्वयं तप करने को वन में चला गया ।

[1] रेजे चामुण्डराजोऽथ यश्चामुण्डावरोद्धुरः ।
सिन्धुरेन्द्रमिवोन्मत्तं सिंधुराजं मृधेऽवधीत् ॥३१॥

(कुमारपालचरित, सर्ग १)

सूनुस्तस्य बभूव भूपतिलकश्चामुण्डराजाह्वयो
यद् गन्धद्विपदानगंधपवनाघ्राणेन दूरादपि ।
विभ्रश्यन्मदगंधभग्नकरिभिः श्रीसिंधुराजस्तथा
नष्टः क्षोणिपतिर्यथास्य यशसां गंधोपि निर्नाशितः ॥६॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २९७)

भोज के पहले का मालवे का इतिहास और वहाँ की दशा।

इस प्रकार राजा भोज के वंश और पूर्वजों का संक्षिप्त इतिहास लिखने के बाद और स्वयं उसका इतिहास प्रारम्भ करने के पूर्व यहाँ पर मालवे का संक्षिप्त इतिहास दे देना भी अप्रासङ्गिक न होगा।

प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व गांधार (कंधार) से लेकर मालवे तक का भारतीय भूभाग सोलह राज्यों में बँटा हुआ था। इनमें से कुछ का प्रबन्ध राजसत्ता के अधीन था और कुछ पर जातियाँ ही अपना अधिकार जमाए हुए थीं। ऐसी ही एक जाति का राज्य अवन्ति प्रदेश (मालवे[1]) पर था जो मालव-जाति के नाम से प्रसिद्ध थी। उसकी राजधानी उज्जैन थी।

संस्कृत साहित्य में उज्जैन का नाम भारत की सात प्रसिद्ध और पवित्र नगरियों में गिना गया है :—

> अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
> पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिका॥

अर्थात्—१ अयोध्या (फैजाबाद—अवध), २ मथुरा, ३ हरद्वार, ४ बनारस, ५ कांजीवरं, ६ उज्जैन, और ७ द्वारका ये सात नगरियाँ बड़ी पवित्र हैं।

यह (उज्जैन) नगरी प्राचीन काल में ज्योतिर्विद्या का मुख्य

---

[1] स्कन्द पुराण में मालवे के गाँवों की संख्या ११८१८० लिखी है।
(देखो कुमारखण्ड, अ० ३६)।
ऐतिहासिक इसे ईसवी सन् की नवीं शताब्दी का वर्णन मानते हैं।

स्थान थी और इसी के 'याम्योत्तर वृत्त' (Meridian) से देशान्तर सूचक रेखाओं (Longitude) की गणना की जाती थी।[1]

इनके अलावा इसकी स्थिति पश्चिमी समुद्र से भारत के भीतरी भाग में जानेवाले मार्ग पर होने के कारण यह नगरी व्यापार का भी केन्द्र थी।

सीलोन की कथाओं से ज्ञात होता है कि मौर्य बिन्दुसार के समय युवराज अशोक स्वयं उज्जैन का हाकिम रहा था और पिता के बीमार होने की सूचना पाकर यहीं से पटने गया था।

सम्राट् अशोक के समय[2] उसका साम्राज्य, राज्य प्रबन्ध के सुभीते के लिये, पाँच विभागों में बंटा हुआ था। इनमें के एक विभाग में मालवा, गुजरात और काठियावाड़ के प्रदेश थे। इसके प्रबन्ध के लिये एक राजकुमार नियत था; जो उज्जैन में रहा करता था।

मौर्यों के बाद वि० सं० से १२८ (ई० स० से १८५) वर्ष पूर्व पुष्यमित्र ने शुङ्गवंश के राज्य की स्थापना की। उस समय उसका पुत्र युवराज अग्निमित्र भिलसा (विदिशा) में रहकर उधर के प्रदेशों की देखभाल किया करता था।[3]

---

[1] ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में यह भी लिखा है:—

यल्लङ्कोज्जयिनीपुरीपरिकुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदितं सा मध्यरेखा भुवः॥

[2] बिन्दुसार के मरने पर वि० सं० से २१५ या २१६ (ई० स० से २७२ या २७३) वर्ष पूर्व अशोक गद्दी पर बैठा था। यह भी प्रसिद्धि है कि, अपनी युवावस्था में अशोक ने लोगों को दण्ड देने के लिये उज्जैन के पास ही एक 'नरक' बनवाया था।

[3] यदि वास्तव में विक्रम संवत् का चलानेवाला चन्द्रवंशी विक्रमा-

वि० सं० १७६ (ई० स० ११९) में आन्ध्रवंशी नरेश गौतमी-पुत्र श्री शातकर्णि ने क्षहरातवंशी क्षत्रपों का राज्य छीन लिया। इसके बाद जिस समय उसका प्रताप सूर्य मध्यान्ह में पहुँचा, उस समय अन्य अनेक प्रदेशों के साथ ही साथ मालवे पर भी उसका अधिकार होगया। परन्तु इसके कुछ काल बाद ही वहाँ पर फिर क्षत्रप चष्टन[1] और उसके वंशजों ने अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८५ (ई० स० १२८) के करीब, गौतमीपुत्र शातकर्णि के पीछे उसका पुत्र, वसिष्ठीपुत्र श्री पुलुमायि गद्दी पर बैठा। यद्यपि इसका विवाह क्षत्रपवंशी चष्टन के पौत्र और उज्जैन के महाक्षत्रप रुद्र-दामा प्रथम की कन्या से हुआ था तथापि रुद्रदामा ने इस सम्बन्ध का विचार छोड़ पुलुमायि पर दो बार चढ़ाई की। इनमें रुद्रदामा विजयी रहा और उसने गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा दबाए हुए क्षहरात वंश के राज्य का बहुत सा भाग पुलुमायि से छीन लिया।

वि० सं० ३८७ (ई० स० ३३०) के करीब गुप्तवंश का प्रतापी नरेश, समुद्रगुप्त राज्य पर बैठा। उस समय मालवे पर मालव जाति का प्रजासत्तात्मक या जाति सत्तात्मक राज्य था।[2] परन्तु उसके पुत्र चन्द्र-

---

दित्य कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था तो वह शुङ्ग वंश के अन्तिम समय ही मालवे का राजा हुआ होगा।

[1] ग्रीक लेखक टॉलेमी (Ptolemy) ने, जिसकी मृत्यु वि० सं० २१८ (ई० सं० १६१) में हुई थी, वि० सं० १८७ (ई० सं० १३०) के करीब अपना भूगोल लिखा था। उसमें उसने उज्जैन को चष्टन (Tistanes) की राजधानी लिखा है।

[2] समुद्रगुप्त के लेख में उसका, अपने राज्य के सीमाप्रान्त पर रहने वाली, मालव जाति से कर लेना लिखा है।

परन्तु श्रीयुत सी० वी० वैद्य वि० सं० १३५ (ई० स० ७८) से वि०

गुप्त द्वितीय ने वि० सं० ४५२ (ई० स० ३९५) के करीब मालव जाति को हराकर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया।[1]

वि० सं० ४६२ (ई० स० ४०५) के करीब, चीनी यात्री, फाहियान भारत में आया था। वह लिखता है।[2]

"मथुरा के दक्षिण में (मज्झिमदेश) मालवा है। यहाँ की सरदी गरमी औसत दरजे की है। यहाँ कड़ी ठंड या बर्फ नहीं पड़ती। यहाँ की आबादी घनी होने पर भी लोग खुशहाल हैं। उनको न तो अपने घरवालों का नाम ही सरकारी रजिस्टरों में दर्ज करवाना पड़ता है, न कानून कायदे के लिये हाकिमों के पास ही हाजिर होना पड़ता है। केवल वे ही लोग, जो सरकारी ज़मीन पर काश्त करते हैं, उसकी उपज का हिस्सा सरकार को देते हैं। लोग इधर उधर जाने आने या कहीं भी बसने के लिये स्वाधीन हैं। राज्य में प्राण-दण्ड या शारीरिक-दण्ड नहीं दिया जाता। अपराधियों पर उनके अपराध की गुरुता और लघुता के अनुसार जुर्माना किया जाता है। बार बार बगावत करने के अपराध पर भी अपराधियों का केवल दहना हाथ काट दिया जाता है। राजा के शरीर-रक्षकों और सेवकों को वेतन मिलता है। सारे देश में न कोई जीवहिंसा करता है, न शराब पीता है, न लहसुन और प्याज़ ही खाता है। हाँ, चण्डालों में ये नियम नहीं हैं। यह (चाण्डाल) शब्द

सं० ४५७ ई० सं० ४००) तक उज्जैन का पश्चिमी शकों के अधिकार में रहना मानते हैं। सम्भव है उस समय मालवे के दो भाग हो गए हों और पूर्वी भाग पर शकों का और पश्चिमी भाग पर मालव जाति का अधिकार रहा हो।

[1] इसी समय क्षत्रपों (शकों) के राज्य की भी समाप्ति हो गई।

[2] फ़ाहियान का यात्रा विवरण (जेम्स लैग्गे का अनुवाद) पृ० ४२-४७।

बुरी और सब से दूर रहनेवाली जाति के लिये प्रयुक्त होता है। इस जाति के लोग जिस समय नगर के द्वार या बाज़ार में घुसते हैं, उस समय लकड़ी से पृथ्वी पर चोट करने लगते हैं। इसकी खटखटाहट से अन्य लोगों को उनके आने का पता चल जाता है और वे उन चंडालों से अलग हो जाते हैं।

उस प्रदेश के लोग, न तो सूअर और मुर्गे ही पालते हैं, न जिन्दा मवेशी ही बेचते हैं। वहाँ के बजारों में कसाइयों और शराब बेचनेवालों की दूकानें भी नहीं हैं। सामान की ख़रीद फ़रोख्त के लिये कौड़ियाँ काम में लाई जाती हैं। वहाँ पर केवल चण्डाल ही मछली मारते, शिकार करने और मांस बेचते हैं।

बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद अनेक देशों के राजाओं और मुख्य मुख्य वैश्यों ने भिक्षुओं के लिये विहार बनवाकर उनके साथ खेत, मकान, बगीचे और बगीचियाँ भी तैयार करवा दी हैं। इनके लिये दिए हुए दानों का विवरण धातु-पत्रों पर खुदा होने से राजा लोग वंश परम्परा से उनका पालन करते चले आते हैं और कोई भी उसमें गड़बड़ करने की हिम्मत नहीं करता। इसी से ये सब बातें अभी तक वैसी ही चली आती हैं।

उत्तम कार्य करना, अपने धर्म सूत्रों का पाठ करना, या ध्यान करना ही, भिक्षुओं का कर्तव्य है। जब कभी किसी मठ में कोई नया भिक्षु आता है तो वहाँ के पुराने भिक्षुवस्त्र, भोजनपात्र, पैर धोने के लिये पानी, मालिश के लिये तेल और तरल भोजन, जो कि नियमानुसार भोजन के समय के अलावा भी प्राप्त हो सकता है, देकर उसका आदर सत्कार करते हैं। इसके बाद, जब वह नया भिक्षु कुछ आराम कर चुकता है, तब वे पुराने भिक्षु उससे उसके भिक्षु-धर्म ग्रहण करने का काल पूछते हैं, और फिर उसके नियमानुसार ही उसके लिये सोने के स्थान और अन्य ज़रूरी चीज़ों का प्रबन्ध कर देते हैं।

जिस स्थान पर बहुत से भिक्षु रहते हैं वहाँ पर वे सारिपुत्र[१], महामौद्गलायन[२], आनन्द[३], अभिधर्म[४], विनय[५] और सूत्रों[६] की याद-गार में स्तूप बनवाते हैं।

एक मास के वार्षिक अवकाश के बाद भक्त लोग, एक दूसरे को उत्तेजना देकर, भिक्षुओं के लिये तरल भोजन, जो हर समय ग्रहण किया जा सकता है, भेजते हैं। इस अवसर पर तमाम भिक्षु जमा होकर लोगों को बुद्ध के बतलाए नियम सुनाते हैं और फिर पुष्प, धूप, दीप

---

[१] यह बुद्ध के मुख्य शिष्यों में से था। यह बड़ा विद्वान् और बुद्धिमान् था। इसकी माता का नाम शारिका और पिता का नाम तिष्य था, जो नालन्दन का निवासी था। इसी से सारिपुत्र को उपतिष्य भी कहते थे।

इसने अनेक शास्त्र बनाए थे, और यह शाक्य मुनि के पहले ही मर गया था।

[२] सिंघाली भाषा में इसे मुगलन कहते हैं। यह भी बुद्ध के मुख्य शिष्यों में से था, और अपने ज्ञान और विज्ञान (करामातों) के लिये प्रसिद्ध था। यह भी शाक्य-मुनि के पूर्व ही मर गया था।

[३] यह शाक्य-मुनि का चचेरा भाई था और बुद्ध के उपदेश से अर्हत् हो गया था। यह अपनी याददाश्त के लिये प्रसिद्ध था। शाक्य-मुनि की इसपर बड़ी कृपा थी। 'महापरिनिर्वाण सूत्र' में बुद्ध ने इसको उपदेश दिया है। बौद्ध धर्म के नियमों को तैयार करने के लिये जो पहली सभा हुई थी उसमें इसने मुख्य भाग लिया था।

[४] त्रिपिटक के सूत्र, विनय और अभिधर्म में का एक भाग, जिसमें बौद्ध धर्म पर विचार किया गया है।

[५] त्रिपिटक का बौद्धधर्म के नियम बतलानेवाला भाग।

[६] त्रिपिटक का वह भाग जिसमें बुद्ध के बतलाए सिद्धान्त हैं।

आदि से सारिपुत्र के स्तूप की पूजा करते हैं। इसके बाद रातभर बहुत से दीपक जलाए जाते हैं और चतुर संगीतज्ञों का गान होता है।

यह सारिपुत्र पहले ब्राह्मण था और इसने बुद्ध के पास पहुँच भिक्षु होने की आज्ञा माँगी थी। मुगलन (महामौद्गलायन) और काश्यप ने भी ऐसा ही किया था।

भिक्षुणियाँ अधिकतर आनन्द के स्तूप पर ही भेंट-पूजा चढ़ाती हैं; क्योंकि पहले पहल उसी ने बुद्ध से, औरतों को संघ में लेने की, प्रार्थना की थी।

श्रामणेर लोग[१] अक्सर राहुल[२] के स्तूप का पूजन करते हैं। अभिधर्म और विनय के आचार्य भी अपने अपने स्तूपों पर पुष्प, आदि चढ़ाते हैं। हर साल एक बार इस प्रकार का उत्सव होता है और प्रत्येक जाति (या पेशे) वालों के लिये अलग अलग दिन नियत रहता है। महायान शाखा के अनुयायी अपनी भेट 'प्रज्ञापारमिता'[३], 'मंजुश्री'[४] और 'कानशेयिन'[५] (?) को चढ़ाते हैं।

जब भिक्षु लोग कृषि की उपज से मिलनेवाला अपना वार्षिक

---

[१] वे पुरुष और स्त्रियाँ जिन्होंने बौद्ध धर्म की १० बातों (शिक्षा-पदों) के मानने का प्रण कर लिया हो।

[२] यशोधरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ शाक्य-मुनि का पुत्र। इसने भी बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। यह बौद्ध धर्म की वैभाषिक शाखा का प्रवर्तक और श्रामणेरों का पूज्य माना जाता है।

[३] वैसे तो बौद्धधर्म में निर्वाण प्राप्ति के ६ (या १०) पारमिता (मार्ग) हैं। परन्तु उनमें 'प्रज्ञा' सब से श्रेष्ठ मानी गई है।

[४] एक बोधिसत्व। इसको महामति और कुमार-राज भी कहते हैं।

[५] अवलोकितेश्वर।

भाग ले चुकते हैं तब वैश्यों के मुखिया और ब्राह्मण लोग अन्य उपयोगी वस्तुएँ लाकर उनमें बाँटते हैं। इसके बाद बहुत से भिक्षु भी उन वस्तुओं को आवश्यकतानुसार आपस में बाँट लेते हैं।

बुद्ध के निर्वाण से लेकर आजतक ये उत्सव, धर्म और नियम वंश परम्परा से बराबर चले आते हैं।"

इस अवतरण से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के राज्य समय यहाँ की प्रजा हर तरह से आज़ाद और सुखी थी। उसके कार्यों में राज्य की तरफ़ से बहुत ही कम हस्तक्षेप किया जाता था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की एक उपाधि विक्रमादित्य भी थी। ऐतिहासिकों का मत है कि कविकुलगुरु कालिदास इसी के समय उज्जैन में पहुँचा था। और इसी के राज्य के अन्तिम समय से लेकर कुमारगुप्त प्रथम के (अथवा स्कन्दगुप्त के राज्य के प्रारम्भिक) समय तक उसने अपने अमूल्य ग्रन्थ लिखे थे।

ये गुप्तनरेश वैदिक धर्म के अनुयायी थे। इसी से शुङ्गवंशी पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ करने के करीब ५०० वर्ष बाद (वि० सं० ४०८=ई० स० ३५१ में) गुप्तवंशी नरेश समुद्रगुप्त ने ही फिर से वह यज्ञ किया था।

वि० सं० ५२७ (ई० स० ४७०) के करीब हूणों के आक्रमण से गुप्तराज्य कमज़ोर पड़ गया और साथ ही उसकी आर्थिक दशा भी बिगड़ गई।[१] इसी से, कुछ काल बाद (वि० सं० ५४७=ई० स० ४९० के आस पास) गुप्तों के सेनापति मैत्रकवंशी भटार्क ने वलभी (काठियावाड़ के पूर्वी भाग) में अपना नया राज्य स्थापित कर लिया। इसके बाद कुछ काल तक तो इस वंश के राजा भी हूणों को कर देते रहे,

---

[१] इस बात की पुष्टि स्कन्दगुप्त के पिछले मिश्रित सुवर्ण के सिक्कों से भी होती है।

परन्तु अन्त में स्वाधीन हो गए। उस समय मालवे का पश्चिमी भाग भी इनके अधिकार में आगया था।[1]

वि० सं० ६५२ (ई० स० ५९५) के करीब इस वंश का राजा शीलादित्य (धर्मादित्य) गद्दी पर बैठा। चीनी यात्री हुएन्त्संग[2] के यात्रा विवरण में लिखा है कि, "यह राजा मेरे आने से ६० वर्ष पूर्व राज्य पर था।[3] यह बड़ा ही विद्वान् और बुद्धिमान् था। इसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर जीव-हिंसा रोक दी थी। इसीलिए इसके हाथी और घोड़ों के पीने का पानी तक भी पहले छान लिया जाता था। इसने अपने राज्य में यात्रियों के लिये अनेक धर्मशालाएं बनवाई थीं, और अपने महल के पास ही बुद्ध का मन्दिर तैयार करवा कर उसमें सात बुद्धों की मूर्तियाँ स्थापित की थीं। यह राजा हरसाल एक बड़ी सभा करके भिक्षुओं के

---

[1] परन्तु सम्भवतः उज्जैन और उसके आस-पास का प्रदेश गुप्तों की ही एक शाखा के अधिकार में रहा था। श्रीयुत सी० वी० वैद्य का अनुमान है कि इसी शाखा के अन्तिम नरेश देवगुप्त के हाथ से मौखरी ग्रहवर्मा मारा गया था, और इसी से वि० सं० ६६३ (ई० स० ६०६) में वैसवंशी हर्ष-वर्धन ने मालवे पर अधिकार कर लिया था।

[2] यह यात्री वि० सं० ६८६ (ई० स० ६२९) में चीन से चलकर भारत में आया था और वि० सं० ७०२ (ई० स० ६४५) में वापिस चीन को लौट गया।

[3] परन्तु धरसेन द्वितीय के वि० सं० ६४८ (गुप्त सं० २७२— ई० स० ५९१) तक के और शीलादित्य के वि० सं० ६६२ (गुप्त सं० २८६ =ई० स० ६०५) से वि० सं० ६६६ (गुप्त सं० २९०=ई० स० ६०९) तक के ताम्रपत्रों के मिलने से यह अन्तर ठीक प्रतीत नहीं होता। फिर हुएन्त्संग ने शीलादित्य का ५० वर्ष राज्य करना लिखा है। यह भी विचारणीय है। इसी से विद्वानों में इस शीलादित्य के विषय में मतभेद चला आता है।

निर्वाह के लिये उन्हें नियत द्रव्य और वस्तुएँ दिया करता था। यह रिवाज उसके समय से हुएन्त्संग के समय तक चला आता था।

शीलादित्य बड़ा ही प्रजाप्रिय राजा था।"

इसके भतीजे ध्रुवभट (बालादित्य—ध्रुवसेन द्वितीय) के समय वि० सं० ६९८ (ई० स० ६४१) के करीब चीनी यात्री हुएन्त्संग मालवे में पहुँचा था।

उसके यात्रा विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय भारत में विद्या के लिये पश्चिमी मालवा[1] (Mo-la-p'o) और मगध ये दो स्थान विख्यात थे।

वलभी का राजा ध्रुवभट राजा हर्षवर्धन का दामाद था, और वि० सं० ७०० (ई० स० ६४३) में सम्राट् हर्षवर्धन द्वारा किए गए कन्नौज और प्रयाग के धार्मिक उत्सवों में इस ध्रुवभट ने भी एक सामन्त नरेश की तरह भाग लिया था।

इससे ज्ञात होता है कि सम्राट् हर्षवर्धन ने वलभी और मालवे के पश्चिमी हिस्से को विजय कर ध्रुवभट को अपना सामन्त नरेश वना लिया था।[2]

उसी के यात्रा विवरण से यह भी जाना जाता है कि उस समय

---

[1] इसकी राजधानी का उसने माही नदी के दक्षिण-पूर्व में होना लिखा है। श्रीयुत सी० वी० वैद्य इससे धारा नगरी का तात्पर्य लेते हैं।

[2] यह घटना वि० सं० ६९० (ई० स० ६३३) के बाद किसी समय हुई होगी। परन्तु श० सं० ५५६ (वि० सं० ६९१ = ई० स० ६३४) के एहोले से मिले लेख से ज्ञात होता है कि इस समय के पूर्व-दक्षिण के सोलङ्की नरेश पुलकेशी द्वितीय ने भी मालवे (के पश्चिमी भाग) पर विजय प्राप्त की थी।

यह पुलकेशी वि० स० ६६७ (ई० स० ६१०) में गद्दी पर बैठा था।

उज्जैन (पूर्वीमालवे) का राज्य पश्चिमी मालवे (Mo-la-p'o) से जुदा था और उस पर एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था।[१] इस उज्जैन का विस्तार भी पश्चिमी मालवे के बराबर ही था।

बाण के बनाए हर्ष चरित में लिखा है कि—हर्षवर्धन के बड़े भाई राज्यवर्धन के समय मालवे[२] के राजा (देवगुप्त) ने हर्ष के बहनोई मौखरी[३] ग्रहवर्मा को मारकर हर्ष की बहन राज्य श्री को क़ैद कर लिया था। इसी से वि० सं० ६६३ (ई० सं० ६०६) के करीब राज्य वर्धन ने मालव नरेश पर चढ़ाई की। परन्तु वहाँ से विजय प्राप्त कर लौटते समय मार्ग में उसे गौड़ देश के राजा शशाङ्क ने धोका देकर मार डाला।

इसकी सूचना पाते ही हर्षवर्धन को अपनी बहन को ढूंढने और

---

[१] जिस प्रकार यशोधर्मन् ने मातृगुप्त को काश्मीर का हाकिम बना कर भेज दिया था, उसी प्रकार शायद हर्षवर्धन ने भी उक्त ब्राह्मण को पूर्वी मालवे का शासक नियत कर दिया हो। या फिर वह मौका पाकर वहाँ का स्वाधीन नरेश बन बैठा हो। हुएन्त्संग के वर्णन से ज्ञात होता है कि मालवे के पूर्वी भाग में बौद्ध धर्म का प्रचार बहुत कम था।

[२] यहाँ पर मालवे से प्रसिद्ध मालवदेश का ही उल्लेख है या किसी अन्य देश का इसपर ऐतिहासिकों में मतभेद है।

[३] मौखरियों की राजधानी कन्नौज थी और उसकी पश्चिमी सीमा मालवे से मिलती थी।

महाभारत में लिखा है कि सावित्री ने यम को प्रसन्न कर अपने पति सत्यवान् के प्राण बचाने के साथ ही अपने पिता अश्वपति को सौ पुत्रों की प्राप्ति भी करवाई थी। वहीं पर इन सौ पुत्रों को 'मालव' लिखा है। मौखरी अपने को मद्र नरेश अश्वपति के वंशज मानते थे। इससे ज्ञात होता है कि शायद ये भी मालव जाति की ही एक शाखा हों।

शत्रुओं से बदला लेने के लिये चढ़ाई करनी पड़ी। इसी समय मालवे पर उसका अधिकार हो गया।

आगे हर्ष वर्धन के समकालीन कवि बाणभट्ट के (विक्रम की सातवीं शताब्दी में लिखे) कादम्बरी नामक गद्य काव्य से मालवे की राजधानी उज्जयिनी का वर्णन दिया जाता है:—

"उस समय यह नगरी बड़ी ही समृद्धिशालिनी हो रही थी। इसकी रक्षा के लिये चारों तरफ एक गहरी खाई और मजबूत कोट बना हुआ था। इस कोट पर यथा समय सुफ़ेदी भी होती थी। यहाँ की दूकानों पर शङ्ख, सीप, मोती, मूंगा, नीलम, कच्चा सोना (वह रेत जिसमें से सोना निकाला जाता था), आदि, अनेक विक्रय की वस्तुएँ धरी रहती थीं। नगर में अनेक चित्र शालाएँ थीं, और उनमें सुन्दर सुन्दर चित्र बने थे। चौराहों पर सुफ़ेदी किए हुए बड़े बड़े मन्दिर थे। इनपर सोने के कलश और सुफ़ेद ध्वजाएँ लगी थीं। इनमें सब से बड़ा मन्दिर महाकाल का था। नगर के बाहर चारों तरफ़ सुफ़ेदी की हुई ऊंची जगत के कुंए बने थे, और रहट के द्वारा उनके आस पास भूमि सींची जाती थी। वहां पर केवड़े के वृक्षों की भी बहुतायत थी। अन्य बड़े बगीचों के अलावा घरों के चारों तरफ़ भी छोटे छोटे बगीचे लगाए जाते थे और उनमें लगे पुष्पों से नगर की हवा सुगन्धित रहती थी।

वसन्त ऋतु में, जिस समय कामदेव की पूजा की जाती थी, उस समय प्रत्येक घर पर सौभाग्य की सूचक घंटियाँ, लाल झंडियाँ, लाल चँवर, मूंगे लगी और मगर के चिन्हवाली ध्वजाएं लगाई जाती थीं।

नगर के अनेक स्थानों पर ब्राह्मण लोग वेद पाठ किया करते थे। फव्वारों के पास मोर नाचा करते थे। शहर में सैकड़ों तालाब बने थे, जो खिले हुए कमल के फूलों से भरे थे, और उनमें मगर भी रहते थे। इधर उधर केले के कुंजों में हाथी दाँत के काम से सुशोभित सुन्दर झोंपड़े बने थे। नगर के पास ही सिप्रा नदी बहती थी।

इसके अलावा उस नगर के निवासी बड़े ही मालदार थे। नगर में सभागृह, छात्रावास, रहटवाले कुँए, प्याऊ, पुल, आदि भी बने थे। यहाँ के लोग ईमानदार, होशियार, अनेक देशों की भाषाओं और लिपियों को जाननेवाले, वीर, हास्यप्रिय, धर्मज्ञ, अतिथि-सत्कार-परायण, साफ़ सुथरे रहनेवाले, सच्चे, सुखी, पुराण, इतिहास और कथा कहानियों से प्रेम रखने वाले थे। साथ ही वे लोग जुए का भी शौक़ रखते थे। नगर में सदा ही कोई न कोई उत्सव होता रहता था।"

इस वर्णन में सम्भव है बहुत कुछ अतिशयोक्ति हो। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि भारत के मध्य भाग में अवस्थित होने के कारण इस नगरी का सम्बन्ध भारत के दक्षिणी और पश्चिमी दोनों भागों से था और इसी से यह व्यापार का केन्द्र होने के कारण समृद्धि-शालिनी हो रही थी।

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद उसका राज्य छिन्न भिन्न हो गया था। इससे अनुमान होता है कि उस समय मालवे पर कन्नौज वालों का अधिकार हो गया होगा।

इसके बाद जिस समय काश्मीर नरेश ललितादित्य ने कन्नौज नरेश यशोवर्मा को हराया, उसी समय उसने अवन्ति (पूर्वी-मालवे) पर भी विजय प्राप्त की थी।[1]

---

[1] कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसंवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥१४४॥

❀ ❀ ❀

विशतां दशनश्रेण्यस्तस्यावन्तिषु दन्तिनाम्।
महाकालकिरीटेन्दुज्योत्स्नया खण्डिताः परम् ॥१६३॥

(राजतरंगिणी, तरंग ४)

वी० ए० स्मिथ इस घटना का समय वि० सं० ७९७ (ई० स० ७४०) के आस पास मानते हैं।

इसके बाद वि० सं० ८५७ (ई० सं० ८००) के करीब जिस समय पालवंशी नरेश धर्मपाल ने कन्नौज विजय कर वहाँ की गद्दी पर इन्द्रायुध के स्थान पर चक्रायुध को बिठाया उस समय अवन्तिवालों ने भी उसे स्वीकार किया था। इससे अनुमान होता है कि शायद उस समय भी मालवे का सम्बन्ध कन्नौज से रहा हो।

दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश गोविन्दराज तृतीय के श० सं० ७३० (वि० सं० ८६५ = ई० स० ८०८ के दानपत्र से प्रकट होता है कि उसने भी उक्त वर्ष के पूर्व मालवे को जीता था।

इसकी पुष्टि श० सं० ७३४ (वि० सं० ८६९ ई० स० ८१२) के लाट नरेश राष्ट्रकूट कर्कराज के दान पत्र से भी होती है। उसमें लिखा है कि उसने गौड़ देश विजयी गुर्जर नरेश से मालवे की रक्षा की थी।

इन अवतरणों से प्रकट होता है कि मालवे पर कुछ समय के लिये दक्षिण के राष्ट्रकूटों का आधिपत्य भी रहा था। परन्तु इसके बाद ही कन्नौज विजयी नागभट द्वितीय द्वारा मालवे के दुर्ग का विजय करना लिखा मिलता है।[1]

इस प्रकार मालव देश पर, अनेक वंशों का राज्य रहने के बाद, वि० सं० ९०० (ई० सं० ८४३) के करीब, परमारों का अधिकार हुआ होगा।

इस वंश के ७वें राजा मुञ्ज (वाक्पति राज) का देहान्त वि० सं० १०५० और १०५४ (ई० सं० ९९३ और ९९७) के बीच हुआ था। इस लिये प्रत्येक राजा का २० वर्ष राज्य करना मानकर, वि० सं० १०५०

---

[1] ग्वालियर की प्रशस्ति।

(आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया की ई० स० १६०३—४ की वार्षिक रिपोर्ट पृ० २८१)

(ई० स० ९९३) में से ६ राजाओं के १२० वर्ष निकाल देने से भी इस वंश के प्रथम राजा उपेन्द्र (कृष्णराज) का समय वि० सं० ९१० से ९३० (ई० स० ८५३ से ८७३) के करीब ही आवेगा।[1]

---

[1] डाक्टर बूलर मालवे के परमारों के राज्य का प्रारम्भ ई० स० ८०० (वि० सं० ८५७) के आस-पास से मानते हैं। श्रीयुत सी० वी० वैद्य का मत है कि, जब मुञ्ज (वाक्पतिराज) और भोज के दानपत्रों में इस वंश के नरेशों की वंशावली इस प्रकार मिलती है :—

१ कृष्ण (उपेन्द्र), २ वैरिसिंह, ३ सीयक, ४ वाक्पतिराज, ५ सिन्धु-राज और ६ भोज।

तब केवल उदयपुर (ग्वालियर) की (ई० स० की १२वीं शताब्दी की) प्रशस्ति में वाक्पतिराज के बाद और सिन्धुराज के पहले फिर से ५ वैरिसिंह, ६ सीयक, और ७ वाक्पतिराज के नाम लिखे देखकर सिन्धुराज के बड़े भ्राता वाक्पतिराज (मुञ्ज) को इस वंश का चौथा नरेश मानने के बदले सातवाँ नरेश मान लेना उचित नहीं है। (नागपुर की प्रशस्ति में इनकी वंशावली वैरिसिंह से ही मिलती है।) इसी अनुमान के आधार पर वे कृष्णराज (उपेन्द्र) का समय ई० सं० ९१० से ९३० (वि० सं० ९६७ से ९८७) के करीब तक मानते हैं। उनका अनुमान है कि कन्नौज के प्रतिहार नरेश महीपाल के समय दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश इन्द्रराज तृतीय के हमले के कारण जिस समय प्रतिहार राज्य शिथिल पड़ गया उसी समय उनके सामन्त कृष्णराज ने स्वाधीन होकर मालवे के स्वतंत्र परमार राज्य की स्थापना की होगी।

परन्तु यह भी सम्भव है कि उपेन्द्र (कृष्णराज) से वाक्पतिराज प्रथम तक ये लोग कन्नौजवालों के अधीन रहे हों और वैरिसिंह द्वितीय के समय से ही जिसने अपने छोटे भाई डंबरसिंह को बागड़ का इलाक़ा जागीर में दिया था पहले पहल स्वतन्त्र हुए हों। तथा इसी से तिलकमञ्जरी आदि

में इससे पूर्व के नामों के साथ ही उपेन्द्र (कृष्णराज) का नाम भी जोड़ दिया गया हो ।

इसके अलावा इससे मिलते हुए एक ही वंश के एकाधिक नरेशों के एक से नामों के उदाहरण दक्षिण और लाट के राष्ट्रकूटों की वंशावलियों में भी मिलते हैं ।

वैद्य महाशय का यह भी कहना है कि प्रतापगढ़ से मिले वि० सं० १००३ (ई० स० ९४६) के एक लेख से (ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भाग १४, पृ० १८५-१८६) ज्ञात होता है कि चाहमान इन्द्रराज के बनवाए सूर्य मन्दिर के लिये, दामोदर के पुत्र माधव ने अपने स्वामी की आज्ञा से एक गाँव दान दिया था । यह माधव अपने को वल्लिग (महेन्द्रपाल द्वितीय) की तरफ़ से नियत किया हुआ उज्जैन का दण्डनायक प्रकट करता है । यह दान भी उज्जैन में ही दिया गया था ।

ऐसी हालत में उस समय तक मालवे के परमार नरेशों का किसी अंश तक कन्नौज के प्रतिहारों के अधीन रहना अवश्य मानना होगा ।

मालव जाति और उसका चलाया विक्रम संवत्।

मालवे के प्राचीन इतिहास का वर्णन करने के बाद यहाँ पर मालव जाति का भी कुछ उल्लेख करदेना अनुचित न होगा।

प्राचीन काल में 'मालव' नाम की एक जाति अवन्ति प्रदेश (मध्य-भारत) में रहती थी, और सम्भवत: इसी जाति के निवास के कारण उक्त प्रदेश का नाम मालवा पड़ गया था।

कर्कोटक (जयपुर राज्य) से कुछ ऐसे सिक्के मिले थे, जिन पर 'मालवानां जय' लिखा हुआ था। विद्वान लोगों ने उन सिक्कों को वि० सं० पूर्व १९३ से वि० सं० ३०७ (ई० स० पूर्व २५० से ई० स० २५०) के बीच का अनुमान किया है।[१] इससे ज्ञात होता है कि सम्भवत: ये सिक्के मालव जाति ने अपनी अवन्ति देश की विजय के उपलक्ष में ही चलाए होंगे, और उसी समय अपने नये संवत् की भी स्थापना की होगी। आधुनिक ऐतिहासिकों के मतानुसार इनका यह संवत् प्रचलित होने के बाद ८९७ वर्ष तक तो मालव[२] संवत्

---

१ कनिंगहाम का अनुमान है कि ग्रीक लेखकों ने पंजाब की जिस 'मल्लोई' जाति का उल्लेख किया है वही ईसा की पहली शताब्दी के करीब राजपूताने की तरफ़ से होकर मालवे में जा बसी थी।

२ शिला लेखों में मिले मालव संवत् के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

(क) 'श्रीर्मालवगणाम्नाते प्रशस्तकृतसंज्ञिते

एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समाशतचतुष्टये।

अर्थात् मालव संवत् ४६१ बीतने पर।

ही कहाता रहा। परन्तु फिर विक्रम संवत्[1] के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

(मन्दसौर से मिला नरवर्मा का लेख—ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भाग १२, पृ० ३२०)

(ख) 'मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेऽब्दानां'।

अर्थात्—मालवगणों के चलाए संवत् ४९३ के बीतने पर।

(मन्दसौर से मिला कुमारगुप्त प्रथम के समय का लेख—'गुप्त इन्सक्रिपशन्स, पृ० ८३।)

(ग) 'संवत्सरशतैर्यातैः सपंचनवत्यर्गलैः सप्तभिर्मालवेशानां'।

अर्थात्—मालव (देश या जाति के नरेशों के) संवत् ७९५ के बीतने पर।

(कणस्वा—कोटा के पास—से मिला शिवमन्दिर का लेख—इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भा० १९, पृ० ५९)

यद्यपि धिनिकि (काठियावाड़) से मिले ७९४ के लेख में संवत् के साथ विक्रम का नाम जुड़ा है :—

"विक्रम संवत्सरशतेषु सप्तसु चतुर्णवत्यधिकेष्वंकतः ७९४ कार्तिकमासापरपक्षे अमावास्यायां आदित्यवारे ज्येष्ठानक्षत्रे रविग्रहण पर्वणि।"

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२ पृ० १५५)

तथापि उस दिन रविवार, ज्येष्ठा नक्षत्र और सूर्यग्रहण का अभाव होने और उस लेख की लिपि के उस समय की लिपि से न मिलने से डाक्टर फ़्लीट और कीलहार्न उसे जाली बतलाते हैं।

[1] लेखों में मिला सब से पहला विक्रम संवत् का उल्लेख—

'वसुनवअष्टौवर्षा गतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य'।

समुद्रगुप्त के इलाहाबाद वाले लेख में उसका इसी मालव जाति से कर वसूल करना लिखा है।

अर्थात्—विक्रम संवत् के ८९८ वर्ष बीतने पर।

(धौलपुर का चौहान चण्डमहासेन का लेख—इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भाग १६, पृ० ३५)

डाक्टर कीलहार्न का अनुमान है कि ईसवी सन् ५४४ (वि० सं० ६०१) में मालवे के प्रतापी राजा यशोधर्मा ने करूर (मुलतान के पास) में हूण नरेश मिहिरकुल को हराकर विक्रमादित्य की उपाधि धारण की और उसी समय पूर्व प्रचलित मालव सं० में ५६ वर्ष जोड़कर उसे ६०० वर्ष का पुराना घोषित कर दिया। साथ ही उसका नाम बदलकर मालव संवत् के स्थान पर विक्रम संवत् रख दिया।

परन्तु एक तो यशोधर्मा के विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण करने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। दूसरा एक प्रतापी राजा अपना निज का संवत् न चलाकर दूसरे के चलाए संवत् का नाम बदलने के साथ ही उसमें ५६ वर्ष जोड़कर उसे ६०० वर्ष का पुराना सिद्ध करने की चेष्टा करे यह भी सम्भव प्रतीत नहीं होता। तीसरा श्रीयुत सी० वी० वैद्य ने अलबेरूनी के आधार पर करूर के युद्ध का ई० स० ५४४ (वि० सं० ६०१) से बहुत पहले होना सिद्ध किया है।

मिस्टर वी० ए० स्मिथ भी इस घटना का समय ई० स० ५२८ (वि० सं० ५८५) के करीब मानते हैं।

डाक्टर फ्लीट कनिष्क को विक्रम संवत् का चलानेवाला मानते हैं। परन्तु यह भी अनुमान ही है। मिस्टर वी० ए० स्मिथ और सर भण्डारकर का अनुमान है कि गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त द्वितीय ने, जिसकी उपाधि 'विक्रमादित्य' थी, इस मालव संवत् का नाम बदलकर विक्रम संवत् रख दिया था। परन्तु जब एक तो स्वयं चन्द्रगुप्त के पूर्वजों का चलाया गुप्त संवत् उस समय और उसके बाद तक भी प्रचलित था, दूसरा चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद भी करीब

४०० वर्षों तक विक्रम संवत् का नाम मालव संवत् ही लिखा जाता था, तब समझ में नहीं आता कि यह मत कहाँ तक ठीक हो सकता है ?

इसके अलावा यह भी सिद्ध नहीं होता कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही सब से पहला विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाला था; क्योंकि आन्ध्र-वंशी नरेश हाल (शालिवाहन) की, जिसका समय स्वयं वी० ए० स्मिथ के मतानुसार ई० स० ५० (वि० सं० १०७) के करीब आता है, बनाई प्राचीन मराठी भाषा की 'गाथा सप्तशती' में यह गाथा मिलती है :—

संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुहकरे लक्खं ।
चलणेण विक्कमाइच्चचरिअमणुसिक्खिअं तिस्सा ॥

(गाथा ४६४, श्लो० ६५)

संस्कृतच्छाया—

संवाहन-सुखरसतोषितेन ददता तवकरे लक्षम् ।
चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ॥

इससे उस समय के पूर्व भी विक्रमादित्य का, जो एक प्रसिद्ध दानी था, होना प्रकट होता है ।

इसी प्रकार (सर भण्डारकर के मतानुसार) हाल (सातवाहन) ही के समय की बनी महाकवि गुणाढ्य-रचित पैशाची भाषा की 'बृहत्कथा' नामक पुस्तक में भी विक्रमादित्य का नाम आया है । इससे भी उपर्युक्त कथन की ही पुष्टि होती है ।

यद्यपि 'बृहत्कथा' नामक ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला है, तथापि उसका 'कथा सरित्सागर' नाम का संस्कृतानुवाद, जो सोमदेव भट्ट ने विक्रम की बारहवीं शताब्दी* में तैयार किया था, प्राप्त हो

* यह अनुवाद सोमदेव ने काश्मीर नरेश अनन्तराज के समय (वि० सं० १०७५ और ११३७=ई० स० १०२८ और १०८० के बीच उसकी विदुषी रानी सूर्यवती की आज्ञा से बनाया था। इसके २५ हज़ार श्लोकों में गुणाढ्य रचित १ लाख श्लोकों की बृहत्कथा का सार है ।

चुका है । उसके लंबक ६ तरंग १ में उजैन नरेश विक्रमसिंह का उल्लेख है।

कल्हण की बनाई राजतरंगिणी में भी शकारि विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है।

इतिहास से प्रकट होता है कि ईसवी सन् से करीब १४० (वि० सं० से ८३) वर्ष पूर्व शक लोग उत्तर-पश्चिम की तरफ़ से भारत में आए थे। उनकी एक शाखा ने अपना राज्य मथुरा में और दूसरी ने काठियावाड़ में स्थापित किया था। यद्यपि दूसरी शाखा के शकों (क्षत्रपों) को चन्द्रगुप्त द्वितीय ने हराया था, तथापि पहली (मथुरा की) शाखा का विक्रम संवत् के प्रारम्भ के निकट (इ० स० से ५७ वर्ष पूर्व) से ही कुछ पता नहीं चलता। ऐसी हालत में सम्भव है शकों की उस शाखा के राज्य की समाप्ति मालव-नरेश विक्रमादित्य ने ही की हो, और उसी की यादगार में अपना नया संवत् चलाया हो। यह तो मानी हुई बात है कि मालव जाति के लोगों का एक गण राज्य (Oligarchical) था। सम्भव है, विक्रमादित्य के उसका मुखिया (President) होने के कारण उसका चलाया संवत् पहले पहल मालव और विक्रम दोनों नामों से प्रसिद्ध रहा हो, परन्तु कालान्तर में मालव जाति के प्रभाव के घटजाने और दन्तकथाओं आदि के कारण विक्रम का यश खूब फैल जाने से लोगों ने इसे मालव संवत् के स्थान में विक्रम संवत् कहना ही उचित समझ लिया हो। परन्तु फिर भी इस विषय में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस संवत् का प्रारम्भ कलियुग संवत् के ३०४४ वर्ष बाद हुआ था। इसका और शक संवत् का अन्तर १३५ वर्ष का और इसका और ईसवी सन् का अन्तर करीब ५७ वर्ष का है। इस लिये विक्रम संवत् में ३०४४ वर्ष जोड़ने से कलियुग संवत्, तथा उस में से १३५ वर्ष निकालने से शक संवत् और ५६ या ५७ घटाने से ईसवी सन् आ जाता है।

उत्तरी भारत वाले इसका प्रारम्भ, चैत्र शुक्ला १ से, और दक्षिणी

भारत वाले, कार्तिक शुक्ला १ से मानते हैं। इससे उत्तरी विक्रम संवत् का प्रारम्भ दक्षिणी विक्रम संवत् से ७ महीने पूर्व ही हो जाता है। इसी प्रकार उत्तरीभारत में इसके महीनों का प्रारम्भ कृष्णपक्ष की १ से होकर उनका अन्त शुक्लपक्ष की १५ को होता है। परन्तु दक्षिणी भारत में महीनों का प्रारम्भ शुक्ल पक्ष की १ को और अन्त कृष्णपक्ष की ३० को माना जाता है। इसी से उत्तरी भारत के महीने पूर्णिमान्त और दक्षिणी भारत के अमान्त कहलाते हैं।

इसके अलावा यद्यपि दोनों स्थानों के प्रत्येक मास का शुक्ल पक्ष एक ही रहता है, तथापि उत्तरी भारत का कृष्ण पक्ष दक्षिणी भारत के कृष्ण पक्ष से एक मास पूर्व आजाता है। अर्थात् जब उत्तरी भारतवालों का वैशाख कृष्ण होता है तो दक्षिणी भारतवालों का चैत्र कृष्ण समझा जाता है। परन्तु उनके यहाँ महीने का प्रारम्भ शुक्ल पक्ष की १ से मानने के कारण शुक्लपक्ष में दोनों का वैशाख शुक्ल आजाता है।

पहले काठियावाड़, गुजरात और राजपूताने के कुछ भागों में विक्रम संवत् का प्रारम्भ आषाढ शुक्ल १ से भी माना जाता था जैसा कि आगे के अवतरणों से सिद्ध होगा:—

(क) "श्रीमन्नृपविक्रमसमयातीतआपाढादि संवत् १५५५ वर्षे शाके १४२० माघमासे पंचम्यां"

अड़ालिज (अहमदाबाद) से मिला लेख (इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० २५१)

(ख) "श्री मन्नृपविक्रमार्क्कराज्यसमयातीत संवत् १६ आषाढि २३ वर्षे (१६२३) शाके १४८८"

डेसा (डूंगरपुर) से मिला लेख

राजपूताने के उदयपुर राज्य में विक्रम संवत् का प्रारम्भ श्रावण कृष्ण १ से माना जाता है।

इसी प्रकार मारवाड़ प्रान्त के सेठ साहूकार भी इसका प्रारम्भ उसी दिन से मानते हैं।

———

राज भोज के पूर्व की भारत की दशा ।

इससे पहले मालवे का संक्षिप्त इतिहास दिया जा चुका है। इस अध्याय में भोज के पूर्व के भारत की दशा का संक्षिप्त विवरण लिखा। जाता है।

सम्राट् अशोक के समय से ही भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का प्रचार हो गया था। यद्यपि बीच बीच में शुङ्ग और गुप्त वंशी नरेशों के समय राज्य की तरफ़ से वैदिक धर्म को फिर से उत्तेजना मिली थी तथापि उस में स्थिरता न होने से सर्व साधारण का अनुराग बौद्ध धर्म के प्रति अधिकांश मे वैसा ही बना रहा। पहले पहल वि० सं० ७५७ ई० स० ७०० के करीब कुमारिल ने और इसके बाद वि० सं० ८५७ (ई० स० ८००) के करीब शङ्कर ने बौद्धमत के स्थान पर फिर से वैदिक मत को स्थापन करने की चेष्टा की। इससे बौद्ध धर्म को बड़ा धक्का लगा और लोगों की सहानुभूति बौद्ध धर्म के अनुयायी अन्य जाति के नरेशों की तरफ़ से हटकर फिरसे पुराने क्षत्रिय राजवंशों की तरफ़ हो गई। यही कारण था कि वे लोग राजनैतिक रङ्गभूमि में एक बार फिर अपना कार्य करते हुए दिखाई देने लगे। बौद्धमत का स्थान पञ्चदेवों (शिव, विष्णु, गणपति, देवी और सूर्य) की उपासना ने लिया। परन्तु उस समय के उपासक आजकल के उपासकों की तरह एक दूसरे से द्वेष नहीं रखते थे।

यद्यपि वैदिक मत के फिर से प्रचार होने के कारण जितना धक्का बौद्धमौत को लगा था उतना जैनमत को नहीं लगा, तथापि उसमें भी बहुत कुछ शिथिलता आगई थी और वे सर्व साधारण लोग, जो अब तक बौद्ध और जैन धर्म के ग्रंथों के पठन पाठन के लिये प्राकृत को अप-

नाते चले आते थे, अब मे वैदिक अथवा पौराणिक ग्रंथों की जानकारी के लिये संस्कृत को अपनाने लगे परन्तु जब व्याकरण के नियमों आदि के कारण उन्हें इस कार्य में कठिनता प्रतीत होने लगी, तब उन्होंने अनेक प्राकृत और प्रादेशिक शब्दों के मिश्रण से धीरे धीरे प्रान्तिक भाषाओं को जन्म देना प्रारम्भ करदिया।

श्रीयुत सी० वी० वैद्य का अनुमान है कि वि० सं० १०५७ (ई० स० १०००) तक प्राकृत से उत्पन्न हुई महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची भाषाओं का स्थान मराठी, हिन्दी, बंगला और पंजाबी भाषाएं[1] लेने लगी थीं। इसी प्राकर दक्षिण की तामील, मलयालं, तेलेगु, कनारी,[2] आदि भाषाएं भी अस्तित्व में आ गई थीं।

उस समय प्रान्त भेद या असवर्ण विवाह से उत्पन्न हुई उपजातियों का अस्तित्व बहुत कम था। भारतवर्ष भर के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य एक ही समझे जाते थे। ये लोग सवर्ण विवाह के साथ साथ अनुलोम विवाह भी कर सकते थे। ऐसे अनुलोम[3] विवाहों की सन्तान माता के वर्ण की मानी जाती थी। उस समय ब्राह्मणों की पहचान उनके गोत्र और उनकी शाखा से ही की जाती थी।

इब्नखुर्दादबा ने हि० स० ३०० (वि० सं० ९६९ = ई० स० ९१२) के करीब 'किताबुल ममालिक वउल ममासिक' नामक पुस्तक

[1] लाट (दक्षिण-गुजरात) की भाषा से ही आधुनिक गुजराती का जन्म माना जाता है।

[2] अलमसूदी ने हि० सं० ३३२ (वि० सं० १००१ = ई० सं० ९४४) में लिखी अपनी 'मुरूजुल ज़हब' नामक पुस्तक में मानकीर (मान्यखेट) के राष्ट्रकूटों के यहाँ की भाषा का नाम 'कीरिया' लिखा है।

(ईलियट्स हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भा० १ पृ० २४)

[3] ईसवी सन् की १८ वीं शताब्दी में उत्पन्न हुए ब्राह्मण राजशेखर का विवाह चाहमान वंश की क्षत्रिय कन्या से हुआ था।

लिखी थी। उसके लेख से प्रकट होता है कि उस समय हिन्दुस्तान में कुल मिलकर नीचे लिखी सात जातियाँ थीं[१] :—

१ साबक्रीआ—यह सब से उच्चजाति मानी जाती थी, और राजा लोग इसी जाति से चुने जाते थे। (श्रीयुत सी० वी० वैद्य इस शब्द को 'सुक्षत्रिय' का बिगड़ा हुआ रूप मानते हैं।)

२ ब्रह्म—ये शराब बिलकुल नहीं पीते थे।

३ कतरीअ—ये शराब के केवल तीन प्याले तक पी सकते थे। ब्राह्मण लोग इनकी कन्याओं के साथ विवाह करलेते थे। परन्तु वे अपनी कन्याएँ इन्हें नहीं देते थे। (यह शब्द 'क्षत्रिय' का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है।[२])

४ सूदरिआ—ये खेती करते थे।

५ बैसुरा—ये शिल्पी और व्यापारी होते थे।

६ संडालिआ—ये नीच काम किया करते थे। (यह शायद चांडाल का बिगड़ा हुआ रूप हो।)

७ लहूड़—ये लोग कुशलता के कार्य दिखला कर जनता को प्रसन्न किया करते थे और इनकी स्त्रियाँ शृंगार-प्रिय होती थीं। (शायद ये लोग नट, आदि का पेशा करनेवाले हों)

---

[१] इलियट्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भा० १ पृ० १६-१७। (वहीं पर भारत में कुल ४२ संप्रदायों का होना भी लिखा है।) मैगैस्थनीज़ ने भी आज से २२ सौ वर्ष पूर्व के अपने भारतीय विवरण में इनसे मिलती हुई सात जातियों का वर्णन किया है।

[२] सम्भव है उस समय खेती करने वाले क्षत्रियों का एक जत्था अलग ही बनगया हो। मारवाड़ में इस समय भी यह कहावत प्रचलित है कि 'जोधपुर में राज करे वे जोधाही दूजा' अर्थात् जोधपुर बसाने वाले राव जोधजी के अन्य साधारण वंशज उन्हीके वंशज जोधपुर नरेशों की समतानहीं कर सकते।

इब्नखुर्दादबा एक विदेशी (अरब) और भिन्न संस्कृति का पुरुष था। इसीसे उसने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के क्रम को समझने में भूल की हो तो आश्चर्य नहीं। इस अनुमान की पुष्टि व्यापारी सुलेमान की हि० स० २३७ (वि० सं० ९०९=ई० स० ८५२) में लिखी 'सलसिला तुत्तवारीख' नाम की पुस्तक में भी होती है।

उसमें लिखा है[१]:—

"भारतीय राज्यों में सबसे उच्च एक ही वंश समझा जाता है। इसी के हाथ में शक्ति रहती है। राजा अपने उत्तराधिकारी को नियत करता है। इस वंश के लोग पढ़े लिखे और वैद्य होते हैं। इनकी जाति अलग ही है और इनका पेशा दूसरी जाति के लोग नहीं कर सकते।"

परन्तु वास्तव में द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) में एक दूसरे का पेशा अपनाने में विशेष बाधा नहीं थी।

अलमसऊदी के लेख[२] से प्रकट होता है कि —"अन्य कृष्ण वर्ण के लोगों से हिन्दू लोग बुद्धि, राज्य प्रणाली, उच्च विचार, शक्ति, और रंग में श्रेष्ठ थे।"

उसी के लेख से यह भी ज्ञात होता[३] है कि—"हिन्दू शराब नहीं पीते थे और पीनेवालों से घृणा करते थे। इसका कारण धार्मिक बाधा न होकर शराब से होनेवाला विचार शक्ति का ह्रास ही समझा जाता था। यदि उस समय के किसी राजा का मदिरा सेवन करना सिद्ध हो जाता था तो उसे राज्य से हाथ धोना पड़ता था, क्योंकि उस समय के भारत वासियों का मत था कि राजा की मानसिक शक्ति पर शराब का असर हो जाने से उसकी राज्य करने की शक्ति का लोप हो जाता है।"

---

[१] ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भा० १, पृ० ६।

[२] ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, भा० १, पृ० २०।

[३] ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, भा० १, पृ० २०।

यद्यपि उन दिनों वैदिक धर्म का प्रभाव बढ़ा चढ़ा था, तथापि बौद्ध और जैनमत के संस्कारों के कारण लोग जीवहिंसा और मांस भक्षण से परहेज़ करते थे। परन्तु यज्ञ और श्राद्ध में इसका निषेध नहीं समझा जाता था।[1] ब्राह्मण लोग गाय के दूध के सिवाय बकरी आदि का दूध और लहसुन, प्याज़ आदि नहीं खाते थे। सारे ही द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) एक दूसरे के हाथ का भोजन करने में परहेज़ नहीं करते थे। साथ ही सच्छूद्रों के हाथ का भोजन भी ग्राह्य समझा जाता था।[2]

सिंध और मुलतान को छोड़ कर, जहाँ मुसलमानों का प्रभाव पड़ चुका था, अन्य प्रदेशों के भारतीय लोग बहुधा उष्णीष उत्तरीय और अधोवस्त्र (साफ़ा, दुपट्टा और धोती) ही पहनते थे। परन्तु विदेशियों के सम्बन्ध के कारण पायजामा चोला और बाहोंवाली बंडी का प्रचार भी हो चला था। स्त्रियाँ कंचुकी, साड़ी या लहँगा पहनती थीं।

आर्य नरेशों में से यदि एक नरेश दूसरे पड़ौसी नरेश पर विजय प्राप्त करता था तो उसी नरेश को या उसके वंश के किसी अन्य व्यक्ति को वहाँ का अधिकार सौंप देता था।[3] हाँ विजेता इसकी एवज़ में उससे

---

[1] व्यास-स्मृति में लिखा है :—

नाश्नीयाद्‌ ब्राह्मणोमांसमनियुक्तः कथंचन।
क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन् पतति द्विजः॥
मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्यपितृदेवताः।
क्षत्रियो द्वादशोनं तत्क्रीत्वा वैश्योपि धर्मतः॥

[2] व्यास-स्मृति में लिखा है :—

धर्मेणान्योन्यभोज्यान्नाः द्विजास्तु विदितान्वयाः।
नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः॥
शूद्राणामप्यमीषां तु भुक्त्वान्नं नैव दुष्यति।

[3] अबूज़ैद के लेख से भी इसकी पुष्टि होती है।

(ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, भा० १, पृ० ७)

कर के रूप में एक उचित रकम अवश्य ठहरा लेता था। परन्तु अनार्य (द्रविड़) लोगों में यह प्रथा नहीं थी।

अरब व्यापारी सुलैमान के लेख से प्रकट होता है[१] कि—भारतीय नरेशों के पास बड़ी बड़ी सेनाएं रहती थीं। परन्तु उनको वेतन नहीं दिया जाता था। राजा लोग धार्मिक युद्ध के समय ही उन्हें एकत्रित किया करते थे। ये सैनिक लोग उस समय भी राजा से बिना कुछ लिए ही अपने निर्वाह का प्रबन्ध आप करते थे।

इससे अनुमान होता है कि सम्भवत: उन सैनिकों को ऐसे कार्यों के लिए वंश परम्परागत भूमि मिली रहती थी। परन्तु दक्षिण के राष्ट्र-कूटों, कन्नौज के प्रतिहारों और बंगाल के पालों के यहाँ वेतन भोगी सेना भी रहती थी। ऐसी सेनाओं में देशी और विदेशी दोनों ही सैनिक भरती हो सकते थे। सेना में अधिकतर हाथी, सवार और पैदल ही रहते थे और उस समय के राजा लोग अक्सर एक दूसरे से लड़ते रहते थे।

राजा लोग खेती की उपज का छठा और व्यापार की आय का पचासवाँ भाग कर के रूप में लेते थे।

उस समय काबुल से कामरूप और कोंकन तक अधिकतर क्षत्रिय जाति के नरेशों का ही अधिकार था।

प्रबन्ध के सुभीते के लिये वे अपने राज्य को कई प्रदेशों में बांट देते थे, जिन्हें भुक्ति (जिला), मंडल (तालुका), विषय (तहसील), आदि कहते थे।

इसी प्रकार राज्य प्रबन्ध के लिये अनेक राज-कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे, जो राष्ट्रपति (सूबेदार), विषय पति (तहसीलदार), महत्तर (गाँव का मुखिया), पट्टकिल (पटेल), आदि कहाते थे।

---

[१] इलियट्स हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भा० १, पृ० ७।

भोज के समय की भारत की दशा।

यवन आक्रमण[1]

राजा भोज के गद्दी पर बैठने के पूर्व से ही भारत के इतिहास में एक महान् परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया था। वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) में गजनी के सुलतान अबू इसहाक के मरने पर उसका सेनापति (और उसके पिता अलप्तगीन का तुर्की जाति का गुलाम) अमीर सुबुक्तगीन गजनी के तख़्त पर बैठा। इसके बाद उसी वर्ष उसने अपने पुत्र सुलतान महमूद को साथ लेकर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। उस समय सरहिंद से लमग़ान और मुलतान से काश्मीर तक का प्रदेश भीमपाल के पुत्र जयपाल[2] के अधिकार में था और वह भटिण्डा के क़िले में निवास करता था। यद्यपि एक बार तो जयपाल ने आगे बढ़ सुबुक्तगीन की सेना का बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि अन्त में उसे हार मानकर सन्धि करनी पड़ी। अमीर सुबुक्तगीन ने अपने पुत्र

---

[1] 'फ़तूहुलबुलदान' में लिखा है कि जुनैद ने उजैन पर सेना भेजी और हबीद को सेना सहित मालवे की तरफ़ भेजा। इन लोगों ने उक्त प्रदेशों को खूब रौंदा।

(इलियट् का अनुवाद, भा० १, पृ० १२६)

यह घटना हि० स० १०५, (वि० सं० ७८१ = ई० स० ७२४) के करीब की है।

[2] तारीख़ फ़रिश्ता में जयपाल को ब्राह्मण लिखा है।

(ब्रिग्ज़ का अनुवाद, भा० १, पृ० १५)

महमूद की इच्छा के विरुद्ध होते हुए भी उस सन्धि को स्वीकार कर लिया।

इस सन्धि की एवज़ में राजा ने सुबुक्तगीन को ५० हाथी और बहुत सा द्रव्य देने का वादा किया था। इसमें से कुछ तो उसी समय दे दिया गया और कुछ के लिये उसने लाहोर से भेजने का वादा कर सुबुक्तगीन के आदमी अपने साथ ले लिये। इन साथ चलनेवालों की प्राण-रक्षा का विश्वास दिलाने को राजा ने भी अपने कुछ आदमी अमीर के पास छोड़ दिए थे। परन्तु लाहोर पहुँचते ही राजा ने (अमीर को गज़नी की तरफ़ गया समझ) उन साथ में आए हुए यवनों को क़ैद कर दिया।

फ़रिश्ता लिखता है कि— उस समय हिन्दुस्तान के राजाओं के यहाँ ऐसे कामों पर विचार करने के लिये सभा की जाती थी और उसी के निश्चयानुसार सब काम होता था। सभा में ब्राह्मण राजा की दाहिनी ओर और क्षत्रिय बाँई ओर स्थान पाते थे।

परन्तु राजा ने सभासदों का कहना न माना। जब सुबुक्तगीन को (गज़नी में) यह समाचार मिला तब उसने इसका बदला लेने के लिये तत्काल जयपाल पर चढ़ाई करदी। यह देख जयपाल भी देहली, अजमेर, कालिंजर और कन्नौज के नरेशों को लेकर उसके मुकाबले को आया। सुबुक्तगीन ने अपने सैनिकों के पाँच पाँच सौ के दस्ते बनाकर उन्हें बारी बारी से हिन्दुओं की सेना के एक ही भाग पर हमला करने की आज्ञा दी। परन्तु अन्त में जब उसने हिन्दुओं की फ़ौज को घबराई हुई देखा तब एकाएक सम्मिलित बल से उसपर हमला कर दिया। इससे भारतीय सेना के पैर उखड़ गए। यह देख यवन वाहिनी ने भी नीलाब (सिंधु) नदी तक उसका पीछा किया। इस विजय में लूट के बहुत से माल के साथ ही नीलाब (सिंधु) नदी का पश्चिमी प्रान्त भी मुसलमानों के अधिकार में चला गया।

इसके बाद पेशावर में अपना प्रतिनिधि और उसकी रक्षा के लिये २००० सैनिक[1] रखकर सुबुक्तगीन गज़नी लौट गया।[2]

सुबुक्तगीन के बाद उसके पुत्र महमूद ने भारतीय नरेशों के वैमनस्य से लाभ उठाने का विचार कर वि० सं० १०५७ (ई० स० १००१=हि० स० ३९१) से वि० सं० १०८४ (ई० स० १०२७=हि० स० ४१८) तक हिन्दुस्तान पर अनेक आक्रमण किए।

वि० सं० १०६६ (ई० स० १००९=हि० सं० ३९९) में मुल-तान के शासक दाऊद की सहायता करने के कारण महमूद ने जयपाल के पुत्र आनन्दपाल पर चढ़ाई की। यह देख आनन्दपाल ने अन्य भारतीय नरेशों को भी अपनी सहायता के लिये बुलवाया। इसपर उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, देहली और अजमेर के राजा उसकी सहायता को पहुँचे। इन हिन्दू नरेशों की सम्मिलित सैन्य का पड़ाव ४० दिन तक पेशावर के पास रहा। इस युद्ध के खर्चे के लिये अनेक प्रान्तों की स्त्रियों ने अपने जेवर वगैरा बेचकर बहुत सा धन भेजा था और गक्खर वीर भी इसमें भाग लेने के लिये आ उपस्थित हुए थे।

महमूद ने क्षत्रिय वीरों के बलवीर्य की परीक्षा करने के लिये पहले अपनी तरफ के १००० सैनिकों[3] को आगे बढ़ उनपर तीर चलाने की आज्ञा दी। उसका खयाल था कि इससे क्रुद्ध होकर राजपूत लोग स्वयं ही आक्रमण कर देंगे। परन्तु उसी समय गक्खरों ने आगे बढ़

---

[1] ब्रिग्ज़ के अनुवाद में १०००० सवार लिखे हैं।

(देखो भा० १, पृ० १९)

[2] फ़रिश्ता, भा० १, पृ० १९-२० (ब्रिग्ज़ का अँगरेज़ी अनुवाद, भा० १, पृ० १६-१९)।

[3] ब्रिग्ज़ के अनुवाद में ६००० सैनिकों को आज्ञा देना लिखा है।

(देखो भा० १, पृ० ४६)

उसके सैनिकों का इस वीरता से सामना किया कि स्वयं महमूद के बढ़ावा देते रहने पर भी यवन तीरंदाजों के पैर उखड़ गए। यह देख ३०००० वीर गक्खर नंगे सिर और नंगे पैर शस्त्र लेकर मुसलमानी फौज पर टूट पड़े। थोड़ी देर के घोर संग्राम में तीन चार हज़ार[1] गज़-नवी काट डाले गए। सुलतान स्वयं भी एक तरफ़ हटकर लड़ाई बन्द करनेवाला ही था कि अकस्मात् एक नफ़्थे[2] के गोले की आवाज़ से आनन्दपाल का हाथी भड़क कर भाग खड़ा हुआ। बस फिर क्या था। हिन्दू सैनिकों ने समझा कि हमारी हार हो गई है और आनन्दपाल शत्रु को पीठ दिखाकर जा रहा है। यह सोच वे भी भाग खड़े हुए। महमूद की हार भाग्य के बल से एकाएक जीत में बदल गई। इससे ८००० हिन्दू योद्धा भागते हुए मारे गए और बहुत से माल असबाब के साथ ही तीस हाथी महमूद के हाथ लगे।[3]

इस युद्ध में आनन्दपाल की सहायता करनेवाला उज्जैन का राजा सम्भवत: भोज ही था।

महमूद के इन हमलों के कारण पंजाब, मथुरा, सोमनाथ, कालिंजर, आदि पर उसका अधिकार हो गया।[4]

---

[1] ब्रिग्ज के अनुवाद में ५००० मुसलमानों का मारा जाना लिखा है।

(भा० १, पृ० ४७)

[2] एक जलनेवाला पदार्थ।

[3] फ़रिश्ता, भा० १, पृ० २६ (ब्रिग्ज़ का अँगरेज़ी अनुवाद, भा० १, पृ० ४६–४७)।

[4] 'दीवाने सलमान' में महमूद गज़नवी को, अपनी युवराज अवस्था में, मालवा और उज्जैन पर आक्रमण कर वहाँ के लोगों को भगानेवाला लिखा है।

(ईलियट का अनुवाद भा० ४, पृ० ५२४)

राजा भोज।

पहले लिखा जा चुका है कि परमार नरेश मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) ने अपने जीते जी ही अपने भतीजे भोज को गोद ले लिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के समय भोज की अवस्था छोटी होने के कारण इस (भोज) का पिता सिन्धुराज मालवे की गद्दी पर बैठा। इसके बाद जब वि० सं० १०५४ (ई० स० ९९७) से वि० सं० १०६६ (ई० स० १०१०) के बीच किसी समय वह भी युद्ध में मारा गया तब राजा भोज मालवे का स्वामी हुआ।[1]

---

[1] जैन शुभशील ने अपने बनाए भोजप्रबन्ध में भोज की राज्य-प्राप्ति का समय इस प्रकार लिखा है :—

विक्रमाद्वासरादष्टमुनिव्योमेन्दुसंमिते।
वर्षे मुञ्जपदे भोजभूपः पट्टे निवेशितः ॥८॥

अर्थात्—वि० सं० १०७८ (ई० स० १०२१) में मुञ्ज के पीछे भोज गद्दी पर बैठा।

परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता; क्योंकि एक तो भोज अपने चचा मुञ्ज का उत्तराधिकारी न होकर अपने पिता सिन्धुराज का उत्तराधिकारी था। दूसरा स्वयं भोज का वि० सं० १०७६ (ई० स० १०२०) का ताम्रपत्र मिल चुका है।

(ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ११, पृ० १८१—१८३)

डाक्टर बूलर भोज के राज्याभिषेक का समय ई० स० १०१० (वि० सं० १०६६—१०६७) अनुमान करते हैं।

(ऐपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३२)

परमार वंश में राजा भोज एक प्रतापी और विख्यात नरेश हुआ है। यह स्वयं विद्वान और विद्वानों का आश्रयदाता था। इसी से इसका यश आज भी भारत में चारों तरफ गाया जाता है। भारतीय दन्त-कथाओं में शकारि विक्रमादित्य के बाद इसी का स्थान है।

राज्यासन पर बैठने के समय इसकी आयु करीब २० वर्ष की थी।

भोज का प्रताप

उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति में लिखा है[1] कि—भोज का राज्य (उत्तर में) हिमालय से (दक्षिण में) मलयाचल तक और (पूर्व में) उदयाचल से (पश्चिम में) अस्ताचल तक फैला हुआ था। परन्तु यह केवल कवि-कल्पना ही मालूम होती है। यद्यपि भोज एक प्रतापी राजा था, तथापि इसका राज्य इसके चचा मुञ्ज (वाक्पतिराज

भोज के राज्यकाल के विषय में एक भविष्यवाणी मिलती है :—

पञ्चाशत्पञ्चवर्षाणि सप्तमासं दिनत्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः॥

अर्थात्—राजा भोज ५५ वर्ष, ७ महीने और ३ दिन राज्य करेगा। भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५) का एक दानपत्र मिला है। इसलिये यदि भोज का राज्याभिषेक वि० सं० १०५६ (ई० स० १००० के करीब मान लिया जाय तो यह भविष्यवाणी ठीक सिद्ध हो जाती है।

श्रीयुत सी० वी० वैद्य भोज की राज्य प्राप्ति का समय ई० स० १०१० (वि० सं० १०६६) मानकर उसका ४० वर्ष अर्थात् ई० स० १०५० (वि० सं० ११०६) तक राज्य करना अनुमान करते हैं।

[1] आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयद्रिद्वयाद्वा।
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन ॥१७॥
(ऐपिग्राफिया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५)

द्वितीय) के राज्य से अधिक विस्तृत नहीं माना जा सकता। नर्मदा के उस उत्तरी प्रदेश का, जो इस समय बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड को छोड़कर मध्यभारत (Central India) में शामिल है, एक बड़ा भाग इसके अधिकार में था। दक्षिण में इसका राज्य किसी समय गोदावरी के तट तक फैल गया था और इसी नर्मदा और गोदावरी के बीच के प्रदेश के लिये इस वंश के नरेशों और सोलंकियों के बीच बहुधा झगड़ा रहा करता था।[1]

भोज का पराक्रम

उपर्युक्त उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति में भोज के पराक्रम के विषय में लिखा है[2] कि—इसने चेदीश्वर, इन्द्ररथ, भीम, तोग्गल, कर्णाट और लाट[3] के राजाओं को, गुर्जर के राजाओं को, और तुरुष्कों (मुसलमानों) को जीता था।

भोज द्वारा जीते गए नरेशों में से चेदीश्वर तो चेदि देश का कलचुरी (हैहयवंशी) नरेश गांगेयदेव था।[4] इन्द्र-

---

[1] श्रीयुत सी० वी० वैद्य का अनुमान है कि उस समय मालव राज्य के पूर्व में चेदि के हैहय वंशियों का, उत्तर में चित्तौड़ के गुहिलोतों का, पश्चिम में अनहिलवाड़े के और दक्षिण में कल्याण के चालुक्यों (सोलंकियों) का राज्य था। इन में से मेवाड़ के गुहिलोत नरेशों को छोड़कर अन्य राजाओं के और भोजके बीच बहुधा युद्ध होता रहता था

[2] चेदीश्वरेन्द्ररथ [तोग्ग] ल [भीममु] ख्यान्
कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट् तुरुष्कान्।
यद्भृत्यमात्रविजितानवलो [क्य] मौला।
दोष्णां बलानि कथयन्ति न [योद्‌धृ] लो [कान्] ॥१६॥

[3] लाट पर उस समय सोलंकियों का ही अधिकार था।

[4] यद्यपि गांगेयदेव का समय वि० सं० १०६५ से १०६६ (ई०

रथ[1] और तोग्गल कौन थे इसका कुछ पता नहीं चलता। भीम अण-हिलवाडा (गुजरात) का राजा सोलंकी (चालुक्य) भीमदेव प्रथम था।[2] उसका समय वि० सं० १०७९ से ११२० (ई० स० १०२२ से १०६३) तक माना गया है।

कर्णाटक का राजा सोलंकी (चालुक्य) जयसिंह द्वितीय था। वह वि० सं० १०७३ के करीब से १०९९ (ई० स० १०१६ के करीब से १०४२) के करीब तक विद्यमान था[3] (और उसके बाद वि० सं०

सं० १०३८ से १०४२) तक था और उसके बाद वि० सं० ११७९ (ई०स० ११२२) तक उसके पुत्र कर्णदेव ने राज्य किया, तथापि इस घटना का सम्बन्ध गांगेयदेव से ही होना अधिक सम्भव है। इस वंश के राजाओं की राजधानी त्रिपुरी (तेवर-जबलपुर के निकट) थी और गुजरात का पूर्वी भाग भी इन्हीं के अधीन था।

[1] राजेन्द्र चोल प्रथम (परकेसरिवर्मन्) ने आदिनगर में इंदिरदण (इन्द्ररथ) को हराकर उसका खज़ाना लूट लिया था। यह इन्द्ररथ चन्द्रवंशी था।

(साउथइण्डियन इन्सक्रिपशन्स, भा० १, नं० ६७ और ६८, पृ० ९८ और १००) शायद ये दोनों इन्द्ररथ एक ही हों।

[2] इसका ख़ुलासा हाल इसी प्रकरण में आगे दिया गया है।

[3] यद्यपि सोलंकी जयसिंह द्वितीय के श० सं० ९४१ (वि० सं० १०७६=ई० स० १०१९) के लेख में उसे भोज रूपी कमल के लिये चन्द्र समान और मालवे के सम्मिलित सैन्य को हराने वाला लिखा है।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ५, पृ० १७)

तथापि 'विक्रमाङ्कदेव चरित' में इस बात का उल्लेख नहीं है। उसमें भोज के जीतने का श्रेय सोमेश्वर (आहवमल्ल) को दिया गया है :—

एका गृहीता यदनेन धारा
धारासहस्रं यशसो विकीर्णम् ॥९६॥

(विक्रमाङ्कदेवचरित, सर्ग १)

११२५=ई० स० १०६८) तक उसका उत्तराधिकारी सोमेश्वर प्रथम (आहवमल्ल) रहा।

राजवल्लभ रचित 'भोजचरित' में लिखा है कि—

"भोज के युवावस्था प्राप्त कर राज्य-कार्य सम्हालने पर मुञ्ज की स्त्री कुसुमवती (तैलप की बहन) के प्रबन्ध से इसके सामने एक नाटक खेला गया। उसमें तैलप द्वारा मुञ्ज के मारे जाने का दृश्य दिखलाया गया था। उसे देख भोज बहुत क्रुद्ध हुआ और अपने चचा का बदला लेने के लिये एक बड़ी सेना लेकर तैलप पर चढ़ चला। इस युद्ध-यात्रा में कुसुमवती भी मरदानी पोशाक मे इसके साथ थी। युद्ध में तैलप के पकड़े जाने पर भोज ने उसके साथ ठीक वैसा ही बर्ताव किया, जैसा कि उसने (इसके चचा) मुञ्ज के साथ किया था। इसके बाद कुसुमवती ने अपनी शेष आयु, सरस्वती के तीर पर, बौद्ध सन्यासिनी के वेश में बिता दी।" परन्तु यह कथा कवि-कल्पित ही प्रतीत होती है; क्योंकि तैलप वि० सं० १०५४ (ई० स० ९९७) में ही मर गया था। उस समय एक तो भोज का पिता सिन्धुराज गद्दी पर था। दूसरा भोज की आयु भी बहुत छोटी थी। ऐसी हालत में यही सम्भव हो सकता है कि भोज ने अपने चचा का बदला लेने के लिये तैलप के तीसरे उत्तराधिकारी जयसिंह द्वितीय पर चढ़ाई की हो और उसे हराकर अपना क्रोध शान्त किया हो।[1]

यदि उपर्युक्त श० सं० ९४१ के लेख में का हाल ठीक हो तो मानना होगा कि भोज ने वि० सं० १०६८ (श० सं० ९३३=ई० स० १०१२) और वि० स० १०७६ (श० सं० ९४१=ई० स० १०१९) के बीच जयसिंह पर हमला किया था। क्योंकि श० सं० ९३३ के विक्रमादित्य पञ्चम के दो लेख मिल चुके हैं। इसी का उत्तराधिकारी जयसिंह द्वितीय था।

[1] विक्रमाङ्कदेवचरित से जयसिंह का युद्ध में मारा जाना प्रकट होता है।

भोज का दिया वि० सं० १०७६ (ई० स० १०२०) का एक दान पत्र[१] बांसवाड़े (राजपूताना) से मिला है। उसमें का लिखा हुआ दान (कोंकण-विजयपर्वणि) कोंकन के विजय की यादगार में दिया गया था। इससे भी ऊपर लिखी घटना की पुष्टि होती है। इसके बाद सम्भवत: इसी का बदला लेने के लिये जयसिंह के पुत्र सोमेश्वर ने भोज पर चढ़ाई की होगी। 'विक्रमाङ्कदेव चरित' नामक काव्य से भी इस घटना की पुष्टि होती है।[२]

अपय्य दीक्षित ने अपने 'कुवलयानन्द' नामक अलङ्कार के ग्रंथ में

उसमें लिखा है:—

यशोवतंसं नगरं सुराणां कुर्वन्नगर्वः समरोत्सवेषु।
न्यस्तां स्वहस्तेन पुरंदरस्य यः पारिजातस्रजमाससाद ॥८६॥
(सर्ग १)

परन्तु यदि राजवल्लभ के लिखे भोजचरित के अनुसार राज्य पर बैठते ही भोज ने कर्णाट वालों पर चढाई की होतो उस समय वहाँ पर तैलप के छोटे पुत्र दशवर्मा का बड़ा लड़का विक्रमादित्य पञ्चम गद्दी पर होगा। क्योंकि उसके समय के शक सं० ९३२ (वि० सं० १०६७ = ई० स० १०१०) के दो लेख (धारवाड़ ज़िले) से मिलचुके हैं और डाक्टर बूलर के मतानुसार भोज भी वि० सं० १०६७ (ई० स० १०१०) में ही गद्दी पर बैठा था।

[१] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ११, पृ० १८१-१८३)

[२] भोजक्ष्माभृद्भुजपञ्जरेऽपि
य: कीर्तिहंसीं विरसीं चकार ॥९३॥
❀　　❀　　❀
एका गृहीता यदनेन धारा
धारासहस्रं यशसो विकीर्णम् ॥९६॥
(विक्रमाङ्कदेव चरित, सर्ग १)

'अप्रस्तुत प्रशंसा' का उदाहरण देते हुए एक श्लोक उद्धृत किया है।[1] उस में समुद्र और नर्मदा के बीच वार्तालाप करवाकर यह प्रकट किया गया है कि कुन्तलेश्वर के हमले में मरे हुए मालवे वालों की स्त्रियों के रोने से जो कज्जल मिले आँसू बहे उन से नर्मदा का पानी भी यमुना के जल के समान काला हो गया।

यद्यपि इस श्लोक में किसी राजाका नाम नहीं दिया गया है तथापि इससे कुन्तलेश्वर का मालवे पर चढ़ाई करना साफ़ प्रकट होता है।

ऊपर दिए प्रमाणों को मिलाकर देखने से सिद्ध होता है कि यह घटना वास्तव में [illegible]मेश्वर (आहवमल्ल) के समय की ही है।

परन्तु उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति से प्रकट होता[2] है कि सोमेश्वर के साथ के युद्ध में अन्तिम विजय भोज के ही हाथ रही थी।

गुर्जर नरेशों से कुछ विद्वान् कन्नौज के प्रतिहारों का तात्पर्य लेते हैं।[3]

---

[1] कालिन्दि! ब्रूहि कुम्भोद्भव! जलधिरहं, नाम गृह्णासि कस्मा-
च्छत्रोर्मे, नर्मदाहं, त्वमपि वदसि मे नाम कस्मात्सपत्न्याः।
मालिन्यं तर्हि कस्मादनुभवसि, मिलत्कज्जलैर्मालवीनां
नेत्राम्भोभिः, किमासां समजनि कुपितः कुन्तलक्षोणिपालः॥

[2] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५

[3] श्रीयुत वैद्य का अनुमान है कि कन्नौज के प्रतिहार नरेश ही पहले गुर्जर नरेशों के नाम से प्रसिद्ध थे और सम्भवतः भोज ने प्रतिहार नरेश राज्यपाल के उत्तराधिकारी (त्रिलोचनपाल) को ही हराया होगा।

(मिडियेवल हिन्दू इण्डिया, भा ३ पृ० १६६)

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में लिखा है कि भोज ने साँभर के चौहान नरेश वीर्यराम को युद्ध में मारा था।[1]

तुरुष्कों के साथ के युद्ध से कुछ विद्वान् भोज का महमूद गज़नवी के विरुद्ध लाहोर के राजा जयपाल की मदद करना अनुमान करते हैं।[2] परन्तु यह विचारणीय है, क्योंकि एक तो डाक्टर बूलर के मतानुसार भोज उस समय तक गद्दी पर ही नहीं बैठा था। दूसरा फरिश्ता नामक फ़ारसी के इतिहास में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता है।[3] परन्तु उसमें लिखा है कि हिजरी सन ३९९ (वि० सं० १०६६=ई० स० १००९) में महमूद गज़नवी से जयपाल के पुत्र आनन्दपाल की जो लड़ाई हुई थी, उसमें उज्जैन के राजा ने भी आनन्दपाल की मदद की थी।[4] सम्भवतः

---

[1] वीर्यरामसुतस्तस्य वीर्येणस्यात्स्मरोपमः।
यदि प्रसन्नया दृष्ट्या न दृश्येत पिनाकिना ॥६५॥

❀ ❀ ❀

अगम्यो यो नरेन्द्राणां सुधादीधिति सुन्दरः।
जघ्ने यशश्च यो यश्च भोजेनावन्तिभूभुजा ॥६७॥

(पृथ्वीराजविजय, सर्ग ५)

[2] दि परमार्स ऑफ़ धार ऐण्ड मालवा।

[3] उसमें अमीर सुबुक्तगीन के जयपाल के साथ के युद्ध में देहली अजमेर कालिंजर और कन्नौज के राजाओं का ही जयपाल की सहायता करना लिखा है। (फरिश्ता, भा० १, पृ० २०=ब्रिग्ज़ का अंगरेज़ी अनुवाद भा० १, पृ० १८)।

[4] फ़रिश्ता, भा० १, पृ० २६ ब्रिग्ज़ का अंगरेज़ी अनुवाद, भा० १, पृ० ४६।

इस युद्ध में आनन्दपाल को सहायता देने वाला उज्जैन नरेश भोज ही था।[1]

राजा भोज के चचा मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर वहाँ के आहाड़ नामक गाँव को नष्ट किया था। सम्भवत: तब से ही चित्तौड़ और मालवे से मिलता हुआ मेवाड़ का प्रदेश मालव नरेशों के अधिकार में चला आता

---

[1] तवक़ाते अकबरी में लिखा है कि हिजरी सन् ४१७ (वि० सं० १०८१ — ई० स० १०२४) में जब महमूद सोमनाथ से वापिस लौट रहा था तब उसने सुना कि परमदेव नाम का एक राजा उससे लड़ने को तैयार है। परन्तु महमूद ने उससे लड़ना उचित न समझा। इसी लिये वह सिन्ध के मार्ग से मुलतान की तरफ़ चला गया। कप्तान सी० ई० लूअर्ड और श्रीयुत पंडित काशीनाथ कृष्णलेले का मत है कि "यहाँ पर परमदेव से भोज का ही तात्पर्य है। वे अपने परमारों के इतिहास (दि परमार्स ऑफ़ धार ऐण्ड मालवा) में यह भी लिखते हैं कि बंबई के गज़टियर में इस परमदेव को आबू का परमार राजा लिखा है, यह ठीक नहीं है। क्योंकि उस समय आबू पर धन्धुक का अधिकार था, जो अणहिलवाड़े के सोलंकी भीमदेव का एक छोटा सामन्त था।"

परन्तु वास्तव में यहाँ पर परमदेव से गुजरात नरेश सोलंकी भीमदेव का ही तात्पर्य मानना अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है। क्योंकि फ़ारसी में लिखे गए फरिश्ता आदि इतिहासों में इस राजा को कहीं परमदेव के और कहीं बरमदेव के नाम से लिखा है। जो सम्भवत: भीमदेव का ही विगड़ा हुआ रूप है। साथ ही उनमें यह भी लिखा है कि यह नहर वाले-गुजरात का राजा था। फिर उस समय गुजरात और आबू दोनों ही भीमदेव के अधिकार में थे। बंबई गजटियर के लेख से भी एक सीमा तक उपर्युक्त अनुमान की ही पुष्टि होती है।

था।[1] एकवार जिस समय भोज चित्तौड़ में ठहरा हुआ था उस समय गुजरात नरेश सोलंकी भीम के नाराज़ हो जाने से आबू का परमार नरेश धंधुक भी वहाँ आकर रहा था।[2] परन्तु कुछ दिन बाद स्वयं विमलशाह, जिसको भीम ने धंधुक के चले जाने पर आबू का शासक नियत किया था, भीमदेव की अनुमति से उसे वापिस आबू ले गया।[3]

सूँधा (मारवाड़ राज्य में) के देवी के मन्दिर से वि० सं० १३१९ (ई० स० १२६२) का चौहान चाचिगदेव के समय का एक लेख[4] मिला है। उसमें उसके पूर्वज अणहिल्ल की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—उसने बड़ी सेना वाले, मालव नरेश भोज के सेनापति सोढ को मार-डाला था।[5]

---

[1] यह किला करीब १५० वर्ष तक मालवे के परमारों के अधिकार में रहा और उसके बाद गुजरात के सोलंकी नरेश सिद्धराज जयसिंह ने इसे अपने राज्य में मिला लिया। परन्तु अन्त में मेवाड़ नरेश सामन्तसिंह के समय से यह फिर से मेवाड़ राज्य के अधीन हुआ।

[2] आबू पर के आदिनाथ के मन्दिर से मिले वि० सं० १३७८ के लेख में लिखा है:—

श्री भीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्यमानः किल धंधुराजः।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोजनृपं प्रपेदे ॥६॥

[3] जिनप्रभ सूरि के तीर्थ कल्प में लिखा है :—

राजानक श्री धांधुके क्रुद्धं श्री गुर्जरेश्वरं।
प्रसाद्य भक्त्या तं चित्र-कूटादानीय तद्गिरा ॥३६॥

(अर्बुद कल्प)

[4] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ९, पृ० ७५।

[5] ०ऽनुजघान मालवपतेर्भोजस्य सोढाह्वयं
दंडाधीशमपारसैन्यविभवं............ ॥१७॥

महोबा से मिले एक लेख में चंदेल नरेश विद्याधर को भोज का समकालीन लिखा है।[1]

सोमेश्वर की कीर्ति कौमुदी से प्रकट होता है कि एक बार चालुक्य (सोलंकी) भीमदेव (प्रथम) ने भोज को हरा कर पकड़ लिया था। परन्तु उसके गुणों पर विचार कर उसे छोड़ दिया।[2] शायद इसके बाद

---

[1] तस्मादसौ रिपुयशः कुसुमाहरोभृ-
द्विद्याधरो नृपतिरप्र [ति]......
समग्गुरुमपास्त प्रौढभीस्तल्पभाजं
सह कलचुरिचन्द्रः शिष्यवद्भोजदेवः [२२]

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २२१)

अर्थात—भोज और (कलचुरी) कोकल्ल द्वितीय इस विद्याधर की सेवा करते थे। परन्तु यह केवल अत्युक्ति है। इसमें मन्यता प्रतीत नहीं होती।

[2] बड़नगर से मिली कुमारपाल की प्रशस्ति से भी सोलंकी भीम का धार पर अधिकार करना प्रकट होता है। उसमें लिखा है:—

भीमोपि द्विषतां सदा प्रणयिनां भोग्यत्वमासेदिवान्
क्षोणीभारमिदं बभार नृपति [:] श्रीभीमदेवो नृपः।
धारापंचकसाधनैकचतुरैस्तद्वाजिभिः साधिता
क्षिप्रं मालव चक्रवर्तिनगरी धारेति को विस्मयः ॥९॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २९७)

प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि वि० सं० १०६६ (ई० स० १००९) में दुर्लभ राजगद्दी पर बैठा। और १२ वर्ष राज्य कर लेने के बाद जब वह अपने भतीजे भीम को राज्य देकर तीर्थ यात्रा के लिये काशी की तरफ़ चला तब मार्ग में उसे मालव नरेश मुञ्ज ने रोककर कहा कि, या तो तुम अपने छत्र, चँवर आदि यहीं (मेरे राज्य में) छोड़कर साधु के वेश में आगे जाओ, या मुझसे युद्ध करो।

कुछ समय के लिये दोनों राज घरानों में सुलह हो गई हो; क्योंकि प्रबन्ध चिन्तामणि में भीम की तरफ़ से डामर (दामोदर) नामक राज-दूत का भोज की सभा में रहना लिखा मिलता है।

इस पर दुर्लभराज ने धर्म कार्य में विघ्न होता देख उसका कहना मान लिया और छत्र, चँवर त्यागकर साधु का वेश धारण कर लिया। परन्तु उसने इस घटना की सूचना अपने भतीजे भीम के पास भेज दी। इसी से मालवे और गुजरात के राजघरानों में शत्रुता का बीज पड़ा।

द्वयाश्रय काव्य के टीकाकार अभयतिलक गणि ने उक्त ग्रन्थ के ७ वें सर्ग के ३१ वें श्लोक की टीका के अन्त में लिखा है—"चामुण्डराज बड़ा कामी था। इसी लिये उसकी बहन वाचिग्णी देवी ने उसे हटाकर उसकी जगह (उसके पुत्र) वल्लभराज को गद्दी पर बिठा दिया। यह देख जब चामुण्डराज तीर्थ सेवन के लिये बनारस की तरफ़ चला, तब मार्ग में मालवे वालों ने उसके छत्र, चामर आदि राज चिह्न छीन लिये। इस पर वह अणहिलवाड़े लौट आया और उसने अपने पुत्र को इस अपमान का बदला लेने की आज्ञा दी। परन्तु वल्लभराज मालवे पहुँचने के पूर्व ही मार्ग में चेचक की बीमारी हो जाने से मर गया और यह काम अधूरा ही रह गया। (श्लो० ३१-४८)

बडनगर से मिली कुमारपाल की प्रशस्ति से भी वल्लभराज का मालवे पर चढ़ाई करना प्रकट होता है। उसमें लिखा है—

यत्कोपानलजृंभितं पिशुनया तत्संप्रयाणश्रुति-
लुभ्यन्मालवभूपचक्रविकसन्मालिन्यधूमोद्गमः ।७।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २९७)

इसी प्रकार कीर्ति कौमुदी (२-११) और सुकृत संकीर्तन (२-१३), आदि से भी इसकी पुष्टि होती है।

चामुण्डराज का समय वि० सं० १०५२ से १०६६ (ई० स० ९९५ से १००९) तक था। उसके बाद करीब ६ मास तक वल्लभराज ने राज्य किया और फिर इसी वर्ष उसका भाई दुर्लभ राजगद्दी पर बैठा।

उसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि, जिस समय अनहिलवाड़े (गुजरात) का राजा भीम सिन्धुदेश विजय करने को गया हुआ था उस समय भोज की आज्ञा से उसके सेनापति दिगम्बर-जैन कुलचन्द्र ने अण-हिलवाड़े पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध यात्रा में कुलचन्द्र विजयी हुआ और वह अणहिलवाड़े को लूटकर वहाँ से लिखित विजय पत्र ले आया। यह देख भोज बहुत प्रसन्न हुआ।[1]

सम्भवतः भोज ने भीम द्वारा अपने पकड़े जाने का बदला लेने के लिये ही कुलचन्द्र को अणहिलवाड़े पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी हो तो आश्चर्य नहीं।

प्रबन्धचिन्तामणि[2] से ज्ञात होता है कि जब भीम को इस पराजय का बदला लेने का कोई उपाय दिखलाई न दिया तब उसने भोज

प्रबन्धचिन्तामणि और द्वयाश्रय काव्य के ऊपर दिए दोनों अवतरणों से सम्भवतः एक ही घटना का तात्पर्य है। परन्तु दोनों में से एक ग्रन्थ में भूल हो गई है। प्रबन्ध चिन्तामणिकार ने इस घटना का सम्बन्ध मुञ्ज से जोड़ा है। वह ठीक प्रतीत नहीं होता। सम्भवतः इसका सम्बन्ध मुञ्ज के उत्तराधिकारी से ही रहा होगा और यही घटना दोनों घरानों में मनोमालिन्य का कारण हुई होगी।

[1] गुजरात के लेखकों ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है।

[2] उक्त ग्रन्थ में लिखा है कि—डाहल का राजा कर्ण बड़ा ही वीर और नीतिज्ञ था। उसकी सेवा में १३६ नरेश रहा करते थे। एक बार उसने दूत भेजकर राजा भोज से कहलाया कि आप के बनवाए १०४ महल प्रसिद्ध हैं, इतने ही आपके बनाए गीत और प्रबन्ध भी बतलाए जाते हैं। और इतनी ही आपकी उपाधियाँ भी हैं। इसलिये मेरी इच्छा है कि या तो आप युद्ध, शास्त्रार्थ, अथवा दान में मुझे जीत कर १०५ वीं उपाधि धारण करलें, या मैं

के राज्य को आधा आधा बांट लेने की शर्त पर चेदि नरेश कर्ण के साथ मिलकर मालवे पर चढ़ाई की। संयोग से इसी समय भोज की मृत्यु हो

ही आप पर विजय प्राप्त कर १३७ राजाओं का अधिपति बन जाऊँ। यह बात सुन भोज घबरा गया। परन्तु अन्त में भोज के कहने सुनने से उसके और काशिराज कर्ण के बीच यह निश्चय हुआ कि दोनों ही नरेश अपने यहाँ एक ही समय में एक ही से ५० हाथ ऊँचे महल बनवाना प्रारम्भ करें। इनमें से जिसके महल का कलश पहले चढ़ेगा वही विजयी समझा जायगा और हारने वाले का कर्तव्य होगा कि वह छत्र, चँवर त्याग कर और हथनी पर बैठकर विजेता की सेवा में उपस्थित हो जाय। इसके बाद कर्ण ने काशी में और भोज ने उज्जैन में महल बनवाने प्रारम्भ किए। यद्यपि कर्ण का महल पहले तैयार हो गया तथापि भोज ने अपनी प्रतिज्ञा भंग करदी। यह देख कर्ण ने अपने १३६ सामन्तों को लेकर भोज पर चढ़ाई की और भोज का आधा राज्य देने का वादा कर गुजरात नरेश भीम को भी अपने साथ ले लिया।

जिस समय इन दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने मालवे की राजधानी को घेरा उसी समय भोज का स्वर्गवास हो गया। प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि—

भोज ने इस आसार संसार से विदा होते समय बहुत सा दान आदि दे चुकने के बाद अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि वे उसकी अरथी को उठाने के समय उसके हाथ विमान से बाहर रक्खें; जिसमे लोगों की समझ में आ जाय कि—

कसु करुरे पुत्रकलत्रधी कमुकरुरे करसण वाड़ी।
एकला आइवो एकला जाइवो हाथ पग बे झाड़ी॥

अर्थात्—स्त्री, पुत्र आदि से और खेत, बगीचे आदि से क्या हो सकता है। इस संसार में आते हुए भी पुरुष अकेला ही आता है और यहाँ से विदा होते हुए भी हाथ पैर झाड़कर अकेला ही जाता है।

गई और इसकी राजधानी को कर्ण ने दिल खोलकर लूटा। परन्तु न तो हैहयवंशियों की और न चालुक्यों की ही प्रशस्तियों में इस घटना (अर्थात्—धारा पर की कर्ण और भीम की सम्मिलित चढ़ाई का और उसी समय भोज की मृत्यु होने) का उल्लेख मिलता है। एसी हालत में प्रबन्धचिन्तामणि का लेख विश्वास योग्य नहीं माना जा सकता।

भोज के मरने की सूचना पाते ही कर्ण ने वहाँ के किले को तोड़कर राज्य का सारा खज़ाना लूट लिया। यह समाचार सुन भीम ने अपने सांधिविग्रहिक (Minister of Peace and War) डामर को आज्ञा दी कि वह जाकर या तो भोज का आधा राज्य प्राप्त करे, या कर्ण का मस्तक काटकर ले आवे। इसके अनुसार जब डामर ने, दुपहर के समय, शिविर में सोते हुए कर्ण को ३२ पैदल सिपाहियों के साथ, चुपचाप जाकर घेर लिया, तब उसने अन्य उपाय न देख एक तरफ़ तो सुवर्ण मण्डपिका, नीलकण्ठ, चिन्तामणि गणपति, आदि देव मूर्तियाँ और दूसरी तरफ़ भोज के राज्य का अन्य सारा सामान रख दिया और डामर से कहा कि इनमें से जौनसा चाहो एक भाग उठालो। अन्त में १६ पहर के बाद भीम की आज्ञा से डामर ने देव मूर्तियों वाला भाग ले लिया।

हेम चन्द्रसूरि ने अपने द्व्याश्रय काव्य में लिखा है कि जिस समय भीम ने कर्ण पर चढ़ाई की उस समय कर्ण ने उसे भोज की सुवर्ण मण्डपिका भेट की।

> संफुल्लकीर्ति भोजस्य स्वर्णमण्डपिकामिमाम्
> श्रीवासोत्फुल्लपद्माभां हरापरिक्लृशश्रियम् ॥५७॥
>
> (द्व्याश्रय काव्य सर्ग ६)

परन्तु भीम की चेदि पर की चढ़ाई का हाल अकेले इस काव्य के सिवाय और कहीं न मिलने से इस कथा पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

हाँ भोज के मरने के बाद शीघ्र ही धारा के राज्य पर शत्रुओं का आक्रमण होना अवश्य पाया जाता है। भोज की मृत्यु वि० सं० ११११ ई० स० १०५५) के पूर्व ही हुई थी।

नागपुर से मिले परमार नरेश लक्ष्मदेव के लेख में लिखा है कि भोज के मरने के बाद उसके राज्य पर जो विपत्ति छा गई थी उसे उसके कुटुम्बी उदयादित्य ने दूर कर दिया और कर्णाट वालों से मिले हुए चेदि के राजा कर्ण से अपना राज्य वापिस छीन लिया।[1]

उदयपुर (ग्वालियर)की प्रशस्ति से भी यह बात सिद्ध होती है।[2]

मदन की बनाई 'पारिजातमञ्जरी'[3] (विजय श्री) नामक नाटिका से ज्ञात होता है कि भोज ने हैहयवंशी युवराज द्वितीय के पौत्र गाङ्गेयदेव

---

[1] तस्मिन्वासवव (ब) न्धुतामुपगते राज्ये च कुल्याकुले।
मग्नस्वामिनि तस्य व (ब) न्धुरुदयादित्यो भवद्भूपतिः।
येनोद्धृत्य महार्णवोपममिलत्कर्णाटकर्णप्र [भु]
मुर्व्वीपालकदर्थितां भुवमिमां श्रीमद्वराहायितम्।३२।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० २, पृ० १८४)

[2] तत्रादित्यप्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते।
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुतिमिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत्॥
विश्रस्तांगो निहत्योद्भटरिपुति [मि] रं खड्गदंडांसु (शु) जालै-
रन्यो भास्वानिवोद्यन्द्युतिमुदितजनात्मोदयादित्यदेवः।२१।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३६)

[3] यह नाटिका धारा के परमार राजा अर्जुनवर्मा के समय उसके गुरु बाल सरस्वती मदन ने (वि० सं० १२७० = ई० स० १२१३) के आस पास बनाई थी।

(भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० १४६-१६०)

को जो विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध था हराया था।[1] इसी का पुत्र और उत्तराधिकारी उपर्युक्त प्रतापी नरेश कर्ण[2] हुआ। सम्भवतः उसने अपने पूर्वज (गाङ्गेयदेव) का बदला लेने के लिये भोज के मरते ही धारा पर चढ़ाई की होगी।

राजा भोज का दूसरा नाम 'त्रिभुवननारायण'[3] था। इसने

---

[1] वल्गाद्धार्णजयद्गमो विजयते निःशेषगोत्राणकृत्
कृष्णः कृष्ण इवार्जुनोऽर्जुन इव श्रीभोजदेवो नृपः।
विस्फूर्जद्विजमेषु वेधविधुरां राधांविधत्तेस्म य-
स्तूर्णं पूर्णं मनोरथश्चिरसभूद्गांगेय भंगोत्सवे ॥३॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० १०१)

[2] राजा भोज और कर्ण के प्रताप की सूचना कन्नौज के गाहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र के वि० सं० ११६१ के दानपत्र से भी मिलती है। उसमें लिखा है :—

याते श्रीभोजभूपे वित्र (बु) धवरवधूनेत्रसीमातिथित्वं
श्रीकर्णे कीर्तिशेषं गतवति च नृपे क्ष्मात्यये जायमाने।
भर्तारं या व (ध) रित्री त्रिदिवविभुनिभं प्रीतियोगादुपेता
त्राता विश्वासपूर्वं समभवदिह स क्ष्मापतिश्चन्द्रदेवः॥३॥

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १४, पृ० १०३)

अर्थात्—प्रतापी भोज और कर्ण के मरने पर पृथ्वी पर जो गड़बड़ मची थी उसे राजा चन्द्रदेव ने शान्त किया।

[3] वि० सं० ११९७ (ई० स० ११४०) में गोविन्दसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्न महोदधि' नाम की पुस्तक लिखी थी। (इस ग्रन्थ में व्याकरण के भिन्न भिन्न गणों में संगृहीत शब्दों को श्लोकबद्ध करके उनकी व्याख्या की गई है।)

अपनी राजधानी उज्जैन[1] से हटाकर धारा[1] (धार) में स्थापित की थी।

इसमें जहाँ पर भोज के सिप्रानदी तीरस्थ आश्रम में जाने का वर्णन किया गया है वहाँ पर की ऋषि-पत्नियों की बातचीत से इस बात की पुष्टि होती है :—

नाडायनि व्रीडजडेह माभू-
श्चारायणि स्फारय चारुचक्षुः।
विलोक्य वाकायनि मुञ्जकुञ्जा-
न्मौञ्जायनी मालवराज एति ॥१॥

* * *

वीक्षस्व तैकायनि शंसकोयं
शाणायनि कार्मुधवाणशाणः।
प्राणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्या-
स्त्रिलोकनारायणभूमिपालः ॥५॥

* * *

द्वैपायनीतो भव सायकाय-
न्युपेहि दौर्गायणि देहि मार्गम्।
त्वरस्व चैत्रायणि चाटकाय-
न्यौदुम्बरायण्ययमेति भोजः ॥८॥

(तद्धित गणाध्याय, ३, पृ० १२०-१२१)

'त्रिलोक नारायण' और 'त्रिभुवन नारायण' दोनों ही शब्द पर्याय-वाची हैं। परन्तु यहाँ पर छन्द के लिहाज़ से 'त्रिलोक नारायण' शब्द का प्रयोग किया गया है।

[1] संस्कृत ग्रन्थों में इसका नाम अवन्ती या अवन्तिका लिखा मिलता है। और कालिदास ने अपने मेघदूत में इसका नाम 'विशाला' लिखा है। यह नगर सिप्रा के दाँएँ किनारे पर बसा हुआ है।

इससे यह धारेश्वर भी कहलाता था। इसकी उपाधियाँ-परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर और मालवचक्रवर्ती लिखी मिलती हैं।

श्रीकृष्ण को विद्या पढ़ाने वाले गुरु संदीपनि यहीं के रहने वाले कहे जाते हैं। कवि बाण ने अपने कादम्बरी नामक गद्य काव्य में 'उज्जयिनी' की बड़ी तारीफ़ की है।

एक समय भौगोलिक सिद्धान्तों के निर्णय करने में भी, आज कल के ग्रीनविच (Greenwich) नगर की तरह, उज्जैन की स्थिति को ही आधार माना जाता था। इसी से जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने पीछे से यहाँ पर भी एक वेधशाला बनवाई थी।

[?] जौनपुर से मिले सातवीं शताब्दी के ईश्वर वर्मा के लेख में भी इस (धारा) नगरी का उल्लेख मिलता है :—

(कार्पस इन्सक्रिपशनम् इण्डिकेरम् भा० ३, पृ० २३०)

पहले पहल मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) के दादा वैरिसिंह द्वितीय ने ही धारा पर शायद अपना अधिकार किया होगा। क्योंकि उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति में लिखा है:—

जातस्तस्माद्वैरिसिंहोन्यनाम्ना
लोको ब्रूते [वज्रट] स्वामिनं यम्।
शत्रोर्व्वर्ग्गं धारयासेर्न्निहत्य
श्रीमद्धारा सूचिता येन राज्ञा ॥१॥

अर्थात्—उसके पुत्र वैरिसिंह ने, जिसको वज्रट स्वामी भी कहते थे, तलवार की धार से शत्रुओं को मार कर धारा का नाम सार्थक कर दिया।

इस नगरी के चारों तरफ़ इस समय तक भी मिट्टी का कोट और खाई बनी है। परमार नरेशों ने इस खाई के टुकड़ों को तालाब का रूप देकर उसके नाम अपने नामों पर रख दिए थे। इन्हीं में राजा मुञ्ज का बनवाया एक मुञ्ज तालाब भी है। कहते हैं कि इन तालाबों के कारण इस समय यह खाई

करीब १२ भागों में बँटी हुई है, और लोग इसे साढ़े बारह तालाबों के नाम से पुकारते हैं।

राजा भोज के समय यह नगरी अपनी उन्नतावस्था की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। परमार नरेश अर्जुनवर्मदेव के गुरु मदन की बनाई (और भोज की बनवाई पाठशाला (शारदासदन) से एक शिला पर खुदी मिली) पारिजातमञ्जरी नाटिका में लिखा है :—

चतुरशीतिचतुष्पथसुरसदनप्रधाने...शारदादेव्याः सद्मनि स्थल-विगतरोपगतानेकत्रैविद्यसहृदयकलाकोविदरसिकसुकविसंकुले . .

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० १०१)

अर्थात—धारा नगरी के चौरासी चौराहों पर के चौरासी मन्दिरों में प्रधान, और अनेक देशों से आये हुए तीनों विद्याओं के जानने वाले विद्वानों और रसिक कवियों से पूर्ण शारदासदन में . . . ।

यद्यपि अर्जुनवर्मा के समय की इस उक्ति में कुछ अतिशयोक्ति भी हो सकती है, तथापि भोज के समय वास्तव में ही धारा बड़ी उन्नतावस्था को पहुँच चुकी थी।

इस शारदासदन में जो सरस्वती की विशाल और भव्य मूर्ति थी वह इस समय ब्रिटिश म्युज़ियम "लन्दन" में रक्खी हुई है।

कलकत्ते से प्रकाशित होनेवाले 'रूपम्' (के जनवरी १९२४, पृ० १-२) में उक्त मूर्ति का चित्र और उसके सम्बन्ध का एक नोट प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है कि इस मूर्ति के कुछ आभूषण, जैसे मुकुट आदि चोल मूर्तियों के आभूषणों से मिलते हैं। इसी प्रकार भुजाओं के आभूषण पुरानी पाल-मूर्तियों और उड़ीसा की मूर्तियों के आभूषणों से मिलते हैं। यह मूर्ति इलोरा की शिल्पकला के आधार पर ही बनी प्रतीत होती है। इसके पैरों के नीचे का लेख इस प्रकार पढ़ा गया है :—

श्रीमद्भोजनरेन्द्रचन्द्रनगरी विद्या (द्या) धरीमाँ (र्मा) न धिः (धीः)
नमत (नामस्या) स्म...खलु सुखं प्रध्यन (प्राप्यानया) याप्सराः।
वाग्देवीप्रतिमां विधाय जननीं यस्यार्जितानां श्रीं
. . . फलाधिकां धरसरिम्मूर्तिं शुभां निर्म्ममे॥

इति शुभम्। सूत्रधार सहिर सुत मनथलेन घटितम्। वि...टिक सिवदेवेन लिखितं। इति सम्वत् १०६१ (=ई० स० १०३४)।

(खेद है कि असली लेख के अभाव में 'रूपम्' में प्रकाशित पाठ में ही यथा मति संशोधन करने की चेष्टा की गई है। परन्तु वह सफल नहीं हो सकी है।

धारका नीलकण्ठेश्वर महादेव का मन्दिर भोज के पिता सिन्धुराज का बनवाया हुआ है। यहाँ का क़िला मुहम्मद तुग़लक ने वि० सं० १३८२ (ई० स० १३२५) में बनवाना प्रारम्भ किया था और इसको समाप्ति वि० सं० १४०८ (ई० सं० १३५१) में हुई थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि मुञ्ज ने ही धारा को अपनी राजधानी बना कर वहाँ पर मुञ्ज सागर नाम का तालाब बनवाया था।

अस्तु, राजधानी के उज्जैन से धारा में लाने का मुख्य कारण अनहिलवाड़े के सोलंकियों के साथ का मालवे के परमार नरेशों का झगड़ा ही प्रतीत होता है।

भोज के धार्मिक कार्य और उसके बनाये हुए स्थान ।

राजा भोज एक अच्छा विद्वान, धर्मज्ञ और दानी था इसी से इसने अनेक मन्दिर आदि भी बनवाये थे ।

उदयपुर (ग्वालियर) से मिली प्रशस्ति मे लिखा है:—कविराज भोज की कहाँ तक प्रशंसा की जाय । उसके दान, ज्ञान और कार्यों की बराबरी कोई नहीं कर सकता ।[1]

उसी में आगे लिखा है[2] :—उसने केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर, काल, अनल और रुद्र के मन्दिर बनवाये थे ।

राज तरंगिणी में लिखा है[3] :—पद्मराज[4] नामक पान के एक

---

[1] साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित् ।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥१८॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५)

[2] केदार रामेस्व (श्व) र सोमनाथ-
[सुं] डीरकालानलरुद्रसत्कैः ।
सुराश्र [यै] र्व्याप्य च यः समन्ता-
द्यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार ॥२०॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भाग १, पृ० २३६)

[3] मालवाधिपतिर्भोजः ? प्रहितैः स्वर्णसंचयैः ।
अकारयद्येन कुण्डयोजनं कपटेश्वरे ॥१९०॥

व्यापारी ने, मालवे के राजा भोज के भेजे हुए बहुत से सुवर्ण से, कपटेश्वर (काश्मीर राज्य) में एक कुण्ड बनवाया था और वही पद्म-राज, भोज की पापसूदन तीर्थ के जल से नित्य मुँह धोने की कठिन प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये, वहाँ के जल को कांच के कलसों में भर कर बराबर भेजता रहता था।

इससे प्रकट होता है कि राजा भोज ने बहुत सा द्रव्य खर्च कर सुदूर काश्मीर राज्य के कपटेश्वर (कोटेर) स्थान में पापसूदन तीर्थ का कुण्ड बनवाया था, और वह हमेशा उसी के[१] जल से मुँह धोया करता था। इसके लिये उसने वहाँ से जल मंगवाने का भी पूरा पूरा प्रबन्ध किया था।

प्रतिज्ञा भोजराजेन पापसूदनतीर्थजैः।
सततं वदनस्नाने या तोयैर्विहिताभवत्॥१९१॥
अपूरयत्तस्य यस्तां दुस्तरां नियमादितः।
प्रहितैः काचकलशीकुलैस्तद्वारिपूरितैः॥१९२॥
स तस्य पद्मराजाख्यः पर्णप्राप्तिकदैशिकः।
प्रियताम्बूलशीलस्य त्यागिनो वल्लभोभवत्॥१९३॥

(तरंग ७)

[४] यह पद्मराज काश्मीर नरेश अनन्तदेव का प्रीतिपात्र था।

[१] यह पापसूदन नामक कुण्ड काश्मीर राज्य के कोटेर गाँव के पास (३३°-११' उत्तर और ७५°-११' पूर्व में) अब तक विद्यमान है। इस गहरे कुण्ड का व्यास ६० गज़ के क़रीब है और उसके चारों तरफ़ पत्थर की मज़बूत दीवार बनी है। वहीं पर एक टूटा हुआ मन्दिर भी है; जिसे लोग मालवेश्वर भोज का बनवाया हुआ बतलाते हैं।

उक्त स्थान पर कपटेश्वर (महादेव) का मन्दिर होने के कारण ही आजकल उस गाँव का नाम बिगड़कर कोटेर हो गया है।

भोज ने अपनी राजधानी—धारा नगरी में संस्कृत के पठन-पाठन के लिये भोजशाला[1] नाम की एक पाठशाला बनवाई[2] थी और इसमें उसके बनाए कूर्मशतक नाम के दो प्राकृत-काव्य और भर्तृहरि की कारिका

---

[1] अर्जुनवर्मा के समय की बनी पारिजातमञ्जरी नाटिका में इस पाठशाला का नाम शारदासदन लिखा है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि वहाँ पर बड़े बड़े विद्वान् अध्यापक रक्खे जाते थे। यथा :—

जगज्जडतांधकारशांतनशरच्चन्द्रिकायाः सा (शा) रदादेव्याः सद्मनि सकलदिगन्तरोपागतानेकत्रैविद्यसहृदयकलाकोविदरसिकसुकविसंकुले।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भाग ८, पृ० १०१)

इसी पाठशाला के भवन में पहले पहल यह नाटिका खेली गई थी।

[2] भोज के वंशज नरवर्मा ने उस पाठशाला के स्तम्भों पर अपने पूर्वज उदयादित्य के बनाये वर्णों, नामों और धातुओं के प्रत्ययों के नागबंध चित्र खुदवाए थे और अर्जुनवर्मा ने अपने गुरु मदन की बनाई पारिजातमञ्जरी (विजयश्री) नाटिका को शिलाओं पर खुदवाकर वहाँ रक्खा था। इनमें की एक शिला कुछ वर्ष पूर्व वहाँ से मिली है। उसपर उक्त नाटिका के पहले दो अङ्क खुदे हैं।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० १०१-१२२)

अन्त में जब मालवे पर मुसलमानों का अधिकार हो गया, तब हि० सं० ८६१ (वि० सं० १५१४ = ई० स० १४५७) में महमूदशाह खिलजी ने उक्त पाठशाला को तुड़वाकर मसजिद में परिणत कर दिया (यह वृत्तान्त उसके दरवाज़े पर के लेख से ज्ञात होता है)। यह स्थान आजकल मौलाना क़मालुद्दीन की क़ब्र के पास होने से क़माल मौला की मसजिद के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों कूर्मशतकों की खुदी हुईं शिलाएँ भी इसी स्थान से मिली हैं।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० २४३-२६०)

आदि कई अन्य ग्रन्थ पत्थर की शिलाओं पर खुदवा कर रक्खे गये थे।[1] इस पाठशाला की लम्बाई २०० फुट और चौड़ाई ११७ फुट थी। इसी के पास एक कूँआ था जो 'सरस्वती कूप' कहलाता था। वह आजकल 'अकलकुई' के नाम से प्रसिद्ध है। भोज के समय विद्या का प्रचार बहुत बढ़ जाने से लोगों की धारणा हो गई थी कि, जो कोई इस कुएँ का पानी पी लेता है उसपर सरस्वती की कृपा हो जाती है।

लोगों का अनुमान है कि धारा की लाट मसजिद पहले भोज ही का बनवाया एक मठ था। उसपर के लेख से ज्ञात होता है कि हि० सं० ८०७ (वि० सं० १४६२ = ई० स० १४०५) में दिलावरखाँ गोरी ने उसे मसजिद में परिणत कर दिया। इस मसजिद के पास ही लोहे की एक लाट पड़ी है। इसी से लोग इसे 'लाट मसजिद' के नाम से पुकारते हैं।

तुजुक जहाँगीरी[2] में लिखा है कि यह लाट दिलावरखाँ गोरी ने हि० सं० ८७० में उक्त मसजिद बनवाने के समय वहाँ पर रक्खी थी।

---

[1] भोज के पीछे होनेवाले उदयादित्य, नरवर्मा, अर्जुनवर्मा आदि नरेशों ने भी इनमें वृद्धि की थी। इस प्रकार इस पाठशाला में क़रीब ४००० श्लोकों का समूह (मैटर) श्याम पत्थर की साफ़ की हुई बड़ी बड़ी शिलाओं पर खुदवाकर रक्खा जाना अनुमान किया जाता है। परन्तु अन्त में मालवे पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने से उन्होंने उन शिलाओं के अक्षरों को नष्ट भ्रष्ट करके उन (शिलाओं) को मसजिद के फर्श में लगवा दिया था। इस समय भी वहाँ पर ६०-७० के करीब ऐसी शिलाएँ मौजूद हैं। परन्तु उनके अक्षर पढ़े नहीं जाते।

[2] उसी इतिहास में बादशाह जहाँगीर ने लिखा है कि—धारानगरी एक पुराना शहर है और यहीं पर हिन्दुस्तान का बड़ा राजा भोज हुआ था। देहली के बादशाह सुलतान फ़ीरोज़ के लड़के सुलतान मोहम्मद के ज़माने में उम्मीदशाह गोरी ने जिसका दूसरा नाम दिलावरख़ाँ था, और जो मालवे का

परन्तु उक्त पुस्तक में भूल से अथवा लेखक दोष से हि० सं० ८०७ के स्थान पर ८७० लिखा गया है।

सम्भवतः यह लाट धारा के राजा भोज का विजयस्तम्भ होगा और इसे उसने दक्षिण के सोलंकियों (चालुक्यों) और त्रिपुरी (तेंवर) के हैहयों (कलचुरियों) पर की विजय की यादगार में ही खड़ा किया होगा। इस लाट के विषय में कहा जाता है कि—

एक समय धारा नगरी में गांगली (या गांगी) नाम की एक तेलन रहती थी। उसका डीलडौल राक्षसी का सा था, और यह लाट उसी की तकड़ी (तुला) का बीच का डंडा थी। इस लाट के पास जो बड़े बड़े पत्थर पड़े हैं वे उसके वजन करने के बाँट थे। उसका घर नालछा में था। यह भी किंवदन्ती है कि धारा और मांडू के बीच की नालछा के पास की पहाड़ी उसी के लहँगा झाड़ने में गिरी हुई रेत से बनी थी। इसी से वह 'तेलन-टेकरी' कहाती है। इसी दन्तकथा के आधार पर लोगों ने उक्त तेलन और राजा भोज को लक्ष कर 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गाँगली तेलन' की कहावत चलाई थी। उनके विचारानुसार इसका तात्पर्य यही था कि यद्यपि तेलन इतने लंबे चौड़े डील-डौल की थी, तथापि वह राजा भोज की बराबरी नहीं कर सकती थी। वास्तव में देखा जाय तो जिसमें तेज होता है वही बलवान समझा जाता है केवल शरीर की मुटाई पर विश्वास करना भूल है।[1]

हाकिम था, क़िले के बाहरवाले मैदान में जुमा मसजिद बनवाकर एक लोहे की लाट खड़ी की थी। इसके बाद जब सुलतान गुजराती ने मालवे पर कब्ज़ा कर लिया, तब उसने उस लाट को गुजरात में लेजाना चाहा। परन्तु बेऐतिहाती से उस समय वह टूट गई। उसका एक टुकड़ा ७$\frac{1}{2}$ गज़ का और दूसरा ४$\frac{1}{8}$ गज़ का है। तथा उसकी परिधि १$\frac{1}{8}$ गज़ की है।

(तुजुक जहाँगीरी, पृ० २०२-२०३)

[1] तेजो यस्य विराजते स बलवान्स्थूलेषु कः प्रत्ययः।

परन्तु इस लाट का सम्बन्ध भोज की, चेदि के गाङ्गेयदेव और तिलङ्गाने[1] (दक्षिण) के चालुक्य (सोलङ्की) जयसिंह द्वितीय पर की, विजय से हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। यदि यह अनुमान ठीक हो तो मानना होगा कि पहले इस लाट का नाम 'गांगेय तिलङ्गाना लाट' था। इसी प्रकार जयसिंह द्वितीय की धारा पर की चढ़ाई के समय मार्ग में उसके डेरे नालछे के पास की टेकरी के नजदीक हुए होंगे। इसी से उक्त पहाड़ी का नाम भी 'तिलङ्गाना-टेकरी' हो गया होगा। इसके बाद जब वहां के लोग लाट और टेकरी के सम्बन्ध की असली बातों को भूल गये, तब उन्होंने 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गांगेय और तैलङ्ग (राज), की कहावत में के पिछले नरेशों की जगह गांगली (या गांगी) तेलन अथवा गंगू तेली का नाम ठूंस दिया और

---

[1] जनरल कनिंगहाम का अनुमान है कि कृष्णा नदी पर का 'धनक या अमरावती, आन्ध्र या वरङ्गोल और कलिङ्ग या राजमहेन्द्री ये तीनों राज्य मिलकर त्रिकलिंग कहाते थे। और तिलंगाना इसी त्रिकलिंग का पर्यायवाची और बिगड़ा हुआ रूप है।

(एनशियंट जौग्रफ़ी, पृ० ५१४)

डाक्टर प्राणनाथ शुक्ल ने अपने एक लेख में लिखा है कि भोज की पाठशाला में एक श्लोक खुदा है। उसका भाव इस प्रकार है :—

जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण, गाङ्गेय नाम के शक्तिशाली राक्षस को, और पाण्डव, गाङ्गेय (भीष्म) को, मारकर सन्तुष्ट हुए थे; उसी प्रकार हे भोज! तू भी त्रिपुरी के गाङ्गेयदेव (विक्रमादित्य) और तैलंगाने की राजधानी कल्याणपुर के चालुक्य नरेश को पराजित कर प्रसन्न हुआ है।

('वीणा' (वि० सं० १९८७ के ज्येष्ठ का अभिषेकाङ्क पूर्वार्ध) वर्ष ३, अङ्क ८, पृ० ६२८-६२९)। यदि यह ठीक हो तो इससे भी उक्त अनुमान की ही पुष्टि होती है।

एक नई कथा बना कर उसके साथ जोड़ दी। गांगेय का निरादर सूचक या बिगड़ा हुआ नाम गांगी (गांगली) और तिलङ्गाने (या तैलङ्ग) का तेलन हो जाना कुछ असम्भव नहीं है। यदि वास्तव में ये बातें ठीक हों तो मानना होगा कि लाट और टेकरी का पहला नाम करण वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) के पूर्व हुआ था; क्योंकि उस समय गांगेयदेव का उत्तराधिकारी कर्ण गद्दी पर बैठ चुका था।

भोज ने चितौड़ के किले में भी शिव का एक मन्दिर बनवाया था और उसमें की शिव की मूर्ति का नाम अपने नाम पर 'भोजस्वामि-देव'[1] रक्खा था।

पहले लिखा जा चुका है कि राजा भोज का उपनाम (या उपाधि) 'त्रिभुवन नारायण' था। इसलिये इस शिव-मूर्ति को 'त्रिभुवन नारायण देव'[2] भी कहते थे।

---

[1] यह बात चित्तौड़ से मिले वि० सं० १३५८ के लेख में लिखे 'श्री भोजस्वामिदेवजगति' इस वाक्य से सिद्ध होती है।

[2] चीरवासे मिले वि० सं० १३३० के लेख में लिखा है :—

श्रीचित्रकूट दुर्ग तलारतां यः पितृक्रमायातां।

* * *

श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे।

यो विरचयतिस्म सदाशिवपरिचर्यां स्वशिवलिप्सुः ॥३१॥

(विएना ओरियंटल जर्नल, भा० २१, पृ० १४३)

इस मंदिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) में महाराणा मोकल ने करवाया था, और इस समय यह मन्दिर 'अदबदजी' (अद्भुतजी) का या मोकल जी का मन्दिर कहलाता है।

(नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० ३, पृ० १-१८)

भोपाल (भोजपुर) की बड़ी (२५० वर्गमील की) झील भी इसी की बनाई हुई कही जाती है।[1] इसको वि० सं० १४६२ और १४९१ (ई० स० १४०५ और १४३४) के बीच किसी समय माँडू (मालवे) के सुलतान होशंगशाह ने तुड़वाया था।[2]

लोगों का कहना है कि, इनके अलावा धारा[3] और मण्डपदुर्ग

---

[1] इण्डियन एण्टिक्वेरी, भा० १७, पृ० ३५०-३५२।

मिस्टर विंसेन्ट स्मिथ ने इस विषय में लिखा है :—

The great Bhojpur lake, a beautiful sheet of water to the south-east of Bhopal covering an area of more than 250 square miles, formed by massive embankments closing the outlet in a circle hills, was his noblest monument, and continued to testify to the skill of his engineers until the fifteenth century, when the dam was cut by order of a Muhammadan king, and the water drained off

(Early History of India, p. 411.)

अर्थात्—भोज की सबसे श्रेष्ठ यादगार, भोजपुर की वह बड़ी झील थी, जो भोपाल के दक्षिण—पूर्व में, गोलाकार में खड़ी पहाड़ियों के बीच के भागों को बड़े बड़े बांधों से बांध देने के कारण २५० वर्ग मील से भी अधिक स्थान में जल को इकट्ठा करती थी। और वह झील ईस्वी सन् की १५ वीं शताब्दी तक, जब कि वह एक मुसलमान बादशाह की आज्ञा से तोड़ दी गई, भोज के समय के शिल्पियों (इंजीनियरों) की दक्षता को भी प्रकट करती रही थी।

[2] भोपाल राज्य में इस झील की ज़मीन अब तक भी बड़ी उपजाऊ गिनी जाती है।

[3] परन्तु धारा के चारों तरफ़ की खाई के मुञ्ज के समय भी विद्यमान होने से यह विचारणीय है।

(माँडू) के कोट भी भोज के ही बनवाये हुए हैं। यह भी किंवदन्ती है कि, भोजने मण्डपदुर्ग में कई सौ विद्यार्थियों के लिये एक छात्रावास बनवा कर[1] गोविन्दभट्ट को उसका अध्यक्ष नियत किया था। भोज के वि० सं० १०७८ के दानपत्र के अनुसार वीराणक गाँव का पाने वाला इसी गोविन्द भट्ट का पुत्र धनपति भट्ट हो ता आश्चर्य नहीं।

---

[1] वहाँ के कूंए पर भी भोज का नाम खुदा होना कहा जाता है। राजा भोज ने उज्जैन में भी कई घाट और मन्दिर बनवाये थे।

भोज का धर्म

यह राजा शैवमतानुयायी था।

उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति में इसे 'भर्ग्गभक्त'—शिव का उपासक लिखा है।[1] स्वयं भोज के वि० सं० १०७६ और १०७८ के दान-पत्रों में भी मङ्गलाचरण में शिव की ही स्तुति की गई है।

इसने बहुत सा द्रव्य खर्चकर सुदूर काश्मीर में, वहाँ के राजा अनन्तराज के समय, कपटेश्वर महादेव के मन्दिर के पास, एक कुण्ड बनवाया[2] था और यह सदा उसी (पापसूदन तीर्थ) के जल से मुख प्रक्षालन किया करता था। इसके लिये नियमित रूप से वहाँ से काँच के कलशों में भरा जल मंगवाने का भी पूरा पूरा प्रबन्ध किया गया था।

गणरत्न महोदधि नामक पुस्तक में जहाँ पर भोज के सिप्रा नदी-तटस्थ ऋष्याश्रम में जाने का वर्णन है वहाँ पर ऋषि के मुख से भोज की प्रशंसा में कहलाया गया है कि—'यद्यपि आपके पूर्वज वैरिसिंह आदि भी शिवभक्त थे, तथापि शिव के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य आपही को प्राप्त हुआ है।'[3]

---

[1] तत्रादित्य प्रतापे गतवति सदनं स्वर्ग्गिणां भर्ग्गभक्ते।
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुतिमिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत्॥
(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३६)

[2] राजतरङ्गिणी, तरङ्ग ७, श्लो १९०-१९२।

[3] दृष्टोडुलोमेषु मयोडुलोमे श्रीवैरिसिंहादिषु रुद्रभक्तिः।
अपार्थिवा सा त्वयि पार्थिवीयां नौत्स्यौदपान्योऽपि न वर्णयन्ति॥१॥

❀ ❀ ❀

इन बातों से प्रकट होता है कि राजा भोज परम शैव था। परन्तु स्वयं विद्वान् होने के कारण अन्य धर्मावलम्बी विद्वानों का भी आदर करता था ; जैसा कि आगे के अवतरणों से सिद्ध होता है :—

श्रवण बेलगोला से कनारी भाषा का एक लेख मिला है।[१] उसमें लिखा है कि धारा के राजा भोजराज ने जैनाचार्य प्रभाचन्द्र के पैर पूजे थे। दूबकुण्ड से कच्छपघातवंशी विक्रमादित्य का वि० सं० ११४५ का एक लेख मिला है उसमें लिखा है कि शान्तिसेन नामक जैनाचार्य ने उन अनेक पण्डितों को; जिन्हों ने अम्बरसेन, आदि जैन विद्वानों का अपमान किया था, भोज की सभा में हराया।[२]

धारा के अब्दुल्ला शाह चङ्गाल की कब्र के हिजरी सन् ८५९ (वि० सं० १५१२=ई० स० १४५५) के लेख में लिखा है कि राजा भोज ने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर अपना नाम अब्दुल्ला रख लिया था। परन्तु एक तो भोज जैसे विद्वान्, धार्मिक, शिवभक्त और प्रतापी राजा का विना कारण ही अपने पितृ—परम्परागत धर्म को छोड़ मुसलमानी

कन्ताकणास्तालनबाष्कयों वा [illegible] हृदये करोति।
[illegible] यद्व्यलोकि लोकेऽत्र मृगाङ्कमौलिः ॥२॥

(तद्धित गणाध्याय, ४, पृ० १६३)

[१] इन्सक्रिपशन्स ऐट् श्रवणबेलगोला, नं० ५५, पृ० ४७ (डाक्टर राइस इस लेख को ई० स० १११५ (वि० सं० ११७२) का अनुमान करते हैं।)

[२] आस्थानाधिपतौ बु (बु) धा [द्वि] गुणे श्री भोजदेवे नृपे
सभ्येष्वंव (ब) रसेन पंडितशिरोरत्नादिषूद्यन्मदान्।
योनेकान् शतसो (शो) व्यजेष्ट पटुताभीष्टोद्यमो वादिनः
शास्त्रांभोनिधिपारगो भवदतः श्रीशांतिषेणो गुरुः ॥

(एपिग्राफिया इण्डिका भा० २, पृ० २३८)

धर्म की शरण लेना असम्भव प्रतीत होता है। दूसरा उस समय मध्य-भारत (Central India) में मुसलमानों का ऐसा दौर दौरा भी नहीं था। हाँ, उत्तरी-भारत में उन्होंने अवश्य ही अपना अधिकार जमा लिया था। ऐसी हालत में यह बात विश्वास योग्य नहीं कही जा सकती।

'गुलदस्ते अब्र' नामक उर्दू की एक छोटी सी पुस्तक में लिखा है कि अबदुल्लाशाह फ़कीर की करामतों को देखकर भोज मुसलमान हो गया था। यह भी केवल मुल्लाओं की कपोल-कल्पना ही है; क्योंकि अन्य किसी भी फ़ारसी तवारीख़ में इसका उल्लेख नहीं है।

राजा भोज का समय ।

राजा भोज के दो दानपत्र मिले हैं। इनमें से एक वि० सं० १०७६ (ई० स० १०२०) का[1] और दूसरा वि० सं० १०७८ (ई० स० १०२२) का है।[2]

अलबेरूनी ने लिखा है कि, जिस समय ई० स० १०३० (वि० सं० १०८७) में उसने अपनी भारतवर्ष-सम्बन्धी पुस्तक लिखी थी उस समय धार और मालवे पर भोजदेव राज्य करता था[3]।

राजा भोज की बनाई पाठशाला से मिली सरस्वती की मूर्ति के नीचे वि० सं० १०९१ (ई० स० १०३५) लिखा है।[4]

राजा भोज के बनाये ज्योतिष-शास्त्र के 'राजमृगाङ्क करण' नामक ग्रन्थ में उसके रचनाकाल के विषय में 'शाके वेदर्तुनन्दे लिखा[5] है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त ग्रन्थ शक संवत् ९६४ (वि० सं० १०९९=ई० स० १०४२) में बना था।

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ११, पृ० १८२-१८३।

[2] इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ६, पृ० ५३-५४।

[3] अलबेरूनी की इण्डिका, प्रोफेसर सचाउ (Sachau) का अनुवाद, भा० १, पृ० १९१।

[4] रूपम्, (जनवरी १९२४) पृ० १-२।

[5] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३३, टिप्पणी ४१।

इन प्रमाणों को देखने से ज्ञात होता है कि राजा भोज वि० सं० १०७६ (ई० स० १०२०) से वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) तक (अर्थात् इन २४ वर्षों तक) तो अवश्य ही जीवित था।

पहले लिखा जा चुका है कि मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) ने अपने भतीजे भोज को गोद लिया था। परन्तु मुञ्ज के वि० सं० १०५० और १०५४ (ई० स० ९९३ और ९९७) के बीच मारे जाने के समय उसकी आयु छोटी थी। इसी से इस (भोज) का पिता सिन्धुराज मालवे की गद्दी पर बैठा। यह सिन्धुराज अन्त में अणहिलवाड़ा (गुजरात) के सोलंकी नरेश चामुण्डराज के साथ के युद्ध में मारा गया। इस चामुण्डराज का समय वि० सं० १०५४ (ई० स० ९९७) से १०६६ (ई० स० १०१०) तक था। इसलिये इन्हीं वर्षों के बीच किसी समय सिन्धुराज मारा गया होगा और भोज गद्दी पर बैठा होगा।

डाक्टर बूलर ने भोज का राज्यारोहण समय ई० स० १०१० (वि० सं० १०६६) में अनुमान किया है।[1]

भोज के उत्तराधिकारीजयसिंह का वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५) का एक दानपत्र मिला है[2]। उससे प्रकट होता है कि राजा भोज इसके पूर्व ही मर गया था।

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३२। श्रीयुत सी० वी० वैद्य का भी यही अनुमान है। श्रीयुत काशीनाथ कृष्ण लेले और मि० लूअर्ड भोज का राज्यारोहण इस समय से भी पूर्व मानते हैं। परन्तु विन्सैंट स्मिथ इसका राज्यारोहण ई० स० १०१८ (वि० सं० १०७५) के करीब मानते हैं।

(अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४१०)

[2] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भाग ३, पृ० ४८-५०।

विक्रमाङ्कदेवचरित में लिखा है :—

भोजक्ष्माभृत्सखलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रै-
स्तत्प्रत्यक्षं किमिति भवता नागतं हा हतास्मि ।
यस्य द्वारो ड्डमरशिखिरक्रोडपारावतानां
नादव्याजादिति सकरुणं व्याजहारेव धारा ॥९६॥

(सर्ग १८)

अर्थात्—मानो धारानगरी ने दरवाजे पर बैठ कर बोलते हुए कबूतरों के शब्द द्वारा बिल्हण से कहा कि राजा भोज की बराबरी कोई नहीं कर सकता, अफ़सोस उसके सामने तुम क्यों नहीं आये ।

डाक्टर बूलर का अनुमान था कि "बिल्हण के मध्य भारत (Central India) में पहुँचने तक भी भोज जीवित था। परन्तु किसी ख़ास कारण से ही बिल्हण कवि उससे नहीं मिल सका। इसी अनुमान के आधार पर उन्होंने भोज का देहान्त वि० सं० १११९ (ई० स० १०६२) के बाद माना था;[1] क्योंकि जल्दी से जल्दी इसी वर्ष बिल्हण काश्मीर से चला था।"[2]

इसकी पुष्टि में डाक्टर बूलर ने राजा तरंगिणी का यह श्लोक उद्धृत किया था:—

"स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ ।
सूरी तस्मिन्क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ ॥२५९॥

(तरंग ७)

अर्थात्—उस समय विद्वानों में श्रेष्ठ राजा भोज और (काश्मीर

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३३ ।

[2] विक्रमाङ्कदेवचरित, पृ० २३ । राजतरङ्गिणी के लेखानुसार बिल्हण कलश के राज्य समय काश्मीर से चला था ।

(तरंग ७, श्लो० ९३६)

का) क्षितिपति, जो कि अपने दान की अधिकता से प्रसिद्ध हो रहे थे, दोनों ही एक से कवियों के आश्रयदाता थे।

इस श्लोक में (तस्मिन् क्षणे) 'उस समय' लिखा होने से उक्त डाक्टर का अनुमान था कि इस 'उक्ति' का सम्बन्ध ई० स० १०६२ (वि० सं० १११९) में की कलश की राज्य[१] प्राप्ति के बाद के समय से ही है। इसके साथ ही उनका यह भी कहना था कि यद्यपि यह राजतरङ्गिणी भोज की मृत्यु और बिल्हण के भ्रमण के करीव १०० वर्ष बाद लिखी गई थी, इसलिये उसमें का लिखा वृत्तान्त अधिक प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, तथापि बिल्हण ने भी अपने विक्रमाङ्क देव चरित में इसी प्रकार का उल्लेख किया है:—

यस्य भ्राता क्षितिपतिरिति क्षात्रतेजोनिधानम् ।
भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा लोहराखण्डलोभूत् ॥४७॥

(सर्ग १८)

अर्थात्—उसका भाई लोहरा का स्वामी वीर क्षितिपति भोज के ही समान यशस्वी था।

इससे भी राजतरङ्गिणी के उक्त लेख की पुष्टि होने से वह निःसन्देह माननीय हो जाता है।

उन्होंने यह भी लिखा था कि—

"यद्यपि भोज के उत्तराधिकारी उदयादित्य का वि० सं० १११६= शक संवत् ९८१ का एक लेख उदयपुर (ग्वालियर) के बड़े मन्दिर से मिला है, तथापि डाक्टर एफ० ई० हाल (F. E. Hall) उसे बिलकुल अशुद्ध मानते हैं। उनका कथन है कि इसकी १३ वीं और १४ वीं पंक्तियों से इस लेख का वि० सं० १५६२=श० सं० १४४७ (शुद्ध पाठ १४२७) अथवा कलियुग संवत् ४६०७ में किसी संग्रामवर्मा

---

[१] राजतरंगिणी, तरंग ७, श्लो० २३३ ।

की आज्ञा से लिखा जाना सिद्ध होता है। इसलिये यह मान्य नहीं हो सकता।"

इस विषय में यहाँ पर इतना प्रकट कर देना ही पर्याप्त होगा कि जब इस समय तक भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५) का एक दानपत्र[1] और वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) का एक शिलालेख[2] और भी मिल चुके हैं,[3] तब राजा भोज का वि० सं० १११९ (ई० स० १०६२) तक जीवित रहना नहीं माना जा सकता। यह अवश्य ही वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) और वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५) के बीच कलश के राज्य पर बैठने और विल्हण के काश्मीर से चलने के पूर्व ही) मर चुका था।[4]

मिस्टर विन्सैन्ट स्मिथ ने भोज का राज्यारोहण काल ई० स० १०१८ (वि० सं० १०७५) के करीब मान कर इसका ४० वर्ष से भी

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ३, पृ० ४८-५० ।

[2] यह बाँसवाड़ा राज्य के पाणाहेड़ा गाँव में मंडलीश्वर के मन्दिर में लगा है।

[3] जयसिंह के उत्तराधिकारी उदयादित्य का वि० सं० १११६ (श० स० ६८१) वाला उपर्युक्त शिलालेख इनसे भिन्न है।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ५ का परिशिष्ट, लेख-संख्या ६८, टिप्पणी १)

[4] भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का बहुत कम हाल मिलने से अनुमान होता है कि उसने थोड़े समय तक ही राज्य किया था। इसलिये सम्भव है भोज का देहान्त वि० सं० ११९० (ई० स० १०५३) के आस-पास हुआ हो।

अधिक राज्य करना माना है।[1] ऐसी हालत में उनके मतानुसार भोज ई० स० १०५८ (वि० सं० १११५) के, बाद तक जीवित था। परन्तु भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह के उपर्युक्त ई० स० १०५५ (वि० सं० १११२) के दानपत्र के मिल जाने से यह मत भी ठीक प्रतीत नहीं होता।

भोज के कुटुम्बी और वंशज।

भोज की रानियों और पुत्रों के विषय में कोई निश्चयात्मक उल्लेख नहीं मिलता है।

वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५, के जयसिंह के दानपत्र में उसे भोज का उत्तराधिकारी लिखा है[2]। परन्तु उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्ति में उसका नाम छोड़ कर उदयादित्य को इसका उत्तराधिकारी माना है[3]।

---

[1] अर्ली हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, पृ० ४१०।

[2] परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेवपादानुध्यात, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री जयसि [ह] देवः कुशलो......।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ३, पृ० ८४)

[3] तत्रादित्यप्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुतिमिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत्।
विश्र(स्र)स्तांगो निहत्योद्भटरिपुति [मि] रं खड्गदण्डांसु(शु) जालै-
रन्यो भास्वानिवोद्यन्द्युतिमुदितजनात्मोदयादित्यदेवः॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३६)

भोज की दानशीलता और उसका विद्या-प्रेम।

यह राजा स्वयं विद्वान् और विद्वानों का आश्रयदाता था। इसी से इसकी सभा में अनेक विद्वान् रहा करते थे।[1] इसके यशः प्रसार का

---

[1] मिस्टर विन्सैंट स्मिथ ने इसके विद्या-प्रेम की तारीफ़ करने के साथ साथ इसकी तुलना भारत के प्रसिद्ध प्रतापी नरेश समुद्रगुप्त से की है। वे लिखते हैं :—

Like his uncle, he cultivated with equal assiduity the arts of peace and war. Although his fight with the neighbouring powers, including one of the Muhammadan armies of Mahmud of Ghazni, are now forgotten, his fame as an enlightened patron of learning and a skilled author remains undimmed, and his name has become proverbial as that of the model king according to the Hindu standard,....and there is no doubt that he was a prince, like Samudra Gupta, of very uncommon ability.

(Early History of India, P p. 410-411.)

अर्थात्—भोज भी अपने चचा मुञ्ज की तरह ही सन्धि और विग्रह के कार्यों में बराबर भाग लेता था। यद्यपि इसके अपने पड़ोसियों के साथ के युद्ध कार्यों को, जिनमें महमूद ग़ज़नी की सेना के साथ का युद्ध भी शामिल है, लोग भूल गये हैं, तथापि इसके विद्या के आश्रयदाता और स्वयं विद्वान् ग्रन्थकार होने का यश अब तक बराबर चमक रहा है और हिन्दुओं के मतानुसार यह एक आदर्श राजा समझा जाता है।......

मुख्य कारण भी इसके द्वारा मान और दान के जरिये से किया गया विद्वानों का सत्कार ही प्रतीत होता है। इसकी दी हुई उपाधि को विद्वान् लोग आदर की दृष्टि से देखते थे। इसने त्रिविक्रम के पुत्र भास्करभट्ट को 'विद्यापति' की उपाधि दी थी[1] और यह स्वयं विद्वानों में 'कविराज' के नाम से प्रसिद्ध था।

उदयपुर (ग्वालियर) से मिली प्रशस्ति में लिखा है कि—कविराज भोज का साधन, कर्म, दान और ज्ञान सब से बढ़कर था। इससे अधिक उसकी क्या प्रशंसा हो सकती है ?[2]

मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' नामक प्रसिद्ध अलंकार के ग्रंथ में 'उदात्तालङ्कार' के उदाहरण में एक श्लोक उद्धृत किया है। उसमें लिखा है कि—विद्वानों के घरों में 'सुरत-क्रीड़ा' के समय हारों से गिरे हुए, और सुबह झाड़ू देनेवाली दासियों द्वारा चौक के एक कोने में डाले गए, तथा इधर उधर फिरती हुई तरुणियों के पैरों की मेंहदी के रंग के प्रतिबिम्ब पड़ने से लाल झांई देने वाले, मोतियों को अनार के

---

[1] श० सं० ११२८ के यादववंशी सिंघण के समय के लेख से इस बात की पुष्टि होती है। उसमें लिखा है—

शांडिल्यवंशे कविचक्रवर्ती
त्रिविक्रमोभूत्तनयोस्य जातः।
यो भोजराजेन कृताभिधानो
विद्यापतिर्भास्करभट्टनामा ॥१७॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० ३४३)

[2] साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित्।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥१८॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५)

दाने समझ घर के पले हुए तोते चोंच में लेते हैं। यह सब राजा भोज के ही दान का प्रभाव है।[१]

विल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित में लिखा है कि, अन्य नरेशों की तुलना राजा भोज से नहीं की जा सकती।[२]

इसके अलावा उस समय राजा भोज का यश इतना फैला हुआ था कि, अन्य प्रान्तों के विद्वान् अपने यहाँ के नरेशों की विद्वत्ता और दान-शीलता दिखलाने के लिये राजा भोज से ही उनकी तुलना किया करते थे।

राजतरङ्गिणी में लिखा है कि—उस समय विद्वान् और विद्वानों के आश्रयदाता क्षितिराज (क्षितिपति) और भोजराज ये दोनों ही अपने दान की अधिकता से संसार में प्रसिद्ध थे।[३]

विल्हण ने भी अपने विक्रमाङ्कदेवचरित में क्षितिपति की तुलना भोजराज से ही की है। उसमें लिखा है कि लोहरा का राजा वीर क्षिति-पति भी भोज के ही समान गुणी था।[४]

---

१ मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः सम्मार्जनीभिर्हृताः।
प्रातः प्राङ्गणसीम्निमन्थरचलद्बालाङ्घ्रिलाक्षारुणाः॥
दूराद्दाडिमबीजशङ्कितधियः कर्षन्ति केलीशुकाः।
यद्विद्वद्भवनेषु, भोजनृपतेस्तस्त्यागलीलायितम्॥
(दशम उल्लास, श्लो० ४०४)

२ भोजक्ष्माभृत्स खलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रैः।
(सर्ग १८, श्लो० ९६)

३ स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ।
सूरी तस्मिन्क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ॥२५९॥
(तरङ्ग ७)

४ तस्य भ्राता क्षितिपतिरिति क्षात्रतेजोनिधानम्।
भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा लोहराखण्डलोभूत्॥
(सर्ग १८, श्लो० ४७)

राजगुरु मदन ने अपनी बनाई पारिजात मंजरी में अपने आश्रय-दाता मालवे के परमार नरेश अर्जुनवर्मा की तुलना भी मुञ्ज आदि से न कर भोज से ही की है। जैसे[1]—

अत्र कथंचिद्लिखिते श्रुतिलेह्यं लिख्यते शिलायुगले।
भोजस्यैव गुणोर्जितमर्जुनमूर्त्यावतीर्णस्य ॥१॥

❀ ❀ ❀

मनोज्ञां निर्विशन्नेतां कल्याणं विजयश्रियं।
सदृशो भोजदेवेन धाराधिप! भविष्यसि ॥६॥

वैसे तो प्रबन्धचिन्तामणि और भोजप्रबन्ध आदि में राजा भोज का अनेक कवियों को एक एक श्लोक पर कई कई लाख रुपिया देना लिखा मिलता है। परन्तु इसके भूमिदान सम्बन्धी दो दानपत्र ही अब तक मिले हैं, उनका वर्णन आगे दिया जाता है।

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० १०१-१०२।

राजा भोज के दान-पत्र।

राजा भोज का पहला दानपत्र वि० सं० १०७६ का है।[१] यह ताँबे के दो पत्रों पर जिनकी लंबाई १२ १/४ इञ्च और चौड़ाई ९ ७/८ इञ्च है खुदा है। इन पत्रों को इकट्ठा रखने के लिये पहिले पत्र के नीचे के और दूसरे पत्र के ऊपर के भाग में दो-दो छेद बने हैं। इन्हीं में ताँबे की कड़ियां डालकर ये दोनों पत्र हस्तलिखित प्राचीन शैली की पुस्तक के पत्रों की तरह जोड़ दिए गए थे।

दोनों ताम्रपत्रों पर एक ही तरफ़ अक्षर खुदे हैं। दूसरे पत्र में अठ्ठाईसवीं पंक्ति के सामने से बत्तीसवीं पंक्ति के सामने तक दुहरी लकीरों का एक चतुष्कोण सा बना हुआ है। इसमें उड़ते हुए गरुड़ की मनुष्याकार मूर्ति बनी है। मूर्ति का मुख पंक्तियों की तरफ़ है और उसके बाँए हाथ में सर्प है।

इस दानपत्र के अक्षर उज्जैन के अन्य दानपत्रों के समान ही नागरी अक्षर हैं। लेख की १०वीं पंक्ति में के 'यथाऽस्माभिः' और २२वीं पंक्ति में के 'बुध्वाऽस्मद्' के बीच में अवग्रह के चिन्ह बने हैं तथा समग्र लेख में 'ब' के स्थान पर 'व' खुदा है। एक स्थान पर 'श' के स्थान में 'स' और चार स्थानों पर 'स' के स्थान में 'श' लिखा है। दो स्थानों पर 'बुद्ध्वा' के स्थान पर 'बुध्वा' लिखा मिलता है।

लेख की भाषा गद्य पद्यमय है। पद्यों की संख्या ९ है।

---

[१] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ११, पृ० १८२-१८३।

पहले के दो श्लोकों को छोड़कर बाकी के ७ श्लोक साधारण तौर से अनेक अन्य ताम्रपत्रों में भी लिखे मिलते हैं।

यह ताम्रपत्र बाँसवाड़े (राजपूताना) में एक विधवा ठठेरन के पास से मिला था। इससे इसमें लिखे हुए स्थानों का सम्बन्ध किस प्रान्त से है यह निश्चय करना कठिन है।

इस ताम्रपत्र में केवल संवत् १०७६ माघ सुदि ५ लिखा होने से वार आदि से मिलान कर इसकी असलियत जाँचने का कोई साधन नहीं है। डाक्टर फ्लीट का अनुमान है कि इस ताम्रपत्र में भी उज्जैन के अन्य ताम्रपत्रों के समान ही गत संवत् लिखा गया है। इसके अनुसार उस रोज़ ई० स० १०२० की ३ जनवरी आती है।

इसके पहले पत्र की दसवीं पंक्ति में 'कोंकणविजयपर्वणि' लिखा होने से प्रकट होता है कि भोजराज ने कोंकण विजय किया था और उसी की ख़ुशी या यादगार में इस दानपत्र में का लिखा दान दिया गया था।

इस दानपत्र के दोनों पत्रों में इबारत के नीचे स्वयं भोज के हस्ताक्षर हैं। वहाँ पर उसने अपना नाम भोजदेव लिखा है।

———

राजा भोज के वि० सं० १०७६ के दानपत्र की नकल।

पहला पत्र।

(१) ओ[1] [॥*] जयति व्योमकेशौसौ[2] यः सर्गाय विभर्ति[3] तां। ऐंदवीं शिरसा लेखांज—

(२) गद्वीजांकुराकृतिं[4] ॥ [१*] तन्वंतु वः स्मराराते: कल्याणमनिशं जटाः ॥ क—

(३) ल्पांतसमयोद्दामतडिद्वलयपिंङ्गलाः ॥ [२*] परमभट्टारक-महारा—

(४) जाधिराज परमेश्वर श्री [सी] यकदेव पदानुध्यात परम-भट्टारकम—

(५) हाराजाधिराज परमेश्वर श्री वाक्पतिराजदेव पदानुध्यात परमभ—

(६) ट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सिन्धुराजदेव पदानुध्यात—

(७) परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेवः कुशली ॥

शुद्ध पाठ

[1] ओङ्कार के स्थान पर ६ यह चिह्न खुदा हुआ है।

[2] °केशोसौ [3] बिभर्ति, [4] जगद्बीजां°

(८) स्थलीमंडले घाघ्रदोरभोगान्तः पाति वटपद्रके शमुप[1] गता-न्समस्तराजपु—

(९) रुषान्ब्राह्मणो[2] त्तरान्प्रतिनिवासिजनपदादींश्च समादिशत्यसु[3] वः संविदितं ॥

(१०) यथाऽस्माभिः कोंकणविजयपर्व्वणि श्नात्वा[4] चराचरगुरुं भगवन्तं भवानीपतिं

(११) समभ्यर्च्य सं [स] ारस्या [स] ारतां दृष्ट्वा । वाता-भ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमा—

(१२) त्रमधुरो विषयोपभोगः । प्राणास्तृणागजलविंदुसमा[5] नराणां धर्म्मः सखा

(१३) परमहो परलोकयाने ॥ [३॥] भ्रमत्संसारचक्राग्रधारा-धारामिमां श्रियं । प्राप्य येन यैन

(१४) ददुस्तेषां पश्चात्तापः परं फलं ॥ [४॥] इति जगतो विनश्वरं स्वरूपमाकलय्योपरि[6]

(१५) स्वहस्तोयं श्री भोजदेवस्य [॥॥]

दूसरा पत्र ।

(१६) लिखितग्रामात[7] भूमिवर्त्तनशतैकं नि १०० स्वसीमातृण-गोचरयूतिपर्यंतं हिरण्या—

(१७) दायसमेतं सभागभोगं सोपरिकरं सर्व्वादायसमेतं ब्राह्मण[8] भाइलाय वामन—

[1] समुप°   [2] °रुषान्ब्रा°   [3] °त्यस्तु

[4] स्नात्वा   [5] °णाग्रजलविंदु°

[6] इस पंक्ति का सम्बन्ध दूसरे पत्र की प्रथम पंक्ति से है।

[7] °ग्रामाद्   [8] ब्राह्मण°

(१८) सुताय वशिष्ठ[१] सगोत्राय वाजिमाध्यंदिनशाखायैकप्रव-रायच्छिच्छास्थानविनिर्गतपूर्व्व—

(१९) जाय मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययसोभि[२] वृद्धये अदृष्टफल-मंगीकृत्य चांद्राक्कायणे[३]—

(२०) वतितिसमकालं यावत्परया भक्त्या शाशने[४] नोदकपूर्व्वं प्रतिपादितमितिमत्वात—

(२१) न्निवासिजनपदैर्य्यथादीयमानभागभोगकरहिरण्यादिकमाज्ञा श्रवणविधेयै—

(२२) भूत्वा सर्व्वमस्मै समुपनेतव्यमिति ॥ सामान्यं चैतत्पुण्य-फलं वुध्वा[५] ऽस्मद्वंशजैरन्यै—

(२३) रपिभाविभोक्तृभिरस्मत्प्रदत्तधर्म्मा[६] दायोयमनुमंतव्यः पाल-नीयश्च ॥ उक्तं च व[७]—

(२४) हुभिर्व्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं ॥ [५*]

(२५) यानीह दत्तानि पुरा नरेंद्रैर्दानानि धर्म्मार्थयशस्कराणि । निर्म्माल्यवांतिप्रतिमानि

(२६) तानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥ [६*] अस्मत्कुलक्रम मुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्चदानमि—

(२७) दमभ्यनुमोदनीयं । लक्ष्म्यास्तडित्सलिलवुद्वुद[८] चंचलाया दानं फलं परयशः परिपाल—

(२८) नं च ॥ [७*] सर्व्वानेतान्भाविनः पार्थिवेंद्रान्भूयो भूयो याचते रामभद्रः ॥

---

[१] वसिष्ठ° [२] °यशो° [३] चंद्रार्कायणे°

[४] शासने° [५] बुद्ध्वा [६] °धर्म्मदायो°

[७] ब° [८] बुद्बुद°

(२९) सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः॥ [८*] इति कम—

(३०) लदलांवुविंदुलोलां[1] श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च। सकलमिदमुदा—

(३१) हृतं च वुध्वा[2] नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्या इति॥ [९*] संवत १०७६ माघ शुदि ५ [।*]

(३२) स्वयमाज्ञा। मंगलं महाश्रीः॥ स्वहस्तोयं श्री भोजदेवस्य [॥*]

---

[1] °दलांबुबिंदु,° [2] बुद्ध्वा।

राजा भोज के वि० सं० १०७६ के दानपत्र का भाषार्थ

पहला पत्र

ओं। जो संसार के बीज के जैसी चन्द्रमा की कला को संसार की उत्पत्ति के लिये ही सिर पर धारण करता है, ऐसा महादेव सब से श्रेष्ठ है। (१)

प्रलयकाल की बिजलियों के घेरे के रङ्ग जैसी महादेव की पीली जटा सदा तुम्हारा कल्याण करे। (२)

श्रेष्ठ नरेश, राजाओं के राजा बड़ी प्रभुतावाले, सीयकदेव के उत्तराधिकारी, श्रेष्ठ नरेश राजाओं के राजा बड़ी प्रभुतावाले श्री वाक्पतिराज के उत्तराधिकारी, श्रेष्ठ नरेश, राजाओं के राजा, बड़ी प्रभुतावाले श्री सिंधुराजदेव का उत्तराधिकारी, श्रेष्ठ नरेश, राजाओं का राजा बड़े ऐश्वर्यवाला, भोजदेव कुशल (प्रसन्नता) से युक्त होकर[१] स्थली प्रान्त के घाघ्रदोर ज़िले के वटपद्रक गाँव में आए हुए तमाम राजपुरुषों, ब्राह्मणों और आसपास रहने वाले लोगों को आज्ञा देता है। तुमको मालूम हो कि—हमने कोंकन की विजय के पर्व पर स्नान करने के बाद स्थावर और जंगम दोनों के स्वामी भगवान् पार्वतीपति की पूजा करके और संसार की असारता को देखकर—

राज्याधिकार अंधड़ समय के बादलों के समान है, विषयभोग क्षणिक आनन्द देने वाले हैं, मनुष्यों का जीवन तिनके के अग्रभाग में

---

[१] अथवा कुशलयुक्त हो। वह...

लटकती हुई पानी की बूंद के समान है, परलोक जाने के समय केवल धर्म ही मित्र रहता है। (३)

घूमते हुये संसार रूपी चक्र की धार के समान जाती आती रहने वाली इस लक्ष्मी को पाकर जो दान नहीं करते हैं उनको सिवाय पछताने के और कुछ हाथ नहीं आता। (४)

इस प्रकार दुनिया की नाश होने वाली हालत को समझकर ऊपर—

(यह स्वयं भोजदेव के हस्ताक्षर हैं)

दूसरा पत्र

लिखे गाँव में सौ निवर्तन[1] (नि० १००) भूमि अपनी सीमा, जो कि एक कोस[2] तक जहाँ तक कि गायें घास चरतीं (या चरने जाती) हैं, सहित मय आय के सुवर्ण, लगान, हिस्से, भोग की आमदनी, अन्य प्रकार की सब तरह की आय, और सब प्रकार के हकों के वाजि-माध्यंदिनी शाखा और एक प्रवर वाले वसिष्ठ गोत्री वामन के पुत्र भाइल नामक ब्राह्मण को, जिसके पूर्वज छिंछा से आए थे, माता पिता के और अपने धर्म और यश की बढ़ती के लिये, परोक्ष से होने वाले धर्म के फल को मान कर, चाँद, सूरज, समुद्र और पृथ्वी रहे तब तक के लिये बड़ी भक्ति के साथ जल हाथ में लेकर दान में दी है। इसका ख़याल करके वहाँ के रहने वाले लोगों को, इस आज्ञा को मान कर,

---

[1] भूमि का नाप।

[2] दानपत्र में 'गोचरयूतिपर्यन्तं' पाठ है। यदि कात्यायन के, 'अध्वपरिमाणे च' इस वार्तिक के अनुसार यहाँ पर के 'गोचरयूति' को ' गोयूतिः = गव्यूतिः का पर्यायवाची मान लें तो इसका अर्थ दो कोस होगा, जैसा कि अमरकोश में लिखा है:— 'गव्यूतिः स्त्रीक्रोशयुगम्'।

हमेशा से दिया जानेवाला हिस्सा, भोग, लगान, सुवर्ण वगैरा सब इस (भाइल) के पास ले जाना चाहिये। इस पुण्य फल को सब के लिये एक सा जानकर हमारे खानदान में होनेवाले या दूसरे खानदान में होने वाले आगे के राजाओं को हमारे धर्म के लिये दिए इस दान को मानना और पालन करना चाहिए। कहा भी है :—

सगर आदि अनेक राजाओं ने पृथ्वी भोगी है और जब जब यह पृथ्वी जिसके अधिकार में रही है तब तब उसी को उसका फल मिला है। (५)

इस दुनियाँ में पहले के राजाओं ने धर्म और यश के लिये जो दान दिए हैं उनको, उतरी हुई (त्याज्य) चीज़ या क़ै के समान समझ कर, कौन भला आदमी वापिस लेवेगा। (६)

हमारे वंश के उदार नियम के मानने वालों (हमारे वंशजों) और दूसरों को यह दान मंजूर करना चाहिए; क्योंकि इस बिजली की चमक और पानी के बुलबुले के समान चंचल लक्ष्मी का असली फल उसका दान करना या दूसरे के यश को बचाना ही है। (७)

आगे होने वाले सब राजाओं से श्रीरामचन्द्र बार बार यही प्रार्थना करता है कि यह सब राजाओं के लिये एक सा धर्म का पुल है। इसलिए अपने अपने वक्तों में आप लोगों को इसका पालन करना चाहिए। (८)

इस प्रकार लक्ष्मी को और मनुष्य जीवन को कमल के पत्ते पर पड़ी पानी की बूंद की तरह चंचल समझकर और ऊपर कही सब बातों पर ग़ौर कर लोगों को दूसरों की कीर्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए। (९)

संवत् १०७६ माघ सुदि ५। स्वयं हमारी आज्ञा। मंगल और बढ़ती हो। यह हस्ताक्षर स्वयं भोजदेव के हैं।

राजा भोज का दूसरा दानपत्र वि० सं० १०७८ का[१] है। यह भी

---

[१] इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ६, पृ० ४६-५४।

ताँबे के दो पत्रों पर जिनकी चौड़ाई १२ इंच और ऊँचाई ८ इंच है खुदा है। इन पत्रों को जोड़ने के लिये भी इनमें दो दो छेद करके ताँबे की कड़ियाँ लगाई गई थीं।

इन पत्रों पर भी एक ही तरफ़ अक्षर खुदे हैं और दूसरे पत्र पर सत्ताईसवीं पंक्ति से इकत्तीसवीं पंक्ति तक लकीरों के दुहरे चतुष्कोण के बीच उड़ते हुए मनुष्याकृति गरुड़ की आकृति बनी है। इसका भी मुख पंक्तियों की तरफ़ है और बाएँ हाथ में सर्प है।

इस दानपत्र के अक्षर भी वही उज्जैन के अन्यदान पत्रों के से नागरी अक्षर हैं। समग्र लेख में 'ब' के स्थान में 'व' खुदा है।

दो स्थानों पर 'श' के स्थान में 'स' और एक स्थान पर 'स' के स्थान में 'श' लिखा है। दो स्थानों पर 'बुद्धा' की जगह 'वुध्वा' लिखा मिलता है।

इस ताम्रपात्र का छपा हुआ ब्लाक उस पर की छाप से न बना होकर उसके अक्षरों को देख कर हाथ से लिखे अक्षरों पर से बनाया हुआ है। इसलिये उसके अक्षरों पर पूरी तौर से विश्वास नहीं किया जा सकता।

लेख की भाषा गद्य पद्यमय है और इसमें भी पहले ताम्रपात्र वाले वे ही ९ श्लोक हैं।

यह ताम्रपत्र उज्जैन में 'नागझरी' के पास जमीन जोतते हुए एक किसान को जमीन में गड़ा हुआ मिला था। (इस 'नागझरी' का का उल्लेख इस ताम्रपत्र की छठी पंक्ति में 'नागद्रह' के नाम से किया गया है। यह 'नागझरी' नामक नाला उज्जैन की पवित्र पञ्चक्रोशी में समझा जाता है। इसके अलावा इस ताम्रपत्र में लिखे 'वीराणक' गाँव का अब पता नहीं चलता।

इस दानपत्र में लिखा 'वीराणक' गाँव, वि० सं० १०७८ की माघ वदि ३ रविवार[1] (ई० स० १०२१ की २४ दिसम्बर) को, सूर्य

का उत्तरायण प्रारम्भ होने के समय, दान किया गया था और यह दानपत्र इसके करीब दो मास बाद वि० सं १०७८ की चैत्र सुदि १४ (ई० स० १०२१ की ३० मार्च) को लिखा गया था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ताम्रपत्र में का संवत चैत्रादि संवत् नहीं है। इस दान के समय भोज अपनी राजधानी धारा नगरी में ही था।

इस दानपत्र के दोनों पत्रों में भी पहले दानपत्र के समान ही इबारत के नीचे स्वयं राजा भोज के हस्ताक्षर हैं और वहाँ पर उसने अपना नाम भोजदेव ही लिखा है।

---

[१] इण्डियन ऐफ़ेमेरिस के अनुसार तीज को सोमवार आता है। परन्तु पहले दिन दूज १० घड़ी मात्र होने से और उक्त समय के बाद तीज के आ जाने से रविवार को भी तीज आ जाती है।

———

राजा भोज के वि० सं० १०७८ के ताम्रपात्र की नकल

पहला पत्र ।

(१) ओं[१] [॥*] जयति व्योमकेशोसौ यः सर्गाय विभर्तितां[२] । ऐन्दवीं[३] शिरसा लेखां जगद्वीजांकुराकृतिम्[४] ॥ [१*] ।

(२) तन्वंतु वः स्मराराते: कल्याणमनिशं जटा: कल्पान्तसमयो द्दामतडिद्वलय—

(३) पिङ्गलाः ॥ [२*] परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सीयकदेव पादा—

(४) नुध्यात, परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वाक्पतिराजदेव—

(५) पादानुध्यात, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीसिन्धुराजदेव पदानुध्यात,—

(६) परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेव: कुशली नागद्रह पश्चिमपथ—

(७) कांत: पातिवीराणके समुपगतान्समस्तराजपुरुषान्त्राह्मणोत्त[५] रान्प्रतिनिवासि पट्टकि—

(८) लजनपदादींश्च समादिशत्यस्तु वः संविदितं ॥ यथा अतीताष्टसप्तत्यधिकसाहस्रिक—

(९) सम्वत्सरे माघासित तृतीयायाम् । रवावुदगयनपर्व्वाणि कल्पित ह—

---

[१] यहाँ पर भी वही ओङ्कार का चिह्न दिया गया है । [२] बिभर्ति°

[३] 'वीं' पर का अनुस्वार 'वी' के ऊपर न देकर 'श्चि' इस प्रकार दिया है ।

[४] °द्बीजां,° [५] न्ब्राह्मणों,°

(१०) लानां लेख्ये ॥ श्रीमद्धारायामवस्थितैरस्माभिः स्नात्वा चराचरगुरुं भगव—

(११) न्तम्भ[1] वानीपतिंसमभ्यर्च्चर्य संसारस्यासारतां दृष्ट्वा। वाताभ्रविभ्रममिदम्वसुधाधिपत्य—

(१२) मापातमात्रमधुरो विषयोपभोगः प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां धर्म्मस्स—

(१३) खा परमहो परलोकयाने ॥ [३ *] भ्रमत्सन्सार[2]चक्राग्रधाराधारामिमांश्रियं। प्राप्य ये न—

(१४) ददुस्तेषां पश्चात्तापः परं फलं ॥ [४] इति जगतो विनश्वरं स्वरूपमाकलय्योपरि—

(१५) लिखितग्रामः स्वसीमातृणगोचरयूतिपर्य्यन्तस्सहिरण्यभागभो[3]—

(१६) स्वहस्तोय[4] श्रीभोजदेवस्य [॥]

दूसरा पत्र

(१७) गः सोपरिकरः सर्व्वादायसमेतः ब्राह्मण[5] धनपतिभट्टाय भट्टगोविन्दसुताय व[6]—

(१८) ह्वृचाश्वलायनशाखाय । अगस्तिगोत्राय । त्रिप्रवराय। वेघ्ल्लुवल्लप्रतिवद्ध[7]श्रीवादाविनिर्गतरा—

(१९) धसुरसंगकर्णाटाय। मातापित्रोरात्मनश्च पुन्य[8] यशोभिवृद्धये । अदृष्टफलमंगीकृत्य चं—

(२०) द्रार्कार्णवक्षिति समकालं यावत्परयाभक्त्या शाशनेनो[9] दकपूर्व्वं प्रतिपादित इति मत्वा—

---

[1] भगवन्तं,　　[2] संसार°

[3] इस पंक्ति का सम्बन्ध दूसरे पत्र की प्रथम पंक्ति से है।

[4] स्वहस्तोयं,[1]　　[5] ब्राह्मण,°　　[6] बह्वृचा,°

[7] बद्ध°,　　[8] पुण्य°　　[9] शासने°

(२१) यथादीयमानभागभोगकरहिरण्यादिकमाज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा सर्व्वमस्मै समुपनेतव्यं ।

(२२) सामान्यं चैतत्पुण्यफलम्वुध्वा[१] स्मद्वन्सजै[२] रन्यैरपि भावि-भोक्तृभिरस्मत्प्रदत्तधर्म्मादायो[३] य—

(२३) मनुमन्तव्यः पालनीयश्च । उक्तं च । वहुभि[४] र्व्वसुधाभुक्ता राजभिस्सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा—

(२४) भूमिस्तस्य तस्य तदाफलं ॥ [५*] यानीह दत्तानि पुरा-नरेन्द्रैर्दानानि धर्म्मार्थयशस्कराणि । निर्म्माल्य—

(२५) वान्तिप्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥ [६] अस्मत्कुलक्रमसुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च—

(२६) दानमिदमभ्यनुमोदनीयं । लक्ष्म्यास्तडिच्छलिलवुद्वुद[५] चचलाया दानं फलं परयमप्परि[६] पा—

(२७) लनं च ॥ [७*] सर्व्वानेतान्भाविनः पार्थिवेन्द्रान्भूयो भूयो याचते रामभद्रः

(२८) सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः [८*] ॥ इति क—

(२९) मलदलाम्वुविन्दुलोलां[७] श्रियमनुचिंत्य मनुष्यजीवितं च । सकलमि—

(३०) दमुदाहृतं च वुध्वा[८]नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्या [९*] इति ॥ सम्वत १०

(३१) ७८ चैत्र शुदि १४ स्वयमज्ञामंगलं महाश्रीः स्वहस्तोयं श्री भोजदेवस्य ।

---

[१] °म्वुद्ध्वा. [२] °द्वंशजै.° [३] °धर्म्मदायो.° [४] बहुभि.° [५] °बुद्बुद.° [६] °यशः परि.° [७] ° लाम्बुबिन्दु.° [८] बुद्ध्वा.

राजा भोज के वि० सं० १०७८ के दानपत्र का भाषार्थ

(यहाँ पर पहले दानपत्र में आई हुई इबारत के अर्थ का खुलासा न देकर विशेष इबारत का अर्थ ही दिया जाता है।)

पहले के दो श्लोकों में शिव की स्तुति की गई है।

परमभट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव जो कि, श्रीसीयकदेव के पुत्र वाक्पतिराज के उत्तराधिकारी, श्रीसिन्धुराज का पुत्र है कुशल युक्त होकर[1] नागह्रद के पश्चिम प्रान्त में स्थित धीराणक गाँव में एकत्रित हुए तमाम राज कर्मचारियों, ब्राह्मणों सहित वहाँ के रहने वाले पटेलों और आम रियाया को आज्ञा देता है। तुमको मालूम हो कि १०७८ के वर्ष की माघ बदि ३ रविवार के दिन सूर्य का उत्तरायण प्रारम्भ होने के समय (जब कि खेत जोतनेवालों की लिखा-पढ़ी होती है।[2]) धारानगरी में निवास करते हुए हमने स्नान और शिवपूजन कर, तथा संसार की असारता को देख....[3]

---

[1] अथवा कुशल युक्त हो। वह...

[2] दानपत्र में इसके लिये 'कल्पितहलानां 'लेख्ये' लिखा है।

शायद भोज के समय माघ में उन कृषकों की जिन्होंने खेत जोते हों लागान आदि के बाबत शर्तें तय होती होंगी? नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तन ने बैल की एक जोड़ी से जोती जाने वाली पृथ्वी को एक हल ज़मीन मानकर उसके अधिकार सहित गाँव दिया यह अर्थ किया है।

[3] यहाँ पर पहले दानपत्र में दिए वे ही दो श्लोक लिखे हैं

और जगत् के नाशवान् स्वरूप को समझ ऊपर लिखा (वीराणक) गाँव अपनी सीमा, जो कि एक कोस तक[1], जहाँ तक कि गायें घास चरती (या चरने जाती) हैं, सहित मय आयके सुवर्ण, हिस्से, भोग की आमदनी अन्य प्रकार की सब तरह की आय और सब तरह के हक़ के (ऋग्वेदी) यह वृच आश्वलायन शाखा, अगस्ति गोत्र और त्रिप्रवर वाले भट्ट गोविन्द[2] के पुत्र धनपति भट्ट को, जिसके पूर्वज वेल्लवल्ल प्रान्त के श्रीवादा से निकले हुए राधासुरसंग के कर्णाट थे, माता-पिता और अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिये दिया है। ऐसा समझ कर इसका लगान आदि उसके पास ले जाना चाहिए। हमारे पीछे होनेवाले हमारे वंश के और दूसरे वंश के राजाओं को भी इसे मानना और इसकी रक्षा करना चाहिए...[3]

संवत १०७८ की चैत्र सुदि १० (यह शायद दानपत्र लिखे जाने की तिथि है।)

स्वयं हमारी आज्ञा। मंगल और श्री वृद्धि हो।

यह स्वयं भोजदेव के हस्ताक्षर हैं।

भोज की विद्वत्ता के विषय में यहाँ पर इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि इसने भिन्न भिन्न विषयों के अनेक ग्रन्थ लिखे थे। उनका विवरण किसी अन्य अध्याय में दिया जायगा।

---

[1] पहले ताम्रपत्र में का इसी शब्द पर का नोट देखो।

[2] यह शायद वही गोविन्द भट्ट हो जिसे भोज ने मण्डप दुर्ग (माँडू) के छात्रावास का अध्यक्ष नियत किया था।

[3] इसके आगे पहले दानपत्रवाले ४ से ६ तक के वे ही श्लोक दिये गए हैं।

राजा भोज से सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ।

अलबेरूनी[1] ने अपने भ्रमण वृत्तान्त में एक अद्भुत कथा लिखी है। वह लिखता है :—

"मालवे की राजधानी धार में, जहाँ पर इस समय भोजदेव राज्य करता है, राज-महल के द्वार पर, शुद्ध चांदी का एक लंबा टुकड़ा पड़ा है। उसमें मनुष्य की आकृति दिखाई देती है। लोग इसकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार बतलाते हैं :—

प्राचीन काल मे किसी समय एक मनुष्य कोई विशेष प्रकार का रासायनिक पदार्थ लेकर वहाँ के राजा के पास पहुँचा। उस रासायनिक पदार्थ का यह गुण था कि उसके उपयोग से मनुष्य अमर, विजयी, अजेय और मनोवाञ्छित कार्य करने में समर्थ हो सकता था। उस पुरुष ने, राजा को उसका सारा हाल बतला कर, कहा कि आप अमुक समय अकेले आकर इसका गुण अजमा सकते हैं। इस पर राजा ने उसकी बात मान ली और साथ ही उस पुरुष की चाही हुई सब वस्तुएँ एकत्रित कर देने की, अपने कर्मचारियों को आज्ञा देदी।

इसके बाद वह पुरुष कई दिनों तक एक बड़ी कड़ाही में तेल गरम करता रहा। और जब वह गाढ़ा हो गया तब राजा से बोला कि, अब आप इस में कूद पड़ें, तो मैं बाकी की क्रियाएँ भी समाप्त कर डालूँ। परन्तु राजा की उसके कथनानुसार जलते हुए तेल में कूदने

---

[1] अलबेरूनी का भारत भा० २, पृ० ११५–१६।

अलबेरूनी ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक (तहकीके हिन्द) वि० सं० १०८७ (ई० स० १०३०) में समाप्त की थी।

की हिम्मत न हुई। यह देख उसने कहा कि, यदि आप इसमें कूदने से डरते हैं, तो मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मैं ही यह सिद्धि प्राप्त कर लूँ। राजा ने यह बात मानली। इस पर उस पुरुष ने औषधियों की कई पुड़ियाँ निकाल कर राजा को दीं और समझा दिया कि इस इस प्रकार के चिह्न दिखाई देने पर ये-ये पुड़िया तेल में डाल दे। इस प्रकार राजा को समझा बुझाकर वह पुरुष उस कड़ाही में कूद पड़ा और क्षण भर में ही गलकर एक गाढ़ा तरल पदार्थ बन गया। राजा भी उसकी बतलाई विधि के अनुसार एक एक पुड़िया उसमें डालने लगा। परन्तु जब वह एक पुड़िया को छोड़कर बाकी सारी की सारी पुड़ियाएँ डाल चुका तब उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि, यदि वास्तव में ही यह पुरुष अमर, विजयी, और अजेय होकर जीवित हो गया, तो मेरी और मेरे राज्य की क्या दशा होगी। ऐसा विचार उत्पन्न होते ही उसने वह अन्तिम पुड़िया तेल में न डाली। इससे वह कड़ाही ठंडी हो गई और वह घुला हुआ पुरुष चांदी के उपर्युक्त टुकड़े के रूप में जम गया।

भोज का मुसलमान लेखकों द्वारा लिखा हुआ वृत्तान्त ।

मुहम्मद क़ासिम ने, जो बादशाह अकबर का समकालीन था, और जिसका उपनाम फरिश्ता था एक इतिहास लिखा है। वह 'तारीख़ फरिश्ता' के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें भोज के विषय में लिखा है[1]:—

"राजा भोज क़ौम का पँवार था। इनसाफ और सख़ावत में विक्रमादित्य के तरीक़े पर चलता था। वह रात को भेस बदल कर शहर में गश्त लगाता और गरीबों और फक़ीरों की ख़बर लेता था। उसका वक्त अपनी रियाया के हाल की तरक्की और बेहबूदी में ही गुजरता था। गाँव 'खरकौन,' 'बीजागढ़' व कसबा 'हिंदिया' उसी के वक्त में बसाए गए थे।

उसको रानियों के जमा करने का भी शौक़ था। वह साल भर में दो जलसे किया करता था। उनमें हिन्दुस्तान भर के दूर दूर के क़ामिल लोग इकट्ठे होते थे। ये जलसे ४० रोज तक रहते थे और उन दिनों सिवाय नाच, गाना और शायरी, वगैराओं के और कोई काम नहीं किया जाता था। जब तक ये जलसे रहते थे तब तक तवायफों को खाना, शराब, व पान सरकार से दिए जाते थे। बिदाई के वक्त हर एक को सरोपाव (ख़िलअत) और १०-१० अशर्फियाँ मिलती थीं।

---

[1] तारीख़ फरिश्ता, भा० १, पृ० १४।

यह राजा ५० साल हुकूमत करके बहिश्त को गया। भोज के वक्त में कन्नौज की गद्दी पर वासदेव नाम का राजा[1] था।

बादशाह अकबर के वक्त उसके मंत्री अबुल फ़ज़ल ने भी 'आईने अकबरी' नाम की एक किताब लिखी थी। उसमें भोज के बारे में लिखा[2] है :—

राजा विजैनंद[3] को शिकार का बड़ा शौक़ था। एक बार उसे मूँज के पौदे के पास पड़ा उसी वक्त का जन्मा एक बच्चा मिला। राजा उसे अपना लड़का बनाकर ले आया और उसका नाम मुंज रक्खा। विजैनंद के मरने के वक्त उसका हक़ीक़ी लड़का भोज छोटा था। इसी से उसने राज का काम मुंज को सौंप दिया। यह दखन की लड़ाई में मारा गया था।

भोज संवत् ५४१ विक्रमी में तख़्त पर बैठा और उसने बहुत से मुल्क फ़तेह किए। उसने अपने इन्साफ़ और सख़ावत से ज़माने को आबाद रक्खा और अक़्लमंदों के पाए को बढ़ाया। उसके वक्त में चुने हुए आलिमों का बाज़ार गरम रहा और अक़्लमंदों का ज़ोर शोर था। उसके दरबार में ५०० चुने हुए आलिम इनसाफ़ व क़ानून की

---

[1] इसका कुछ पता नहीं चलता। वहाँ पर वि० सं० १०१६ से १०८३ तक प्रतिहार वंश के विजयपाल, राज्यपाल, त्रिलोचनपाल और यशः पाल का राज्य रहना पाया जाता है। इसके बाद से गाहड़वाल चन्द्रदेव के क़न्नौज विजय करने तक का हाल अज्ञात है।

[2] आईने अकबरी, भा० १, पृ० ४७०-४७१

[3] मुञ्ज के पिता का नाम श्रीहर्ष (सीयक) और दादा का नाम वैरिसिंह (वज्रट) था। अबुलफ़ज़ल ने वज्रट को ही मुञ्ज का पिता मानकर उसी का नाम विजैनन्द लिखा हो तो आश्चर्य नहीं।

तरक्की करते थे। इन आलिमों के सरदार बरूज[1] और धनपाल[2] थे। उन लोगों ने दिल को लुभानेवाली बातें लिखी हैं और वे अक्लमंदों और खोज करने वालों के लिये तोहफ़े छोड़ गए हैं।

जब भोज पैदा हुआ था, या तो नजूमियों की अक्ल ख़ब्त हो गई थी, या उनसे भूल हुई थी। इसी से सबने मिलकर उसके जायचे में ऐसे बुरे जोग बतलाए कि उनका हाल सुनकर उसके रिश्तेदारों के दिलों में अपने मरने का खटका पैदा हो गया। इसी से उन्होंने भोज को ले जाकर एक बीहड़ और अजनबी जंगल में छोड़ दिया। मगर वहाँ पर भी वह राहगीरों के हाथों परवरिश पाता रहा।

हकीम बरूज ने, जो उन दिनों एक मामूली आलिम समझा जाता था, भोज का असली जायचा तैयार किया और उसमें उसका एक बड़ा राजा होना और ९० बरस की उम्र पाना लिखा।

इसके बाद उसने उस ज़ायचे को ले जाकर राजा के गुज़रने की जगह पर डाल दिया। जब राजा ने उसे देखा तो उसका ख़ून जोश में आ गया और उसने सब आलिमों को दरबार में बुलवाकर इसकी फिर से जाँच करवाई। इससे पहले जो गलती हो गई थी वह ज़ाहिर हो गई। इसके बाद राजा खुद जाकर भोज को वापिस ले आया। तक़दीर खुलने से सच्चाई की आँख भी खुल गई।

वहीं पर आगे लिखा है :—

---

[1] बरूज शायद वररुचि का बिगाड़ा हुआ रूप हो।

[2] धनपाल, भोज के चचा मुञ्ज के समय से लेकर भोज के समय तक जीवित था और इसने भोज की आज्ञा से 'तिलक मञ्जरी' नाम का गद्य काव्य लिखा था। इसी धनपाल को राजा मुञ्ज ने 'सरस्वती' की उपाधि दी थी।

कहते हैं कि ८ साल की उम्र में ही बेगुनाह मुंज[1] को अंधा व गूँगा करके मार डालने के लिये कुछ लोगों के सुपुर्द कर दिया। लेकिन कातिलों ने उसे मार डालने के बजाय उसका भेस और नाम बदल कर छोड़ दिया। जाते वक्त वह एक कागज़ पर कुछ लिख कर उनको दे गया और कह गया कि अगर राजा मेरा हाल दरियाफ़ करे तो यह रुक्का उसको दे देना। उस रुक्के की लिखावट का खुलासा यह था :—

बुराई इन्सान को किस तरह अक्ल के उजाले से हटाकर दूर गिरा देती है और बेगुनाहों के बेजा खून से उसके हाथ रंग देती है। आज तक कोई भी अक्लमंद से अक्लमंद राजा मरते वक्त मुल्क या माल को अपने साथ नहीं ले जासका। ऐसी हालत में तुझे कैसे यकीन हो गया है कि मेरे मार डालने से तेरा राज अमर हो जायगा और उसे कोई खतरा न रहेगा।

इस इबारत को पढ़कर राजा की गफ़लत की नींद टूट गई और वह अपने किये पर पछताने लगा। जब दरबारियों ने भलाई होने के आसार देखे तब मुंज के छोड़ देने का सारा हाल उसे कह सुनाया। राजा ने मुंज की बड़ाई कर उसे अपना वली अहद बना लिया।

उसके बेटे जैचंद का राज खतम होने पर मालवे का राज जैतपाल नँवर को मिला[2]।

---

[1] आईने अकबरी में 'मुञ्जरा' लिखा होने से उक्त ग्रंथ का तात्पर्य मुञ्ज के अंधे किये जाने से ही है। यह कथा प्रबन्धचिन्तामणि की कथा का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होती है।

[2] आईने अकबरी की इस कथा में गड़बड़ नजर आती है।

भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह के बाद जिसे शायद यहाँ पर जैचन्द के नाम से लिखा है १४ राजाओं ने करीब २५० वर्ष तक और भी राज्य किया

था। हाँ, भोज द्वितीय के उत्तराधिकारी जयसिंह चतुर्थ के समय, वि० सं० १३६६ (ई० सं० १३०६) के करीब, मालवे पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

यहाँ पर 'उसके बेटे जैचंद' से यदि भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का तात्पर्य हो तो फिर मुञ्ज के अन्धे किए जाने के स्थान में मुञ्ज द्वारा भोज के अंधे किए जाने का तात्पर्य लेना होगा और आईने अकबरी की लिखावट में लेखक दोष मानना होगा। इसके अलावा यह भी मानना होगा कि इस वंश के दोनों भोजों और उनके उत्तराधिकारी जयसिंहों को एक मानकर भी अबुल फ़ज़ल ने अपनी पुस्तक में गड़बड़ कर दी है।

भविष्यपुराण में भोज और उसके वंश का वृत्तान्त

विंदुसारस्ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमशोकस्तनयोऽभवत् ॥४४॥
एतस्मिन्नेव काले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तमः।
अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्महोममथाकरोत् ॥४५॥
वेदमंत्र प्रभावाच्च जाताश्चत्वारि क्षत्रियाः।
प्रमरस्सामवेदी च चपहानिर्यजुर्विदः ॥४६॥
त्रिवेदी च तथा शुक्लोथर्वा स परिहारकः।
ऐरावत कुले जातान्गजानारुह्यते पृथक् ॥४७॥
अशोकं स्ववशं चक्रुस्सर्वे बौद्धा विनाशिताः।
चतुर्लक्षाः स्मृता बौद्धाः दिव्यशस्त्रैः प्रहारिताः ॥४८॥
अवन्ते प्रमरोभूपश्चतुर्योजनविस्तृताम्।
अम्बावती नाम पुरीमध्यास्य सुखितो भवत् ॥४९॥

(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड १, अ० ६, पृ० २५८)

पूर्णे द्वे च सहस्रान्ते सूतो वचनमब्रवीत्।
सप्तत्रिंशशते वर्षे दशाब्दे चाधिके कलौ ॥७॥
प्रमरो नाम भूपालः कृतं राज्यं च षट्समाः।
महामदस्तनो जातः पितुरर्धं कृतं पदम् ॥८॥
देवापिस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम्।
देवदूतस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं स्मृतं पदम् ॥९॥
तस्माद्गंधर्व सेनश्च पंचाशदब्दभूपदम्।
कृत्वा च स्वसुतं शंखमभिषिच्य वनं गतः ॥१०॥

शंखेन तत्पदं प्राप्तं राज्यं त्रिंशत्समाः कृतम् ।
देवांगना वीरमती शक्रेण प्रेषिता तदा ॥११॥
गंधर्वसेनं संप्राप्य पुत्ररत्नमजीजनत् ।
सुतस्य जन्मकालेतु नभसः पुष्पवृष्टयः ॥१२॥

* * * *

पूर्णेत्रिंशच्छते वर्षे कलौ प्राप्ते भयंकरे ॥१४॥
शकानां च विनाशार्थमार्यधर्मविवृद्धये ।
जातश्शिवाज्ञया सोऽपि कैलासाद्गुह्यकालयात् ॥१५॥
विक्रमादित्यनामानं पिता कृत्वा मुमोदह ।
स बालोऽपि महाप्राज्ञः पितृ मातृ प्रियंकरः ॥१६॥
पञ्चवर्षे वयः प्राप्ते तपसोऽर्थे वनं गतः ।
द्वादशाब्दं प्रयत्नेन विक्रमेण कृतं तपः ॥१७॥
पश्चादम्बावतीं दिव्यां पुरीं यातः श्रियान्वितः ।
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड १, अध्याय ७, पृ० २४८)

स्वर्गते विक्रमादित्ये राजानो बहुधाभवन् ।
तथाष्टादशराज्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥६॥

* * * *

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः ॥१७॥
विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्यं गृहीतवान् ।
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड ३, अध्याय २, पृ० २८२)

शालिवाहनवंशे च राजानो दशचाभवन् ।
राज्यं पञ्चशताब्दं च कृत्वा लोकान्तरं ययुः ॥१॥
मर्य्यादाक्रमतो लीना जाता भूमंडले तदा ।
भूपतिर्दशमो यो वै भोजराज इति स्मृतः ।
दृष्ट्वा प्रक्षीणमर्यादां बली दिग्विजयं ययौ ॥२॥
सेनया दशसाहस्र्या कालिदासेन संयुतः ।
तथान्यैर्ब्राह्मणैः सार्द्धं सिंधुपारमुपाययौ ॥३॥

जित्वा गांधारजान्म्लेच्छान्काश्मीरान्नारवान्छठान् ।
तेषां प्राप्य महाकोशं दंडयोग्यानकारयत् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे म्लेच्छ आचार्येण समन्वितः ।
महामद इति ख्यातः शिष्यशाखासमन्वितः ॥५॥
नृपश्चैव महादेवं मरुस्थलनिवासिनम्
गंगाजलैश्च संस्नाप्य पंचगव्यसमन्वितैः ।
चंदनादिभिरभ्यर्च्य तुष्टाव मनसा हरम् ॥६॥

नमस्ते गिरिजानाथ मरुस्थलनिवासिने ।
त्रिपुरासुरनाशाय बहुमायाप्रवर्तिने ॥७॥

म्लेच्छैर्गुप्ताय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे ।
त्वं मां हि किंकरं विद्धि शरणार्थमुपागतम् ॥८॥

इति श्रुत्वा स्तवं देवः शब्दमाह नृपाय तम् ।
गंतव्यं भोजराजेन महाकालेश्वरस्थले ॥९॥

म्लेच्छैस्सुदूषिता भूमिर्वाहीकानामविश्रुता ।
आर्य्यधर्मो हि नैवात्र वाहीके देशदारुणे ॥१०॥

बभूवात्र महामायी योऽसौ दग्धो मयापुरा ।
त्रिपुरो बलिदैत्येन प्रेषितः पुनरागतः ॥११॥

अयोनिः सवरो मत्तः प्राप्तवान्दैत्यवर्द्धनः ।
महामद इति ख्यातः पैशाचकृतितत्परः ॥१२॥
नागन्तव्यं त्वयाभूप पैशाचे देशधूर्तके ।
मत्प्रसादेन भूपाल तव शुद्धिः प्रजायते ॥१३॥

इति श्रुत्वा नृपश्चैव स्वदेशान्पुनरागमत् ।
महामदश्च तैः सार्द्धं सिंधुतीरमुपाययौ ॥१४॥
उवाच भूपतिं प्रेम्णा मायामदविशारदः ।
तव देवो महाराज मम दासत्वमागतः ॥१५॥

ममोच्छिष्टं स भुञ्जीयाद्यथा तत्पश्य भो नृप।
इति श्रुत्वा तथा दृष्ट्वा परं विस्मयमागतः ॥१६॥
म्लेच्छधर्मे मतिश्चासीत्तस्य भूपस्य दारुणे ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा कालिदासस्तु रुषा प्राह महामदम्।
माया ते निर्मिता धूर्त नृपमोहनहेतवे ॥१८॥
हनिष्यामि दुराचारं वाहीकं पुरुषाधमम्।
इत्युक्त्वा स द्विजः श्रीमान्नवार्णजपतत्परः ॥१९॥
जप्त्वा दशसहस्रं च तद्दशांशं जुहाव सः।
भस्म भूत्वा स मायावी म्लेच्छदेवत्वमागतः ॥२०॥
भयभीतास्तु तच्छिष्या देशं वाहीकमाययुः।
गृहीत्वा स्वगुरोर्भस्म मदहीनत्वमागतम् ॥२१॥
स्थापितं तैश्च भूमध्ये तत्रोपुर्मदतत्पराः।
मदहीनं पुरं जातं तेषां तीर्थं समं स्मृतम् ॥२२॥
रात्रौ स देवरूपश्च बहुमायाविशारदः।
पैशाचं देहमास्थाय भोजराजं हि सोऽब्रवीत् ॥२३॥
आर्य्यधर्मो हि ते राजन्सर्वधर्मोत्तमः स्मृतः।
ईशाज्ञया करिष्यामि पैशाचं धर्मदारुणम् ॥२४॥
लिंगच्छेदी शिखाहीनः श्मश्रुधारी स दूषकः।
उच्चालापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम ॥२५॥
विना कौलं च पशवस्तेषां भक्ष्या मता मम।
मुसलेनैव संस्कारः कुशैरिव भविष्यति ॥२६॥
तस्मान्मुसलवन्तो हि जातयो धर्मदूषकाः।
इति पैशाचधर्मश्च भविष्यति मया कृतः ॥२७॥
इत्युक्त्वा प्रययौ देवः स राजा गेहमाययौ।
त्रिवर्णे स्थापिता वाणी सांस्कृती स्वर्गदायिनी ॥२८॥

शूद्रेषु प्राकृती भाषा स्थापिता तेन धीमता ।
पंचाशदब्दकालं तु राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२९॥
स्थापिता तेन मर्य्यादा सर्वदेवोपमानिनी ।
आर्य्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विंध्यहिमालयोः ॥३०॥
आर्य्यवर्णाः स्थितास्तत्र विंध्यांते वर्णसंस्कराः ।
नरा मुसलवन्तश्च स्थापिताः सिंधुपारजाः ॥३१॥
बर्बरे तुषदेशे च द्वीपे नानाविधे तथा ।
ईशामसीह धर्म्माश्च सुरै राज्ञैव संस्थिाः ॥३२॥

(भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड ३, अध्याय ३, पृ० २८३)

स्वर्गते भोजराजे तु सप्तभूपास्तदन्वये ।
जाताश्चाल्पायुषो मन्दा त्रिशताब्दांतरे मृताः ॥१॥
बहुभूपवती भूमिस्तेषां राज्ये बभूवह ।
वीरसिंहश्च यो भूपः सप्तमः संप्रकीर्तितः ॥२॥
तदन्वयं त्रिभूपाश्च द्विशताब्दान्तरे मृताः ।
गंगासिंहश्च यो भूपो दशमः स प्रकीर्तितः ॥३॥
कल्पक्षेत्रे च राज्यं स्वं कृतवान्धर्मतो नृपः ।

(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड ३, अध्याय ४, पृ० २८३) ।

भावार्थ

उस (चन्द्रगुप्त) का पुत्र बिंदुसार हुआ । उसने भी अपने पिता के [स]मान ही (६० वर्ष) राज्य किया । बिंदुसार का पुत्र अशोक हुआ ।

इसी समय किसी कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने आबू पर जाकर ब्रह्मा के [ना]म पर यज्ञ किया । उस यज्ञ से चार क्षत्रिय पैदा हुए । सामवेद का [अ]नुयायी प्रमर (परमार), यजुर्वेद को मानने वाला चपहानि (चाह-[मा]न), त्रिवेदी शुक्ल ? और अथर्ववेदी परिहारक (पड़िहार) । इन्होंने [अ]शोक को वश में करके चार लाख बौद्धों का नाश कर दिया ।

अवन्ति (उज्जैन) का राजा प्रमर (परमार) चार योजन विस्तार वाली अम्बावती नगरी में सुख से रहने लगा।

❋ ❋ ❋

फिर सूत ने कहा कि दो हज़ार वर्ष पूरे होने पर कलियुग संवत् ३७१० में प्रमर नामक राजा हुआ था।

उसकी वंशावली[1] :—

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	राज्यकाल	विशेष वक्तव्य
१	प्रमर	मूल पुरुष	६	
२	महामद	सं० १ का पुत्र	३	
३	देवापि	सं० २ का पुत्र	३	
४	देवदूत	सं० ३ का पुत्र	३	
५	गन्धर्वसेन	सं० ४ का पुत्र	५०	यह अपने पुत्र को राज्य देकर वन में चला गया। वहाँ पर इसके कलियुग संवत् ३००० में विक्रमादित्य नामक पुत्र हुआ।
६	शंख	सं० ५ का पुत्र	३०	
७	विक्रमादित्य	सं० ६ का भाई		यही 'शकारि' था। यह ५ वर्ष की आयु में वन में चला गया। और वहाँ पर

[1] परन्तु भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड ४, अध्याय १, पृ० ३३१-३३२ श्लो० १-४४ में परमारों की वंशावली इस प्रकार दी है :—

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	राज्यवर्ष	विशेष वक्तव्य
१	प्रमर	मूल पुरुष	६	'षड्वर्षाणि कृतं राज्यं।'
२	महामर	संख्या १ का पुत्र	३	
३	देवापि	सं० २ का पुत्र	३	
४	देवदूत	सं० ३ का पुत्र	३	
५	गन्धर्वसेन	सं० ४ का पुत्र	५०	
६	विक्रम	सं० ५ का पुत्र	१००	
७	देवभक्त	सं० ६ का पुत्र	१०	शकों द्वारा मारा गया।
८	शालिवाहन	सं० ७ का पुत्र	६०	शकों को जीता।
९	शालिहोत्र	सं० ८ का पुत्र	५०	
१०	शालिवर्धन	सं० ९ का पुत्र	५०	
११	शकहन्ता	सं० १० का पुत्र	५०	
१२	सुहोत्र	सं० ११ का पुत्र	५०	
१३	हविर्होत्र	सं० १२ का पुत्र	५०	
१४	इन्द्रपाल	सं० १३ का पुत्र	५०	इन्द्रावती नगरी बसाई।
१५	माल्यवान्	सं० १४ का पुत्र	५०	माल्यवती नगरी बसाई।
१६	शंभुदत्त	सं० १५ का पुत्र	५०	
१७	भौमराज	सं० १६ का पुत्र	५०	

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	राज्यकाल	विशेष वक्तव्य
१८	वत्सराज	सं० १७ का पुत्र	५०	
१६	भोजराज	सं० १८ का पुत्र	५०	
२०	शंभुदत्त	सं० १६ का पुत्र	४०	
२१	बिंदुपाल	सं० २० का पुत्र	४०	
२२	राजपाल	सं० २१ का पुत्र	४०	
२३	महीनर	सं० २२ का पुत्र	४०	
२४	सोमवर्मा	सं० २३ का पुत्र	४०	
२५	कामवर्मा	सं० २४ का पुत्र	४०	
२६	भूमिपाल	सं० २५ का पुत्र	४०	इसी का दूसरा नाम वीर-सिंह था।
२७	रंगपाल	सं० २६ का पुत्र	×	
२८	कल्पसिंह	सं० २७ का पुत्र	४०	कलाप नगर बसाया।
२६	गंगासिंह	सं० २८ का पुत्र		६० वर्ष की आयु में अपुत्र ही मरा।

समाप्तिमगमद्विप्र प्रमरस्य कुलं शुभम् ॥४४॥

तदन्वये च ये शेषाः क्षत्रियास्तदनन्तरम्।

तन्नारीष्वभितो विप्र बभूवुर्वर्णसंकराः ॥४५॥

वैश्यवृत्तिकराः सर्वे म्लेच्छतुल्या महीतले।

इति ते कथितं विप्र कुलं दक्षिण भूपतेः ॥४६॥

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	राज्यवर्ष	विशेष वक्तव्य
				१२ वर्ष तप करने के बाद अम्बावती नगरी में निवास करने लगा।[1] इसके मरने पर जुदा जुदा १८ राज्य होगये।
८	XXX	सं० ७ का पुत्र		
९	शालिवाहन	सं० ७ का पौत्र		इसके १० वंशजों ने ५०० वर्ष राज्य किया।
१०	भोजराज	सं० ९ का दशवाँ वंशज	५०	इसने दस हजार फौज के साथ सिंधु पार जाकर गाँधार और काश्मीर को तथा म्लेच्छों और अरबों को जीता। (मक्के की) मरुभूमि में स्थित महादेव का पूजन किया। इस यात्रा में कालिदास भी इसके साथ था। वहाँ पर वाह्लीक देश

१ भविष्य पुराण के

भुक्त्वा भर्तृहरिस्तत्र योगारूढो वनं ययौ ॥१५॥
विक्रमादित्य एवास्य भुक्त्वा राज्यमकंटकम्।
शतवर्षं मुदा युक्तो जगाम मरणे दिवम् ॥१६॥

(प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड २, अध्याय २३, पृ० २७१)

इन श्लोकों में भर्तृहरि के वनगमन पर विक्रमादित्य की राज्यप्राप्ति लिखी है। शायद शंख और भर्तृहरि एक ही समझे गये हों।

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	राज्यकाल	विशेष वक्तव्य
				में हज़रत मोहम्मद से भोज की मुलाकात हुई और उसने धोका देकर भोज को मुसलमान करना चाहा। परन्तु कालिदास के अनुष्ठान से मोहम्मद भस्म होकर म्लेच्छों का देवता हो गया। राजा भोज के समय ईसा मसीह का धर्म भी फैल चुका था। भोज के बाद उसके वंश में ७ राजाओं ने ३०० वर्ष राज्य किया। इनके समय देश अनेक राज्यों में बँट गया था।
११	वीरसिंह	सं० १० का सातवाँ वंशज		इसके तीन वंशजों ने २०० वर्ष राज्य किया।
१२	गंगासिंह	सं० १० का दसवाँ वंशज		

परन्तु ये सारी ही बातें पीछे से कल्पित की हुई, और अनैतिहासिक हैं।

मेरुतुंग की बनाई प्रबन्ध चिन्तामणि[१] में राजा भोज से सम्बन्ध रखने वाली निम्नलिखित कथाएँ मिलती हैं :—

---

[१] यह ग्रन्थ वि० सं० १३६२ (ई० स० १३०५) में बनाया गया था।

मालवे का परमार नरेश भोज और गुजरात का सोलंकी (चालुक्य) राजा भीम दोनों समकालीन थे।

राजा भोज नियमानुसार नित्यकर्म से छुट्टी पाकर प्रातः काल ही सभामण्डप में आ जाता था और वहाँ पर आए हुए याचकों को इच्छा-नुरूप दान देकर सन्तुष्ट करता था। उसके इस ढंग को देख रोहक नाम के मंत्री ने सोचा कि यदि यही सिलसिला कुछ दिन और जारी रहा तो राज्य का खज़ाना अवश्य ही खाली हो जायगा। इस लिये जहाँ तक हो इसे शीघ्र ही रोकना चाहिए। परन्तु राजा को प्रत्यक्षरूप से समझाने में उसके नाराज़ होने का डर था। इन सब बातों को सोचकर एक दिन उस मंत्री ने सभामण्डप की दीवार पर, खड़िया से, यह वाक्य लिख दिया :—

'आपदर्थे धनं रक्षेत्'

अर्थात्—आफ़त के समय के लिये धन की रक्षा करनी चाहिए। परन्तु जब दूसरे दिन प्रातः काल भोज की नजर उसपर पड़ी और पूछने पर भी किसी ने लिखने वाले का पता नहीं बताया, तब उसने उसी के आगे यह वाक्य जोड़ दिया:—

'भाग्यभाजः क्वापदः'

अर्थात्—भाग्यशाली पुरुष के आपदा कहाँ होती है ?

यह देख प्रधान ने उसके आगे फिर से लिखा:—

'दैवं हि कुप्यते क्वापि'

अर्थात्—शायद कभी भाग्य पलट जाय ?

इसे पढ़कर भोज ने उसके आगे यह वाक्य जोड़ दिया :—

'संचितोपि विनश्यति'

अर्थात्—भाग्य पलट जायगा तो इकट्ठा किया हुआ भी नष्ट हो

जायगा। अन्त में राजा के निश्चय को जान रोहक को इस कार्य के लिये उससे माफ़ी माँगनी पड़ी।

इसी दानशीलता के कारण धीरे धीरे राजा भोज का यश चारों तरफ फैल गया और उसकी सभा में ५०० पण्डित इकट्ठे हो गए। परन्तु भोज ने उन सब के ही खर्च का पूरा पूरा प्रबन्ध कर दिया था[१]।

---

[१] प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि भोज के पहनने के कङ्कणों में ये ४ आर्याएँ खुदी हुइ थीं:—

इदमन्तरमुपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति संपदियम्।
विपदि नियतोदितायां पुनरुपकर्तुं कुतोवसरः ॥१॥

अर्थात्—जब तक कि स्वभाव से ही चंचल यह सम्पत्ति मौजूद है, तब तक ही उपकार करने का मौक़ा है। अवश्य आनेवाली विपत्ति के आ जाने पर फिर उपकार करने का मौक़ा ही कहाँ रहेगा?

निजकरनिकरसमृद्ध्या धवलय भुवनानि पार्वणशशाङ्क!
सुचिरं हन्त न सहते हतविधिरिह सुस्थितं किमपि ॥२॥

अर्थात्—ऐ पूनम के चाँद! तू अपनी किरणों की शोभा से दुनिया को उजली कर ले; क्योंकि यह दुष्ट भाग्य संसार में किसी की भी बहुत समय तक अच्छी हालत नहीं सह सकता है (तात्पर्य यही है कि मौक़े पर भलाई कर लेना ही आवश्यक है। सदा किसी की एक सी दशा नहीं रहती)।

अयमवसरः सरस्ते सलिलैरुपकर्तुमर्थिनामनिशम्।
इदमपि सुलभमम्भो भवति पुरा जलधराभ्युदये ॥३॥

अर्थात्—ऐ तालाब! तेरे लिए प्यासों के साथ रात दिन भलाई करने का यही मौक़ा है। वर्षाऋतु में तो यही पानी आसानी से मिलने लग जायगा। (तात्पर्य यही है कि उपकार करने का मौक़ा हाथ से न जाने देना चाहिए।)

एक बार एक गरीब ब्राह्मण नदी पार कर नगर की तरफ़ आ रहा था। इतने में राजा भोज भी उधर जा निकला और ब्राह्मण को नदी पार से आया जान पूछने लगा :—

'कियन्मात्रं जलं विप्र !'

अर्थात्—ऐ ब्राह्मण ! (नदी में) कितना जल है ?

कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतोपिचण्डरयः।
तटिनि ! तटद्रुमपातिनि ! पातकमेकं चिरस्थायि ॥४॥

अर्थात्—हे नदि ! प्रचण्ड वेगवाली और बहुत ऊँची उठी हुई तेरी बढ़िया तो कुछ ही दिन रहती है। लेकिन किनारे के दरख़्तों को गिराने की बदनामी तेरे सिर पर हमेशा के लिये रह जाती है।

(तात्पर्य यही है कि प्रभुता सदा ही नहीं रहती। परन्तु उस समय की की हुई बुराई हमेशा के लिये बदनामी का बायस हो जाती है)।

इसी प्रकार उसके पहनने के कंठे में लिखा था :—

यदि नास्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्।
तद्धनं नैव जानामि प्रातः कस्य भविष्यति ॥५॥

अर्थात्—अगर सूर्य के अस्त होने के पूर्व तक ज़रूरत वालों को धन नहीं दिया तो नहीं कह सकता कि सुबह होने तक वह धन किसके अधिकार में चला जायगा। यह भी लिखा मिलता है कि उसके पहनने के कुण्डलों पर यह श्लोक खुदा था :—

ग्रासादर्द्धमपिग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥६॥

अर्थात्—यदि एक लुकमा भी मिले तो भी क्यों न उसमें से आधा ज़रूरतवालों को दे दिया जाय ? इच्छा के अनुसार धन तो कब किसके पास इकट्ठा होगा ? (इसका कुछ पता नहीं है।)

इस पर ब्राह्मण ने उत्तर दिया :—

जानुदघ्नं नराधिप !

अर्थात्—हे राजा ! घुटनों तक पानी है।

इस उत्तर के 'जानुदघ्नं' शब्द में 'दघ्नच्' प्रत्यय के प्रयोग को, जो व्याकरण के अनुसार खास तौर पर ऊँचाई बताने के लिये ही प्रयुक्त होता है, सुन कर भोज समझ गया कि यह कोई अच्छा विद्वान् है। परन्तु साथ ही उसकी फटी हालत को देखकर उसे आश्चर्य भी हुआ। इसी से उसने फिर पूछा :—

'कथं सेयमवस्था ते

अर्थात्—(फिर) तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों है?

यह सुन पण्डित भी ताड़ गया कि राजा ने मेरी विद्वत्ता को जान लिया है इस लिये उसने उत्तर दिया :—

न सर्वत्र भवादृशाः ॥'

अर्थात्—सब जगह आप के से (गुणग्राही) नहीं है।

इस जवाब से प्रसन्न होकर राजा ने उसे ३ लाख रुपये और १० हाथी इनाम[1] दिए।

एक बार रात में अचानक आँख खुल जाने से राजा भोज ने देखा कि चाँदनी के छिटकने से बड़ाही सुहावना समय हो रहा है, और सामने ही अकाश में स्थित चन्द्रमा देखने वाले के मन में आह्लाद

---

[1] इस पर धर्माध्यक्ष ने दान की बही (रजिस्टर) में लिखा :—

लक्षं लक्षं पुनर्लक्षं मत्ताश्च दशदन्तिनः।
दत्तं देवेन तुष्टेन जानुदघ्नप्रभाषणात्॥

उत्पन्न कर रहा है। यह देख राजा की आँखें उस तरफ अटक गईं और थोड़ी देर में उसने यह श्लोकार्ध पढ़ा :—

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते।
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति यथा॥

अर्थात्—चाँद के भीतर जो यह बादल का टुकड़ा सा दिखाई देता है लोग उसे खरगोश कहते हैं। परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता।

संयोग से इसके पहले ही एक विद्वान् चोर राज महल में घुस आया था और राजा के जग जाने के कारण एक तरफ छिपा बैठा था। जब भोज ने दो तीन बार इसी श्लोकार्ध को पढ़ा और अगला श्लोकार्ध उसके मुँह से न निकला तब उस चोर से चुप न रहा गया और उसने आगे का श्लोकार्ध कह कर उस श्लोक की पूर्ति इस प्रकार कर दी :—

अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणी—
कटाक्षोल्कापातव्रणशतकलङ्काङ्कितनुम्॥

अर्थात्—मैं तो समझता हूं कि तुम्हारे शत्रुओं की विरहिणी स्त्रियों के कटाक्ष रूपी उल्काओं के पड़ने से चन्द्रमा के शरीर में सैकड़ों ज़ख्म हो गए हैं और ये उसी के दाग हैं।

अपने पकड़े जाने की परवाह न करने वाले उस चोर के चमत्कार पूर्ण कथन को सुनकर भोज बहुत खुश हुआ और उसने प्रातःकाल तक के लिये उसे एक कोठरी में बंद करवा दिया। परन्तु दूसरे दिन सुबह होते ही उसे राजसभा में बुलवाकर १० करोड़ अशर्फियाँ और ८ हाथी इनाम में दिए।[1]

---

[1] इस पर धर्माध्यक्ष ने दान की बही में लिखा:—

अमुष्मै चौराय प्रतिनिहतमृत्युप्रतिभये।
प्रभुः प्रीतः प्रादादुपरितनपादद्वयकृते।
सुवर्णानां कोटीर्दश दशनकोटिक्षतगिरी—
न्करीन्द्रानप्यष्टौ मदमुदितगुञ्जन्मधुलिहः॥

एक वार राजा भोज को अपने दान आदि का खयाल आ जाने से कुछ घमंड आ गया।[१] यह देख उसके एक पुराने मंत्री ने राजा विक्रमादित्य के समय की दान-बही निकालकर उसे दिखला दी। इससे उसका वह गर्व दूर हो गया।

भोज की कीर्ति चारों तरफ़ दूर दूर तक फैल गई थी। इसी से एक वार विद्वानों का एक कुटुंब उसकी सभा में आ उपस्थित हुआ।[२] उसे देख भोज ने उनमें के वृद्ध विद्वान् को इस समस्या की पूर्ति करने का आदेश किया :—

असारात्सारमुद्धरेत्

इस पर उसने कहा।

दानं वित्तादृतं वाचः कीर्त्तिधर्मौ तथायुषः।
परोपकरणं कायादसारात्सारमुद्धरेत्॥

---

[१] इसीसे भोज अपने सत्कर्मों की प्रशंसा में बार बार यह कहने लगा था:—

तत्कृतं यन्न केनापि तद्दत्तं यन्न केनचित्।
तत्साधितमसाध्यं यत्तेन चेतो न दूयते॥

[२] उसे देख भोज के एक नौकर ने कहा:—

बापो विद्वान् बाप पुत्रोपि विद्वान्
आई विउषी आइ धुआपि विउषी।
काणी चेटी सापि विउषी वराकी
राजन्मन्ये विज्जपुञ्जं कुटुम्बम्॥

अर्थात्—हे राजा! बाप विद्वान् है और उसका बेटा भी विद्वान् है। मा विदुषी है और उसकी बेटी भी विदुषी है। (यहाँ तक कि साथ की ग़रीब और कानी लौंडी भी पढ़ी-लिखी है। ऐसा मालूम होता है कि ये कुटुम्ब तो विद्या का ढेर ही है।)

अर्थात्—धन से दान, वाणी से सत्य, आयु से कीर्ति और धर्म तथा शरीर से परोपकार इस तरह असार चीजों से सार चीजों को ग्रहण करना चाहिए।

यह सुन राजा ने उसके पुत्र को यह समस्या दी :—

हिमालयो नाम नगाधिराजः
चकार मेना विरहातुराङ्गी।

इस पर उसने इसकी पूर्ति में कहा :—

तवप्रतापज्वलनाज्जगाल
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
चकार मेना विरहातुराङ्गी
प्रवालशय्याशरणं शरीरम्॥

अर्थात्—जब तेरे प्रताप की अग्नि से हिमालय नामक (बर्फीले) पर्वत राज का शरीर गलने लगा तब उसकी, विरह से घबड़ाई हुई स्त्री, मेना ने उसके शरीर को ठंढक पहुँचाने के लिये नये पत्तों की सेज पर रख दिया।

इसके बाद राजा ने वृद्ध पण्डित की स्त्री को यह समस्या दी :—

'कवण पियावउ खीरु'

इस पर उसने कहा :—

जइ यह रावणु जाइयउ दह मुह इक्कु शरीरु।
जणणी वियम्भा चिन्तवइ कवणु पियावउ खीरु॥

अर्थात्—जिस समय रावण का जन्म हुआ, उस समय उसके १० मुखों और १ शरीर को देखकर उसकी माँ घबरा गई और सोचने लगी कि अब इसके किस मुख में दूध पिलाऊँ।

यह सुन राजा ने उसकी पुत्र वधू को यह समस्या दी :—

' मइं कण्ठइ विलुल्लइं काउ '

तब उसने यह श्लोक पढ़ा :—

काणवि विरह करालिइं पइ उड्डुवियउ वराउ ।
सहि अच्चभूउ दिठ्ठुमइं कण्ठिइ विलुल्लइं काउ ॥

अर्थात्—हे सखि ! आश्चर्य है कि कलहान्तरिता नायिका ने अपने विरह व्याकुल-पति को बातों में उड़ा दिया और यह नहीं सोचा कि इसके बाद किसके गले लगूँगी ।

इस प्रकार जब चारों की परीक्षा हो चुकी तब भोज ने उन सब को यथोचित परितोषिक देकर विदा कर दिया । परन्तु उस समय उसे उस पण्डित की कन्या का ध्यान न रहा ।

इसके बाद रात्रि में जिस समय राजा भोज महल के छत पर वायु सेवन कर रहा था और एक आदमी उस पर छत्र धारण किए था उसी समय वह पण्डित की कन्या भी, द्वारपाल के द्वारा अपने आने की सूचना भेजकर, वहाँ आ उपस्थित हुई और राजा की आज्ञा प्राप्त कर बोली :—

राजन्भोज ! कुलप्रदीप ! निखिलक्ष्मापालचूडामणे !
युक्तं संचरणं तवात्र भुवने छत्रेण रात्रावपि ।
मा भूत्त्वद्वदनावलोकनवशाद्व्रीडाविलक्षः शशी
मा भूच्चेयमरुन्धती भगवती दुःशीलताभाजनम् ॥

अर्थात्—ऐ राजा भोज ! आपका रात्रि में भी छत्र धारण कर घूमना उचित ही है । यदि आप ऐसा न करें तो यह चन्द्रमा आपके मुख की शोभा को देख लज्जा से शीघ्र ही अस्त हो जाय और वृद्ध वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती का भी पातिव्रत्य खण्डित हो जाय ।

उसके इन अभिप्राय भरे वचनों को सुन राजा ने वहीं पर उससे विवाह कर लिया ।

मालवे के राजा भोज और गुजरात के राजा भीम ने आपस में लिखा पढ़ी कर कुछ नियम तय कर लिये थे। परन्तु एक वार भोज ने उनमें बाधा डाल कर गुजरातवालों की समझ की परीक्षा लेने का विचार किया और इसी से उसने यह गाथा लिखकर भीम के पास भेज दी :—

हेलानिद्दलियगइंद कुम्भ पयडियपयाव पसरस्स।
सिंहस्समएण समं न विग्गहो नेय सन्धाणं॥

अर्थात्—जिसके द्वारा बड़े बड़े हाथियों के मस्तक चीरे गए हों ऐसे बलवान् सिंह की न तो हिरनों से शत्रुता ही होती है न मित्रता ही।

भोज की इस गर्व भरी उक्ति को पढ़कर भीम ने भी जैन विद्वान् गोविन्दाचार्य से इसका उत्तर इस प्रकार लिखवा दिया।

अन्धयसुयाणकालो पुहवी भीमोय निम्मिओ विहिणा।
जेण सयंपि न गणियं का गणना तुज्झ इक्कस्स॥

अर्थात्—अंधे राजा के पुत्रों (कौरवों) के कालरूप भीम को इस पृथ्वी पर ब्रह्मा ने उत्पन्न किया। उसने जव उन सौ भाइयों को भी नहीं गिना तव उसके लिये तेरे जैसे एक आदमी की क्या गिनती है?

इसे पढ़कर भोज चुप हो रहा।

एक वार भोज की राज सभा में एक दरिद्र-पण्डित आया और उसने राजा से पूछा—

अम्बा तुष्यति न मया न स्नुषया सापि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया वद राजन् कस्य दोषोऽयम्॥

अर्थात्—ऐ राजा! न मेरी माँ मुझसे खुश होती है न मेरी स्त्री से वह (मेरी स्त्री) भी न मुझसे खुश होती है न मेरी माँ से। और मैं

भी न अपनी माँ से खुश होता हूँ न अपनी स्त्री से। कहो इसमें किसका दोष है।

इस पर भोज ने समझ लिया कि इसका मूल कारण गरीबी है। इस लिये उसने उसे इतना धन दे दिया कि आगे से उसके घर में किसी प्रकार का कलह होने की गुँजाइश ही न रही।

एक वार शीतकाल की रात्रि में राजा भोज, वेश बदले हुए, नगर में गश्त लगा रहा था। घूमते घूमते एक मन्दिर के पास पहुँचने पर उसे एक दरिद्री के ये वचन सुनाई दिए :—

शीतेनाध्युषितस्य माघजलवच्चिन्तार्णवे मज्जतः।
शान्ताग्नेः स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकुक्षेर्मम॥
निद्रा काप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता
सत्पात्रप्रतिपादितेव कमला नो हीयते शर्वरी॥

अर्थात्—ठंड सहनेवाले, माघ के (काटने वाले) जल के समान चिन्ता रूपी समुद्र में गोते खानेवाले, सरदी से शान्त हुई अग्नि को फिर से फूँक कर प्रज्वलित करने में फटे हुए (अर्थात् कांपते हुए) होटवाले और भूक से सूखे हुए पेटवाले मेरी नींद तो अपमानित की हुई स्त्री की तरह कहीं भाग गई है और भले आदमी को दिए हुए धन की तरह (यह) रात खतम ही नहीं होती है।

इस पर उस समय तो राजा चुप चाप अपने महल को लौट गया। परन्तु प्रातःकाल होते ही उसने उस ब्राह्मण को बुलवा कर पिछली रात का ठंड सहने का हाल पूछा। इसपर ब्राह्मण बोला :—

रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः सन्ध्ययोर्द्वयोः।
एवं शीतं मयानीतं जानुभानुकृशानुभिः॥

अर्थात—मैंने रात को घुटनों को छाती से सटा कर, दिन को धूप में बैठ कर, और सुबह शाम आग ताप कर— अर्थात् जानु—

घुटने, भानु धूपया सूर्य, और कृशानु—आग की मदद से सरदी को निकाला है।

इस उक्ति को सुन कर राजा ने ब्राह्मण को तीन लाख मुहरें इनाम दीं। इस पर उसने फिर कहा :—

धारयित्वा त्वयात्मानं महात्यागाध्वनाधुना।
मोचिता वलिकर्णाद्याः सच्चेतो गुप्तिवेश्मनः॥

अर्थात्— तू ने इस संसार में आकर सत्पुरुषों के चित्तरूपी कैद खाने में बन्द पड़े राजा बलि और कर्ण आदि को अपने अतुल दान के रस्ते से बाहर कर दिया है।

(इसका तात्पर्य यही है कि लोग जिन गुणों के कारण राजा बलि और कर्ण को याद किया करते थे उन गुणों में तू उनसे भी बढ़ गया है। इसी से लोग उन्हें भूल गए हैं) इस पर भोज ने ब्राह्मण को नमस्कार कर कहा कि हे विप्र ! आप की इस उक्ति का मूल्य देने में मैं सर्वथा ही असमर्थ हूँ।

एक दिन जिस समय राजा भोज हाथी पर बैठ कर नगर में जा रहा था उस समय उसकी दृष्टि पृथ्वी पर से नाज के दाने बीनते हुए एक ग़रीब आदमी पर जा पड़ी। उसे देख राजा ने कहा :—

निय उयर पूरणम्मि य असमत्था किंपि तेहि जाएहिं।

अर्थात्—जो पुरुष अपना ही पेट नहीं पाल सकते उन के पृथ्वी पर जन्म लेने से क्या फ़ायदा है ?

यह सुन उस पुरुष ने जवाब दिया :—

हुसमत्था विहु न परोवयारिणो तेहि वि नहि किंपि।

अर्थात्— जो समर्थ हो कर भी दूसरे का भला नहीं कर सकते उनके पृथ्वी पर जन्म लेने का क्या प्रयोजन है ?

इस पर राजा ने फिर कहा :—

परपत्थणापवत्तं मा जणणि जणेसु एरिसं पुत्तं ।

अर्थात्— हे माता ! तू भीक माँग कर पेट भरने वाले पुरुष को जन्म ही न दे ।

यह सुन वह पुरुष बोला :—

मा पुहवि माधरि जसु पत्थण भङ्गो कओ जेहिं ।

अर्थात्—हे पृथ्वी ! तू याचकों की प्रर्थना पर ध्यान न देने वाले पुरुष को अपने ऊपर धारण ही न कर ।

उस ग़रीब विद्वान् की इन उक्तियों को सुन राजा ने उससे उसका परिचय पूछा । इस पर उस ने कहा—मैं शेखर नाम का कवि हूँ । परन्तु आपकी सभा विद्वानों से भरी है । इसी से अपना वहाँ पहुँचना कठिन जान आपके दर्शन के लिये मैंने यह मार्ग ग्रहण किया है । उसकी बातों को सुन कर राजा भोज ने प्रसन्नता प्रकट की और उसे बहुत सा धन देकर सन्तुष्ट कर दिया ।

ऐसा भी लिखा मिलता है कि भोज ने उस कवि के वचन सुन कर अपनी सवारी का हाथी उसे दे डाला । इस पर उसने कहा :—

निर्वाता न कुटी न चाग्निशकटी नापि द्वितीया पटी
वृत्तिर्नारभटी न तुन्दिलपुटी भूमौ च घृष्टा कटी ।
तुष्टिर्नैकघटी प्रिया न वधुटी तेनाप्यहं संकटी ॥
श्रीमद्भोज ! तव प्रसादकरटी भङ्क्ता ममापत्तटीम् ।

अर्थात्—मेरी झोंपड़ी टूटी हुई है, इससे उसमें हवा की रोक भी नहीं है, मेरे पास तापने के लिये अंगीठी भी नहीं है, मेरे पास एक कपड़े को छोड़ दूसरा कपड़ा भी नहीं है, मैं नाच कूद कर गुजारा भी नहीं

करता हूँ, मेरे पास ओढ़ने बिछाने को भी नहीं है (इसी से) पृथ्वी पर पड़े रहने के कारण मेरी पीठ घिस गई है, मुझे घड़ी भर भी आराम नहीं मिलता, मेरी स्त्री भी मुझे नहीं चाहती, इससे मैं और भी दुखी हूँ। परन्तु हे भोज ! आपकी कृपा से मिला हुआ यह हाथी (अब) मेरे संकटरूपी नदी के तट को (अवश्यही) तोड़ डालेगा।

यह सुन राजा ने उसकी ग़रीबी की हालत को ताड़ लिया और उसे ११ हज़ार[1] अशर्फियाँ इनाम में दीं।

ऐसा भी कहते हैं कि यही राजशेखर एक रात को अपने कुटुम्ब-सहित महाकाल के मन्दिर में सोया हुआ था। इतने में उसका लड़का भूख से व्याकुल होकर रोने लगा। उसकी विकलता को देख कवि ने अपनी स्त्री से कहा :—

पोतानेतान्नय गुणवति ! ग्रीष्मकालावसानं
यावत्तावच्छमय रुदतो येन केनाशनेन।
पश्चादम्भोधररसपरीपाकमासाद्य तुम्बी-
कुष्माण्डी च प्रभवति यदा के वयं भूभुजः के ॥

अर्थात्—हे समझदार भार्या ! तू इन बच्चों को कुछ न कुछ खिलाकर इस गरमी के मौसम को गुज़ार दे। फिर जब बरसात में तुम्बी, पेठा आदि पक जाँयगे तब हम राजाओं से भी अधिक सुखी हो जाँयगे।

संयोग से उस समय भोज भी गुप्तवेश में वहाँ पर मौजूद था। इसी से उसने कवि के उन सन्तोष भरे बचनों को सुन उसे इतना धन

[1] इस श्लोक में ११ जगह अनुप्रास होने के कारण ही भोज का उसे ११ हज़ार मुहरें देना लिखा गया है।

दिया कि वह एक बहुत बड़ा अमीर हो गया। इस पर कवि ने कहा :—

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
पाठीनैः पृथुपङ्कपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहुर्मूर्च्छितम्।
तस्मिञ्छुष्कसरस्यकालजलदेनागत्य तच्चेष्टितं
येनाकुम्भनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते॥

अर्थात्—जिस सूखे हुए तालाब के दलदल में रहने वाले, मेंडक मरे हुए के समान हो गए थे, कछुए पृथ्वी खोदकर उसके अन्दर घुस गए थे, मगर कीचड़ में तड़प तड़प कर बेहोश हो रहे थे, उसी तालाब पर बे मौसम के बादल ने आकर वह काम किया कि जिससे इस समय जंगली हाथियों के झुंड भी उसके सिर तक ऊँचे पानी मे घुस कर जल पान करते हैं। (इसका तात्पर्य यही है कि हे राजा! अब तक मेरा कुटुम्ब भूख से बिलख रहा था, परन्तु तूने अचानक धन देकर मुझे इतना मालामाल कर दिया है कि जिससे अब मैं भी दूसरों को मदद देने के लायक हो गया हूँ।[1])

एक वर्ष गुजरात में घोर अकाल पड़ा। इस से वहाँ की प्रजा अन्न और घास की कमी के कारण दुखी हो गई। इसी समय वहाँ के राजा भीम को सूचना मिली कि मालवे का राजा भोज गुजरात पर चढ़ाई करने का विचार कर रहा है। यह सुन भीम को बड़ी चिन्ता हुई और उसने अपने डामर नाम के सान्धि-विग्रहिक-मंत्री (Minister of Peace and War) को, जो जाति का नागर ब्राह्मण और बड़ा ही बुद्धिमान था, बुलाकर आज्ञा दी कि वह जैसे हो वैसे भोज को इस

[1] संस्कृत साहित्य में ऐसी उक्ति को अन्योक्ति कहते हैं।

कार्य से रोके और यदि आवश्यक हो तो कुछ दे दिला कर भी समझौता कर ले। यह डामर बड़ा ही बद शकल था। इसी से जब वह भोज के पास पहुँचा तब उसे देख भोज ने हँसी में पूछा:--

यौष्माकाधिपसन्धिविग्रहपदे दूताः कियन्तो वद।

अर्थात्—तुम्हारे राजा के यहाँ सांधि-विग्रहिक के काम को करने वाले (तुम्हारे जैसे) कितने दूत हैं?

डामर भी राजा के अभिप्राय को ताड़कर बोला :--

माद्दृशा बहवोपि मालवपते! ते सन्ति तत्र त्रिधा।
प्रेष्यन्तेऽधममध्यमोत्तमगुणप्रेक्षानुरूपंक्रमात्।

अर्थात्—हे मालवनरेश! वहाँ पर मेरे जैसे बहुत से दूत हैं। परन्तु उनकी तीन श्रेणियाँ हैं और उत्तम, मध्यम, और अधम के हिसाब से जैसा अगला पुरुष होता है वैसा ही दूत उसके पास भेजा जाता है।

कवि कहता है कि--

तेनान्तः स्मितमुत्तरं विदधता धाराधिपो रञ्जितः।

अर्थात्—उसके इस प्रकार व्यङ्ग भरे उत्तर को सुन धारा का राजा भोज खुश हो गया।

(इसका तात्पर्य यही है कि यदि भोज डामर को अधम दूत समझता है तो स्वयं भी गुजरातवालों की नज़रों में अधम नरेश सिद्ध होता है।) परन्तु इस वार्तालाप के बाद ही भोज ने गुजरात पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

इसके अनुसार जब सब सेना तैयार हो गई और भोज स्वयं भी सज सजाकर बाहर आगया, तब मालवे के कई चारण सामने आकर उसका उत्साह बढ़ाने लगे। एक ने कहा :—

हे भोज! तेरी चढ़ाई का हाल सुनकर चोल,

अंध, कर्णाट, गुजरात, चेदि और कन्नौज के राजा भी घबरा उठते हैं।[1]

दूसरा बोला कि हे भोज ! तेरे जेलखाने में कोंकण, लाट, कलिङ्ग और कोशल देश के राजा, रात को सोने की जगह पर कब्जा करने के लिये, आपस में लड़ा करते हैं।[2]

इसी प्रकार कुछ चारण (सैनिकों को) चित्रपट दिखलाकर उत्साहित करने लगे। इन चित्रपटों पर अन्य राजाओं की हार के चित्र बने थे। इन्हीं में का एक चित्रपट लेकर भोज ने डामर को दिखलाया। उसका भाव यह था :—

'जेलखाने में एक स्थान पर, सोते हुए राजा तैलप को किसी दूसरे राजा ने वहाँ से हटाना चाहा। इसपर तैलप ने उसे डाँट कर कहा कि तू तो अभी नया ही आया है। परन्तु यह स्थान वंशपराम्परा से हमारे काम में आ रहा है। इसलिये मैं तेरे कहने से इसे नहीं छोड़ सकता।'

उस चित्रपट को देख डामर ने निवेदन किया कि वास्तव में इसका भाव तो बहुत ही अच्छा है, परन्तु इसमें एक भूल रह गई है और वह यह है कि इस चित्रपट के नायक तैलप के हाथ में, उसको

---

[1] चौलः क्रोडं पयोधेर्विशति निवसते रन्ध्रमन्ध्रोगिरीन्द्रे।
कर्णाटः पट्टबन्धं न भजति भजते गूर्जरो निर्झराणि।
चेदिर्लेलीयतेऽस्त्रैः क्षितिपतिसुभटः कान्यकुब्जोऽत्र कुब्जो।
भोज ! त्वत्तन्त्रमात्रप्रसरभयभरव्याकुलो राजलोकः ॥

[2] कोणे कौङ्कणकः कपाटनिकटे लाटः कलिङ्गोऽङ्गणे।
त्वं रे कोशल ! नूतनो मम पिताप्यत्रोषितः स्थण्डिले।
इत्थं यस्य विवर्द्धितो निशिमिथः प्रत्यर्थिनां संस्तर
स्थानन्यासभुवा विरोधकलहः कारानिकेतक्षितौ ॥

पहचान के लिये, सूली पर टँगा राजा मुञ्ज का मस्तक भी अवश्य होना चाहिए था। इस मर्मभेदी वचन को सुन राजा ने गुजरात की चढ़ाई का इरादा छोड़ तैलंगदेश पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी[1]। इसी समय

[1] ऐसा भी लिखा मिलता है कि जिस समय गुजरात पर चढ़ाई करने के लिये राजा भोज नगर के बाहर पड़ाव डाल चुका था उस समय डामर उसके पास पहुँचा उसे देख भोज ने पूछा :—

'कहो भीमडिया नाई क्या करता है ?'

इस पर डामर ने जवाब दिया :—

'उसने औरों के सिर तो मूंड डाले हैं, सिर्फ एक का सिर भिगोकर रक्खा हुआ है, सो उसे भी अब मूंड डालेगा।' यह सुन भोज चुप हो गया और उसने एक चित्रपट लेकर डामर को दिखलाया। इसमें कर्णाटनरेश की खुशामद करते हुए राजा भीम का चित्र बना था। उस चित्रपट को देख डामर ने कहा :—

भोजराज ! मम स्वामी यदि कर्णाटभूपतेः।
कराकृष्टो न पश्यामि कथं मुञ्जशिरः करे॥

अर्थात्—हे राजा भोज ! यदि वास्तव में ही इस चित्रपट में मेरा स्वामी कर्णाट के राजा (तैलप) के द्वारा खींचा जा रहा है तो तैलप के हाथ में राजा मुञ्ज का मस्तक क्यों नहीं दिखाई देता ?

यह सुन भोज को पुराना वैर याद आगया और उसने गुजरात की चढ़ाई का विचार छोड़ कर्णाट पर चढ़ाई करने का विचार कर लिया।

यह भी लिखा मिलता है कि डामर ने भोज से कहा था :—

सत्यं त्वं भोजमार्तण्ड ! पूर्वस्यां दिशि राजसे।
सूरोपि लघुतामेति पश्चिमाशावलम्बने॥

अर्थात्—हे भोजरूपी सूर्य ! तू सचही पूर्व दिशा (मालवे) में शोभा पाता है। पश्चिम में (गुजरात की तरफ़) जाने से तो असली सूरज का प्रताप भी घट जाता है।

डामर के सिखलाए हुए किसी पुरुष ने आकर झूठी खबर दी कि तैलप स्वयं ही एक बड़ी सेना लेकर मालवे पर चढ़ा चला आता है। यह सुन भोज घबरा गया। इतने ही में डामर स्वयं भीम का एक बनावटी पत्र लेकर वहाँ आ पहुँचा। उसमें लिखा था कि हमने मालवे पर चढ़ाई करने के इरादे से मार्ग के भोगपुर नामक नगर में पड़ाव डाला है। उसे पढ़ भोज की रही सही हिम्मत भी जाती रही और वह डामर से भीम की इस चढ़ाई को रुकवाने की प्रार्थना करने लगा। अन्त में उसके बहुत कुछ कहने सुनने पर डामर ने भी यह बात मंजूर कर लेने का भाव प्रकट किया और इसकी एवज़ में भोज के दिये हाथी और हथिनी को लेकर वह गुजरात लौट गया।

राजा भीम भी अपने मंत्री की इस चतुरता को जानकर बहुत प्रसन्न हुआ।

एक समय राजा भोज ने विचार किया कि जिस तरह अर्जुन ने राधावेध किया था उसी तरह हम भी अभ्यास करने से कर सकते हैं। यह सोच उसने उसी दिन से राधावेध का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद जब इस कार्य का पूरा पूरा अभ्यास हो गया तब उसने नगर भर में उत्सव मनाने और दूकानें सजाने की डौंडी पिटवा दी। परन्तु एक तेली और एक दरज़ी ने राजा की इस आज्ञा के मानने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर जब वे पकड़े जाकर उसके सामने लाये गये तब उन्होंने कहा कि महाराज! आपने अभ्यास करके भी ऐसा कौन सा बड़ा हुनर हासिल कर लिया है जो इतनी ख़ुशी मनाई जाने की आज्ञा दी है। यह सुन राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उन्हें अपना हुनर दिखाने की आज्ञा दी।

इसके अनुसार पहले तेली अपना हुनर दिखलाने को एक ऊँचे

मकान पर चढ़ गया और वहाँ से उसने इस सफ़ाई से तेल की धार गिराई कि पृथ्वी पर पड़ा हुआ सँकड़े मुँह का बरतन लबालब भर गया। परन्तु तेल की एक बूँद भी बाहर न गिरी। इसके बाद दरज़ी ने खड़े होकर और हाथ में सूई लेकर इस अन्दाज से उसे छोड़ा कि वह पृथ्वी पर खड़े किये तागे में आप ही आप पिरो गई।

यह देख राजा भोज का उत्साह शिथिल पड़ गया और उसने उस उत्सव को बन्द करवा दिया।

भोज के राधावेध के विषय में कवि कहता है :—

भोजराज मया ज्ञातं राधावेधस्य कारणम्।
धाराया विपरीतं हि सहते न भवानिति॥

अर्थात्—हे राजा भोज! आपके 'राधा' वेध करने का कारण मैंने जान लिया। आप 'धारा'[१] के विपरीत (उलटा) होने से ही उसे सहन नहीं कर सकते हैं।

एक रोज़ राजा भोज शाम के वक़्त नगर में घूम रहा था। इतने में उसकी दृष्टि कुलचन्द्र नामक एक दिगम्बर साधु पर पड़ी, जो कह रहा था :—

'मेरा जन्म व्यर्थ ही गया, क्योंकि न तो मैंने युद्ध में वीरता ही दिखलाई न गार्हस्थ्य सुख ही भोगा।'

---

[१] धारा नाम की वेश्या अपने पति अग्निवेताल के साथ जाकर लङ्कापुरी का नक़्शा ले आई थी। उसी नक़्शे के अनुसार इस नगरी की स्थापना की गई और उसी वेश्या की इच्छानुसार इसका नाम धारा रक्खा गया था।

(प्रबन्ध चिन्तामणि)

यह सुन राजा ने दूसरे दिन प्रातःकाल उसे सभा में बुलवा कर पूछा कि कहो तुम में कितनी शक्ति है? इस पर वह बोला :—

देव ! दीपोत्सवे जाते प्रवृत्ते दन्तिनां मदे ।
एकछत्रं करोम्येव रागोडं दक्षिणापथम् ॥

अर्थात्—हे राजा ! दीपोत्सव हो जाने और हाथियों के मद के बहना प्रारम्भ करने (वर्षा ऋतु के बीतने) पर गौड़ देश से लेकर दक्षिणापथ तक एक छत्र राज्य तैयार कर सकता हूँ।

उसके इस कथन को सुन राजा ने उसे अपना सेनापति बना लिया।

इसके कुछ दिन बाद जिस समय गुजरात का राजा भीम सिंधविजय में लगा हुआ था उस समय कुलचन्द्र ने वहाँ पहुँच अणहिल पाटण को नष्ट भ्रष्ट कर डाला और वहाँ के राज महलों को गिराकर उनके स्थान पर कौड़ियाँ बो दीं।[1] इसके बाद वह शत्रुओं से जयपत्र लिखवाकर मालवे को लौट आया।

एक बार राजा भोज और कुलचन्द्र छत पर बैठे थे और सामने ही आकाश में चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओं से शोभित हो रहा था। राजा ने उसकी तरफ देखकर कहा :—

येषां वल्लभया सह क्षणमिव क्षिप्रं क्षपा क्षीयते ।
तेषां शीतकरः शशी विरहिणामुल्केव सन्तापकृत् ॥

---

[1] उस समय यह मालवे का सिक्का था। परन्तु भोज ने कुलचन्द्र का वहाँ पर कौड़ियाँ बोना पसन्द न किया।

कौड़ियाँ बोना लिखकर लेखक ने क्या तात्पर्य दर्शाया है इसके पूरी तौर से समझने में हम असमर्थ हैं।

अर्थात्—जो पुरुष अपनी प्यारी स्त्री के साथ रहकर रात को एक क्षण की तरह बिता देते हैं उनके लिये यह चन्द्रमा शीतल है। परन्तु विरही पुरुषों को उल्का की तरह ताप देता है।

इस पर कुलचन्द्र ने कहा :—

अस्माकं तु न वल्लभा न विरहस्ते नो भयभ्रंशिना-
मिन्दू राजति दर्पणाकृतिरसौ नोष्णो न वा शीतलः।

अर्थात्—हमारे तो न स्त्री ही है न विरह ही। इस लिये यह दर्पण सा दिखाई देने वाला चन्द्रमा न ठंढा ही मालूम होता है न गरम ही।

इस उक्ति से प्रसन्न होकर राजा ने उसे एक वेश्या इनाम में दी।[1]

गुजरातनरेश भीम का एक राजदूत मालवनरेश भोज की सभा में रहा करता। था उसका नाम डामर (दामोदर) था। वह जब मालवे से लौटकर गुजरात को जाता तब राजा भोज की प्रशंसा कर भीम को और इसी तरह वहाँ से लौट कर मालवे आने पर भीम की तारीफ़ कर भोज को चकित कर देता था। इससे दोनों ही राजा एक दूसरे को देखने के उत्सुक रहते थे। एक बार भीम ने भोज के देखने का बहुत आग्रह किया। इस पर वह उसे ब्राह्मण के वेश में भोज की सभा में ले गया। इसी से भोज उसे न पहचान सका, और डामर को देख सदा की तरह उससे भीम को दिखलाने का आग्रह करने लगा। यह देख डामर ने कहा कि महाराज! राजा स्वाधीन होते हैं। उनपर दबाव डालकर कोई काम नहीं करवाया जा सकता।

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि की किसी किसी प्रति में भोज का अपनी कन्या को ही उसे ब्याह देना लिखा है।

इसलिये इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है। परन्तु जब भोज ने भीम की आकृति आदि के बाबत पूछा तब उसने पास खड़े उस ब्राह्मण की तरफ़ इशारा कर कहा कि—

> एवाकृतिरयं वर्ण इदं रूपमिदं वयः।
> अन्तरं चास्य भूपस्य काचचिन्तामणेरिव॥

अर्थात्—उसकी ऐसे ही आकृति, ऐसा ही रंग और ऐसा ही रूप है। भेद केवल इतना ही है कि वह चिन्तामणि (राजा) है और यह काच (गरीब) है।

उसके इस उत्तर को सुन भोज को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु जैसे ही उसने उस ब्राह्मण की तरफ़ ग़ौर से देखा, वैसे ही उसके अङ्गों में राज-चिह्नों को देख उसके चित्त में सन्देह होने लगा। परन्तु अभी यह सन्देह दृढ़ न होने पाया था कि डामर असली बात को ताड़ गया और उसने झट पट पास खड़े उस ब्राह्मण की तरफ़ इशारा कर कहा कि बाहर जाकर भेंट की सब चीजें जल्दी ले आओ। यह सुन वह भी तत्काल राजसभा से बाहर निकल गायब हो गया। इसी समय डामर ने वहाँ पर उपस्थित की हुई भेंट की वस्तुओं का वर्णन प्रारम्भ कर दिया। इससे कुछ देर के लिये भोज का ध्यान उधर खिंच गया। परन्तु थोड़ी ही देर में जब भोज का ध्यान फिर उस ब्राह्मण की तरफ गया तब उसने डामर से उसके लौटने में विलम्ब होने का कारण पूछा। इस पर डामर ने हँसकर उत्तर दिया कि महाराज! वह तो गुजरातनरेश भीमदेव था। यह सुन भोज ने उसे पकड़ने के लिये सवार आदि भेजना चाहा। परन्तु डामर ने उसे समझा दिया कि भीम के लौटकर निकल जाने का पहले से ही पूरा पूरा प्रबन्ध कर लिया गया था। इसलिए उसका अब आपके हाथ आना कठिन ही नहीं असम्भव है। यह सुन भोज चुप हो रहा।

——

एक बार राजा भोज शिकार को गया। उस समय धनपाल नाम का कवि भी उसके साथ था। वहाँ पर राजा ने उससे पूछा :—

किं कारणं नु धनपाल ! मृगा यदेते
व्योमोत्पतन्ति विलिखन्ति भुवं वराहाः ॥

अर्थात्— ऐ धनपाल ! क्या सबब है कि हिरन तो आस्मान की तरफ़ कूदते हैं और सुअर जमीन खोदते हैं ?

इस पर धनपाल ने उत्तर दिया :—

देव ! त्वदस्त्रचकिताः श्रयितुं स्वजाति-
मेके मृगाङ्कमृगमादिवराहमन्ये ॥

अर्थात्—ऐ राजा ! तेरे अस्त्र से घबरा कर हिरन तो अपने जाति वाले, चन्द्रमा, के हिरन का और सुअर पृथ्वी को उठाने वाले विष्णु के वराह अवतार का सहारा लेना चाहते हैं। इसी से ऐसा करते हैं।

इसके बाद राजा ने एक हिरन पर तीर चलाया और उसके घायल होने पर धनपाल से उस दृश्य का वर्णन करने को कहा। यह सुन वह बोला :—

रसातलं यातु तवात्र पौरुषं
कुनीतिरेषा शरणोह्यदोषवान् ।
निहन्यते यद्बलिनापि दुर्बलो
हहा महाकष्टमराजकं जगत् ॥

अर्थात्—तुम्हारा यह बल नष्ट हो जाय। यह ज़ुल्म है। शरणागत का कोई कसूर नहीं माना जाता। अफ़सोस दुनिया में कोई पूछने वाला नहीं है। इसी से बलवान् दुर्बलों को मारते हैं।

यह सुन भोज को क्रोध चढ़ आया। इस पर धनपाल ने कहा :—

वैरिणापि हि मुच्यन्ते प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहाराः सदैवेते हन्यन्ते पशवः कथम्॥

अर्थात्—मरते हुए शत्रु के भी तिनका मुँह में ले लेने से लोग उसे छोड़ देते हैं। परन्तु ये पशु विचारे तो हमेशा ही तृण (घास) खाते हैं। ऐसी हालत में ये क्यों मारे जाते हैं?

धनपाल को इस नई उक्ति को सुन भोज ने उसी दिन से शिकार करना छोड़ दिया।

इसके बाद जब ये लोग शिकार से लौटे, तब मार्ग में भोज की दृष्टि यज्ञमण्डप के खंभे से बँधे और मिमियाते हुए एक बकरे पर जा पड़ी। उसे देख उसने धनपाल से बकरे के चिल्लाने का कारण पूछा। इस पर उसने कहा कि यह बकरा इस प्रकार कह रहा है :—

नाहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया।
सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं साधो! न युक्तं तव॥
स्वर्गं याति यदि त्वया विनिहिता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो।
यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः॥

अर्थात्—न तो मुझे स्वर्ग के सुख की ही इच्छा है, न मैंने इसके लिये तुझसे प्रार्थना ही की है। मैं तो सदा घास खाकर सन्तोष कर लेता हूँ। इस पर भी ऐ भले आदमी! (तू मुझे मारता है) यह ठीक नहीं है। यदि वास्तव में ही तेरे द्वारा यज्ञ में मारे हुए जीव स्वर्ग को जाते हैं, तो तू अपने मा बाप, लड़के और रिश्तेदारों को मारकर यज्ञ क्यों नहीं कर लेता?

यह सुन राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस पर उसने फिर कहा :—

यूपं कृत्वा पशून्हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरकं केन गम्यते॥

अर्थात्—खम्बा खड़ा करके, पशुओं को मारके और खून का कीचड़ करके ही यदि स्वर्ग में जाया जाता है, तो फिर नरक में किस तरह जाया जाता है ?

वास्तव म देखा जाय तो—

सत्यं यूपं तपो ह्यग्निः कर्माणि समिधो मम ।
अहिंसामाहुतिं दद्यादेवं यज्ञः सतां मतः ॥

अर्थात्—सत्य ही यूप (बलि के पशु को बाँधने का खम्भा) है, तप ही अग्नि है, और अपने कर्म ही लकड़ियाँ हैं। (ऐसा समझ कर) उसम अहिंसा की आहुति देनी चाहिए। यही सत्पुरुषों का माना हुआ यज्ञ है।

इन उक्तियों को सुनकर भोज का मन भी उस तरफ़ से हट गया।

——

एक बार धनपाल ने सरस्वती कण्ठाभरण नामक महल में बैठे हुए भोज को अपनी बनाई प्रशस्ति दिखलाई। उसमें एक श्लोक यह था :—

अभ्युद्धृता वसुमती दलितं रिपूरः ।
क्रोडीकृता बलवता बलिराजलक्ष्मीः ॥
एकत्र जन्मनि कृतं तदनेन यूना ।
जन्मत्रये यदकरोत्पुरुषः पुराणः ॥

अर्थात्—पृथ्वी का उद्धार कर लिया (उसे शत्रुओं से बचा लिया या वराह अवतार धारण कर समुद्र से निकाल लिया), शत्रु की छाती फाड़ डाली (या नृसिंह अवतार धर हिरण्यकशिपु का पेट चीर डाला) बलवानों की राज-लक्ष्मी छीन ली (या राजा बलि का राज्य ले लिया) इस प्रकार जो काम विष्णु ने तीन जन्मों मे किए थे वही काम इस में युवा पुरुष ने एक ही जन्म में कर डाले।

यह सुन भोज बहुत प्रसन्न हुआ और उसने इसकी एवज में उसे सुवर्ण से भरा एक कलसा पारितोषिक में दिया।

कुछ देर बाद जब राजा भोज महल से बाहर आया तब उसकी दृष्टि दरवाजे के पास बनी, कामदेव और उसकी स्त्री रति की मूर्ति पर पड़ी। उस मूर्ति में रति के हाथ पर ताली देते हुए और हँसते हुए कामदेव का चित्र बना था। उसे देख राजा ने धनपाल से कामदेव के ऐसा करने का कारण पूछा। इस पर उसने कहा :—

सएव भुवनत्रयप्रथितसंयमः शङ्करो।
विभर्ति वपुषाधुना विरहकातरः कामिनीम् ॥
अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं।
करेणपरिताडयञ्जयति जातहासः स्मरः ॥

अर्थात्—यही वह महादेव है, जिसका संयम (इन्द्रियों का दमन) तीनों लोकों में प्रसिद्ध था। और इसीने एकबार हमको जीता था। परन्तु अब स्त्री के वियोग से घबरा कर पार्वती को अपने शरीर के साथ ही (अर्धनारीश्वररूपसे) धारण करता है। इस प्रकार हँसता हुआ और रति के हाथ पर ताली देता हुआ कामदेव अपनी जीत दिखला रहा है।

——

एक बार राजा भोज ने, शिवालय के द्वार पर बनी, महादेव के भृङ्गी नामक गण की दुबली पतली मूर्ति को देखकर धनपाल से इसका कारण पूछा। इस पर धनपाल ने कहा[1] :—

---

[1] जैन मतानुयायी हो जाने के कारण ही धनपाल ने हिन्दुओं की गोभक्ति पर भी कटाक्ष किया है:—

अमेध्यमश्नाति विवेकशून्या स्वनन्दनं कामयतेति सक्ता।
खुराग्र भृङ्गैर्विनिहन्ति जन्तून्गौर्वन्द्यते केन गुणेन राजन् ॥

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा तच्चेत्कृतं भस्मना ।
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं पुनर्द्वेष्टिकिम् ॥
इत्यन्योन्यविरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिनो ।
भृङ्गी सान्द्रशिरापिनद्धपरुषं धत्तेस्थिशेषंवपुः ।

अर्थात्—गाय स्वयं बे समझ होने के कारण अपवित्र चीज़ को खा जाती है, अपने पुत्र से गर्भाधान करवा लेती है, और खुरों तथा सींगों से प्राणियों को मारती है। फिर भी हे भोज ! न मालूम उसके किस गुण को देखकर लोग उसे नमस्कार करते हैं !

पयः प्रदानसामार्थ्याद्वन्द्याचेन्माहिषी न किम् ।
विशेषो दृश्यते नास्या महिषीतो मनागपि ॥

अर्थात्—यदि दूध देनेवाली होने से ही गाय पूजनीय है तो फिर भैंस भी क्यों नहीं पूजनीय है ? भैंस से गाय में कुछ विशेषता नज़र नहीं आती।

कहते हैं कि धनपाल के प्रभाव में आकर ही एक बार राजा भोज ने महाभारत की निन्दा करते हुए कहा था :—

कानीनस्य मुनेः स्व बान्धववधू वैधव्यविध्वंसिनो ।
नेतारः किल पञ्च गोलकसुताः कुण्डाः स्वयं पाण्डवाः ।
तेऽमी पञ्चसमानयोनिनिरताः ख्यातास्तदुत्कीर्तनं ।
पुण्यं स्वस्त्ययनं भवेद्यदि नृणां पापस्य कान्यागतिः ॥

अर्थात्—स्वयं कन्या से उत्पन्न हुए और अपने भाई की स्त्रियों के विधवापन को दूर करने वाले वेदव्यास के बनाये महाभारत के नायक वे ही पाँच पाण्डव हैं, जो अपने पिता के मरने के बाद दूसरे पुरुष से उत्पन्न हुए पण्डु के लड़के होने के साथ ही उसके जीते जी उसकी भार्याओं में दूसरे पुरुषों से उत्पन्न हुए हैं। फिर ये पाँचों भी एक ही स्त्री के पति हैं। ऐसी हालत में भी यदि उसके पढ़ने से पुण्य और कल्याण होता है तो पाप का रास्ता कौन सा है ?

अर्थात्—यदि महादेव नंगे रहते हैं (इन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है) तो फिर इन्हें धनुष रखने से क्या प्रयोजन है?[1] यदि इन्हें धनुष ही रखना है तो यह शरीर में भस्म क्यों मलते हैं? यदि भस्म ही मलना है तो स्त्री (पार्वती) को क्यों साथ लिए रहते हैं? और यदि यह भी जरूरी है तो कामदेव से दुश्मनी क्यों करते हैं? इस प्रकार अपने स्वामी के एक दूसरे से विरुद्ध कामों को देख कर कुढ़ने से ही भृङ्गी की नसें निकल आई हैं और बदन में हड्डी ही हड्डी रह गई है।

एकबार धनपाल कवि ने राजसभा में आकर भोज की प्रशंसा में यह श्लोक कहा :—

> धाराधीश धरामहीशगणने कौतूहलीयानयं।
> वेधास्त्वद्गणनां चकार खटिकाखण्डेन रेखां दिवि।
> सैवेयं त्रिदशापगा समभवत्त्वत्तुल्य भूमीधवा-
> भावात्त्यजतिस्म सोयमवनीपीठे तुषाराचलः॥

अर्थात्—ऐ धारेश्वर! राजाओं की गिनती करने की इच्छा से, ब्रह्मा ने (पहले पहल) तेरा नाम लेकर आकाश में खड़िया से एक लकीर खींची। वही आकाशगङ्गा (Milky Way) के नाम से प्रसिद्ध हुई। परन्तु उसके बाद तेरे समान दूसरा राजा न मिलने से उसने वह खड़िया फेंक दी। वही पृथ्वी पर गिरकर हिमालय के नाम से पुकारी जाने लगी है।

इस अतिशयोक्ति को सुनकर सभा में बैठे हुए अन्य पण्डित हँसने लगे। यह देख धनपाल ने कहा :—

> शैलैर्बन्धयतिस्म वानरहृतैर्वाल्मीकिरम्भोनिधिं
> व्यासः पार्थशरैस्तथापि न तयोरत्युक्तिरुद्भाव्यते।

---

[1] धनुष की आवश्यकता तो धनादिक की रक्षा के लिये होती है।

वस्तु प्रस्तुतमेव किंचन वयं ब्रूमस्तथाप्युच्चकै-
र्लोकोयं हसति प्रसारितमुखस्तुभ्यं प्रतिष्ठे नमः ॥

अर्थात्—वाल्मीकी ने बन्दरों के लाये हुए पहाड़ों से और व्यास ने अर्जुन के तीरों से समुद्र में पुल बँधवा दिया। परन्तु उनके कथन में किसी को अतिशयोक्ति नजर नहीं आई। हमने तो जो कुछ कहा है उसका सबूत मौजूद है फिर भी लोग दाँत निकाल कर हँसते हैं। इसलिये ऐ बड़ाई! तुझे नमस्कार है। (यानी वाल्मीकि और व्यास बड़े थे, इसी से उन्हें कोई कुछ नहीं कहता।)

एक बार राजा ने धनपाल से पूछा कि आजकल वह कौन सी पुस्तक तैयार कर रहा है। इस पर उसने कहा :—

आरनालगलदाहशङ्कया मन्मुखादपगता सरस्वती।
तेन वैरिकमलाकचग्रहव्यग्रहस्त न कवित्वमस्तिमे॥

अर्थात—ऐ शत्रुओं की लक्ष्मी को बाल पकड़ कर खींचने वाले नरेश! मेरे (जैनमतानुसार) गरम पानी पीने के कारण गले में रहने वाली सरस्वती जल जाने की अशङ्का से मेरे मुँह से निकल कर चली गई है। इसी से (अब) मुझमें कविता करने की शक्ति नहीं रही है।

एक रोज सीता[1] नाम की एक भटियारिन विजया नाम की अपनी कन्या को लेकर राजा भोज की सभा में आई और बोली :—

---

[1] *यह पहले यात्रियों के लिये भोजन बनाया करती थी। एक बार, सूर्यग्रहण के मौक़े पर एक यात्री वहाँ आया और उसे रोटी बनाने का कह कर सरस्वती के मंत्र का जप करने के लिये तालाब की तरफ़ चला गया। इसके बाद जब वह जप समाप्त कर और उस मंत्र से अभिमंत्रित मालकंगनी का तेल पी वापिस लौटा तब सीता ने उसके सामने भोजन ला रक्खा। परन्तु*

शौर्यं शत्रुकुलक्षयावधि यशो ब्रह्माण्डभाण्डावधि-
स्त्यागस्तर्कुकवाञ्छितावधिरियं क्षोणी समुद्रावधिः ।
श्रद्धा पर्वतपुत्रिकापतिपदद्वन्द्वप्रमाणावधिः
श्रीमद्भोजमहीपतेर्निरवधिः शेषो गुणानां गणः ॥

अर्थात्—हे भोज ! शत्रुकुल का नाश कर डालना ही ताक़त को सीमा (अवधि) है । ब्रह्माण्डरूपी पात्र का भर जाना ही यश की सीमा है। एक तकली तक न रखकर सब संपत्ति का दान करदेना ही दान की सीमा है। समुद्र ही पृथ्वी की सीमा है। पार्वतीपति के चरणों में नमस्कार करना ही श्रद्धा की सीमा है। इस तरह यद्यपि सब ही की एक न एक सीमा है, तथापि तेरे गुणों की कोई सीमा नहीं है।

यह सुन राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने रूपलावण्य-मयी विजया को तरफ़ देखकर उसे अपने स्तनों की सीमा का वर्णन करने की आज्ञा दी। यह सुन उसने कहा :—

उत्साहश्चिबुकावधिर्भुजलतामूलावधिस्सम्भवो
विस्तारो हृदयावधिः कमलिनी सूत्रावधिः संहतिः ।
वर्णः स्वर्णकथावधिः कठिनता वज्राकरक्ष्मावधि-
स्तन्वङ्गयाः स्तनमण्डले यदपरं लावण्यमस्त्वावधिः ॥

खानाखाते ही उस पुरुष को कै हो गया और साथ ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा। यह देख सीता ने सोचा कि यह एक मालदार आदमी है। इसलिये लोग अवश्य यही समझेंगे कि मैंने, लोभ के वश होकर, इसे विष दे दिया है। इस प्रकार का कलङ्क का टीका लगवाने से तो यही अच्छा हो कि इसके मरने के पहिले ही मैं भी अपने प्राण दे दूँ। यह सोच और भोजन को विषैला समझ सीता ने उस पुरुष के कै में निकला हुआ भोजन खा लिया। परन्तु उसमें वही अभिमंत्रित मालकंगनी का तेल लगा हुआ था जो संयोग से सीता के पेट में पच गया। इससे वह विदुषी हो गई।

अर्थात्—इसकी ऊँचाई की सीमा ठुड्डी तक है, उत्पन्न होने की सीमा बाजुओं तक है, विस्तार की सीमा हृदय तक है, आपस की निबिड़ता की सीमा कमल के तन्तु तक है (अर्थात् दोनों के बीच की जगह में कमल का तन्तु आवे इतना स्थान भी मुश्किल से मिलेगा), इसके रंग की सीमा सोने के रंग तक है और इसकी कठोरता की सीमा हीरा पैदा करने वाली पृथ्वी तक है। परन्तु स्त्री के स्तनों पर जो अनोखा लावण्य होता है उसकी सीमा ही नहीं है।

यह सुन भोज को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने यह श्लोकार्ध कहा :—

किं वर्ण्यते कुचद्वन्द्वमस्याः कमलचक्षुषः

अर्थात्—इस कमल की सी आँखवाली स्त्री के दोनों स्तनों की कहाँ तक तारीफ की जाय। इस पर विजया ने उसी श्लोक का उत्तरार्ध बनाकर इस प्रकार उत्तर दिया :—

सप्तद्वीपकरग्राही भवान् यत्र करप्रदः॥

अर्थात्—सातों द्वीपों से कर (खिराज) लेनेवाले आप भी जहाँ पर कर (हाथ और खिराज) देते हैं (या देने को तैयार हैं)।

यह सुन राजा बोला :—

प्रहतमुरजमंद्रध्वानवद्भिः पयोदैः
कथमलिकुलनीलैः सैव दिक्संप्ररुद्धा॥

अर्थात्—बजाए हुए मुरज (मृदंग) की सी गम्भीर ध्वनि वाले और भवँरों के से नीले रंग के बादलों ने वही दिशा क्यों रोकी है?

इस पर विजया ने कहा :—

प्रथम विरहखेदम्लायिनी यत्र बाला
वसति नयनवान्तैरश्रुभिर्धौतवक्त्रा॥

अर्थात्—उस दिशा में पहली बार के विरह से कुम्हलाई हुई

और आँखों से निकले आँसुओं से धुल गया है मुँह जिसका ऐसी स्त्री रहती है।

यद्यपि भोज विजया के रूप और गुणों पर आसक्त हो रहा था तथापि सभा के यथासमय विसर्जन होने में विलम्ब देख उसने फिर यह श्लोकार्ध कहा :—

सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्ददायिने।

अर्थात्—जगत् को आनन्दित करनेवाली उस काम-क्रीड़ा को नमस्कार है।

यह सुन विजया ने उत्तर दिया :—

आनुषङ्गिफलं यस्य भोजराज भवादृशाः॥

अर्थात्—हे भोज! जिसका नतीजा आप जैसों को उत्पत्ति (या प्राप्ति) है।

इस उत्तर को सुन राजाभोज निरुत्तर हो गया और उसने विजया को अपनी रखेल स्त्री बना लिया।[1]

——

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि में विजया की चन्द्र के प्रति यह उक्ति भी दी गई है:—

अलं कलङ्क शृङ्गार! करस्पर्शनलीलया।
चन्द्र! चण्डीश निर्माल्यमसि न स्पर्शमर्हसि॥

अर्थात्—कलङ्क ही है शृङ्गार जिसका ऐसे ओ चन्द्रमा! तू मुझे मत छू। तू महादेव का निर्माल्य है, इसलिये तेरा छूना उचित नहीं है।

शास्त्रानुसार शिव पर चढ़ी चीज़ अग्राह्य समझी जाती है और चन्द्रमा शिव के मस्तक पर रहता है।

एक बार जैनेतरमत के लोगों ने भोज से प्रार्थना की कि या तो श्वेताम्बर जैन भी मयूर कवि के दिखलाए[1] चमत्कार के समान ही कोई सिद्धि दिखलावें या उनको इस देश से निकाल दिया जाय। इस पर भोज ने मानतुङ्गाचार्य को बुलवाकर कहा कि या तो तुम हमें कोई सिद्धि दिखलाओ या इस नगर से भाग जाओ। यह सुन वह विद्वान् युगादिदेव के मन्दिर के पिछवाड़े जाकर खड़ा हो गया और अपने शरीर को ४४ लोहे की शृङ्खलाओं से बँधवा कर 'भक्तामरस्तोत्र' बनाने लगा। जैसे जैसे उसका एक एक श्लोक बनने लगा वैसे वैसे उसके शरीर पर की एक एक शृङ्खला टूट टूट कर नीचे गिरने लगी। अन्त में ४४ श्लोकों के समाप्त हो जानेपर वह बिलकुल निर्बन्धन हो गया और इसके बाद मन्दिर का द्वार भी अपने आप घूमकर उसके सामने आ गया।

एक रोज़ राजा भोज सभा में बैठकर अपने यहाँ के पण्डितों की प्रशंसा कर रहा था। इसी सिलसिले में गुजरात के पण्डितों का भी ज़िक्र आ गया। परन्तु भोज ने कहा कि हमारे यहाँ के से पण्डित वहाँ नहीं हो सकते। यह सुन एक गुजराती बोल उठा कि महाराज, औरों का तो कहना ही क्या हमारे देश के तो बालक और चरवाहे तक विद्वान् होते हैं।

इसके बाद जब वह गुजराती अपने देश को लौटा तब उसने भोज की सभा का सारा हाल वहाँ के राजा भीम को कह सुनाया। यह सुन भीम ने अपने यहाँ की एक चतुर वेश्या को और उसके साथ ही एक विद्वान् को चरवाहे के वेश में मालवा जाकर भोज से मिलने की आज्ञा दी। कुछ दिन बाद जब ये लोग वहाँ पहुँचे तब पहले उस चरवाहे के वेश को धारण करने वाले पण्डित ने राजसभा में जाकर भोज की प्रशंसा करते हुए कहा :—

[1] देखो मयूर का वृत्तान्त।

भोयपच्चु गलि कएठुलउ भण केहउ पडिहाइ।
उर लच्छिहि मुह सरसति सीम निबद्धिकाइ॥

अर्थात्—हे राजा भोज ! कहिए आपका यह कण्ठा कैसा मालूम होता है ? क्या यह अपने हृदय में रहनेवाली लक्ष्मी और मुख में रहने वाली सरस्वती की सीमा बना दी है ?

इतने में वह वेश्या भी साज शृङ्गार कर सभा में आ पहुँची। उसे देख राजा ने पूछा—

इह किम् ?

अर्थात्—यहाँ क्यों ?

यह सुन वेश्या बोली—

पृच्छन्ति।

अर्थात्—पूछते हैं।

यह सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे तीन लाख मुहरें इनाम देने की आज्ञा दी। परन्तु सभा में बैठे हुए अन्य लोग इस वार्तालाप का अर्थ कुछ भी न समझ सके। अन्त में उनके आग्रह करने पर राजा ने उन्हें समझाया की तिरछी चितवन से देखते वक़्त इस वेश्या की नजर (या आँखें) कान तक पहुँचती हैं। यह देख हमने इससे पूछा था कि तेरी नजर (या आँखें) यहाँ तक क्यों जाती हैं ? इस पर इसने कहा कि वे कानों से यह पूछने के लिये जाती हैं कि तुमने जिस भोज की तारीफ़ सुनी है क्या वह यही है ?

इसी किस्से के साथ यह भी लिखा मिलता है कि राजा के दो बार इनाम देने की आज्ञा देने पर भी मतलब न समझ सकने के कारण कोषाध्यक्ष ने उस पर ध्यान नहीं दिया। इससे राजा को फिर तीसरी बार आज्ञा देनी पड़ा। और अन्त में तीन बार तीन तीन लाख

देने की आज्ञा देने के कारण ही भोज ने उस वेश्या को नौ लाख मुहरें दिलवाईं।

राजा भोज बचपन से ही बड़ा ज्ञानी था और वह सोचा करता था कि—

मस्तकस्थायिनं मृत्युं यदि पश्येदयं जनः।
आहारोपि न रोचेत किमुताकार्यकारिता॥

अर्थात्—पुरुष यदि अपने मस्तक पर स्थित मृत्यु को देख ले तो उसे भोजन करना भी अरुचिकर हो जाय, फिर भला वह बुरा काम तो क्योंकर करे?

और इसीसे वह हमेशा ही सत्पात्रों को दान दिया करता था। एक रोज पिछले पहर सभा में आए हुए सत्पात्रों को दान देकर जब वह भोजन करने को चला तब उसने पास में पानदान लिए खड़े सेवक के हाथ से एक पान लेकर मुँह में रख लिया। यह देख नौकर ने उससे ऐसा करने का कारण पूछा। इस पर राजा ने कहा :—

जो दिया और खाया वही अपना है बाकी सब व्यर्थ है।

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम्।
आयुषः खण्डमादाय रविरस्तं प्रयास्यति॥

अर्थात्—पुरुष को नित्य ही देखना चाहिए कि आज मैंने कौन सा पुण्य का कार्य किया है; क्योंकि सूर्य उसकी आयु का एक हिस्सा लेकर ही अस्त होगा।

लोकः पृच्छति मे वार्तां शरीरे कुशलं तव।
कुतः कुशलमस्माकमायुर्याति दिने दिने॥

अर्थात्—लोग मुझसे पूछते हैं कि कहिए कुशल तो है? परन्तु

यह नहीं देखते कि जब नित्य ही आयु क्षीण हो रही है तब कुशल कैसी ?

श्वः कार्यमद्यकुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
मृत्युर्नहि परीक्षेत कृतं वास्य न वाकृतम् ॥

अर्थात्—कल करने का काम हो तो आज करलो और पिछले पहर करने का हो तो पहले पहर में करलो; क्योंकि मृत्यु यह नहीं देखेगी कि तुमने कितना काम कर लिया है और कितना बाक़ी है।

मृतो मृत्युर्जरा जीर्णा विपन्नाः किं विपत्तयः ।
(व्याधयो बाधिताः किं वा हृष्यन्ति यदमीजनाः ॥)

अर्थात—दुनिया क्या समझ के ख़ुश होती है ? क्या मृत्यु का नाश हो गया है ? क्या बुढ़ापा खुद ही बुड्ढा हो गया है ? क्या विपत्ति को काल खा गया है ? क्या रोगों को किसी ने क़ैद कर दिया है जो वे अब उसे नहीं सतावेंगे ?

एक बार राजा भोज ने गुजरातनरेश भीम से चार वस्तुएँ भिजवाने को कहलाया। उनका विवरण इस प्रकार था :—

१—वह वस्तु जो इस लोक में है, परन्तु परलोक में नहीं है।

२—वह वस्तु जो परलोक में है, परन्तु इस लोक में नहीं है।

३—वह वस्तु जो इस लोक में भी है और परलोक में भी है।

४—वह वस्तु जो इस लोक में भी नहीं है और परलोक में भी नहीं है।

जब राजा भीम की सभा के पण्डित इन बातों का उत्तर देने में असमर्थ हो गए, तब वहाँ की एक वेश्या के कहने से भीम ने एक वेश्या, एक तपस्वी, एक दानी और एक जुआरी को भोज के पास भेज दिया। राजा इन्हें देख सन्तुष्ट हो गया। क्योंकि नीचे लिखे अनुसार ये उसके प्रश्नों के ठीक उत्तर थे :—

(१) वेश्या को इस लोक में सब तरह का सुख मिलता है, परन्तु परलोक में नहीं मिलता।

(२) तपस्वी को इस लोक में तो कुछ भी सुख नहीं मिलता, परन्तु परलोक में अवश्य मिलता है।

(३) दानी पुरुष के लिये इस लोक और परलोक दोनों जगह सुख है।

(४) जुआरी को न इस लोक में सुख है न परलोक में सुख है।

एक रात को राजा भोज चुपचाप नगर में गश्त लगा रहा था। इतने में उसने एक गरीब औरत को यह कहते हुए सुना :—

माणुसडा दसदस दसा सुणियइ लोयपसिद्ध।
महकन्तह इक्कज दसा अवरि नवोरहि लिद्ध॥

अर्थात्—मनुष्य की दशा दस दस वर्षों से बदलती रहती है, ऐसी लोकप्रसिद्धि है। परन्तु मेरे स्वामी की तो एक ही (गरीबी की) दशा चल रही है, बदलती ही नहीं। यह सुन राजा को दया आगई और उसने दूसरे हो दिन सुबह उस स्त्री के पति को बुलवाकर दो पके हुये और सुन्दर विजौरे के फल दिये। इनमें के प्रत्येक फल में गुप्त रूप से एक एक लाख रुपयों की कीमत के रत्न रख दिये गये थे। परन्तु वहाँ से लौटते हुये उस पुरुष ने वे फल एक कुंजड़े के हाथ बेच दिये और उससे एक नगरवासी ने खरीदकर राजा को भेट करदिये। उन फलों को देख भोज ने कहा :—

वेला महल्ल कल्लोल पल्लिट्टं जइवि गिरि नई पत्तं।
अण सरइ मग्गलग्गं पुणोवि रयणायरे रयणम्॥

अर्थात—समुद्र का रत्न यदि समुद्रतरंगो के द्वारा किसी तरह

पर्वत की नदी में भी पहुँच जाय तो भी वह उसके बहाव में पड़कर समुद्र में लौट आता है। वास्तव में भाग्य ही बलवान् है।

प्रीणिताशेषविश्वासु वर्षास्वपि पयोलवम्।
नाप्नुयाच्चातको नूनमलभ्यं लभ्यतेकुतः॥

अर्थात्—सारे संसार को तृप्त करनेवाली वर्षा में भी चातक प्यासा रहजाता है। निश्चय ही जो भाग्य में नहीं लिखा है वह नहीं मिल सकता।

एक बार राजा भोज ने एक तोते को यह वाक्य रटा दिया—

'एको न भव्यः'

अर्थात्—एक वस्तु अच्छी नहीं है।

इसके बाद उसे अपने साथ सभा में लाकर उसके मुख से निकले हुये उस वाक्य का अर्थ पंडितों से पूछने लगा। परन्तु जब उन पंडितों में से कोई भी इसका उत्तर न दे सका तब उन्होंने इसके लिये छः मास का अवकाश माँगा। राजा ने भी उनकी यह प्रार्थना खुशी से स्वीकार करली।

इसके बाद एक दिन उनमें के वररुचि नामक मुख्य पण्डित की जो उक्त वाक्य के तात्पर्य का पता लगाने के लिये देश देशान्तरों में घूम रहा था, मुलाकात मार्ग में किसी चरवाहे से हो गई। बात चीत के सिलसिले में जब उस वाक्य का प्रसंग छिड़ा तब उस चरवाहे ने कहा कि आप इसकी चिन्ता न करें। मैं चलकर आपके स्वामी को इसका उत्तर दे सकता हूँ। परन्तु इसमें केवल एक बाधा आती है। और वह यह है कि वृद्धावस्था के कारण मैं अपने साथ के इस कुत्ते को उठाकर ले चलने में असमर्थ हूँ और साथ ही स्नेह के कारण इसे छोड़ना भी नहीं चाहता। यह सुन वररुचि ने उस कुत्ते को अपने कंधे पर चढ़ा

लिया और उस चरवाहे को साथ लेकर राज-सभा में पहुँचा। वहाँ पर जब वररुचि के कहने से भोज ने वही प्रश्न उस चरवाहे से किया। तब उसने कहा कि--हे राजन्! इस संसार में एक लोभ ही ऐसी वस्तु है जो अच्छी नहीं है। देखो, शास्त्रानुसार जिस कुत्ते से छू जाने पर भी ब्राह्मण को स्नान करना पड़ता है, उसी कुत्ते को यह विद्वान् लोभ के वश होने के कारण कंधे पर चढ़ाकर लाया है।

यह सुन राज को सन्तोष हो गया।

एक रात को राजा भोज अपने एक मित्र को साथ लिये नगर में घूम रहा था। इतने में उसे प्यास लग आई। यह देख राजा ने उस मित्र को पास ही की एक वेश्या के घर से पानी ले आने को कहा। इसी के अनुसार जब उसने वहाँ पहुँच पानी माँगा तब उस वेश्या ने गन्ने के रस से भरा एक गिलास लाकर उसे दे दिया। परन्तु उस समय उस वेश्या का चित्त कुछ दुखित सा प्रतीत होता था। इस लिये जब राजा के मित्र ने इसका कारण पूछा तब उसने कहा कि पहले एक गन्ने से एक मटका और एक गिलास रस निकलता था। परन्तु अब उससे यह गिलास भी बड़ी मुश्किल से भरता है। इससे ज्ञात होता है कि राजा के चित्त में अपनी प्रजा के लिये पहले की सी कृपा नहीं है। बस यही मेरे खेद का कारण है।

राजा ने, जो पास ही में खड़ा था यह सुन सोचा कि वास्तव में यह बात यथार्थ है। क्योंकि हाल ही में जिस बनिये ने शिवालय में नाटक करवाना शुरू किया है मेरा इरादा उसके घर को लूट लेने का है। इस विचार के बाद राजा घर लौट आया और उसी दिन से उसने प्रजा का फिर से पहले की तरह ही पालन करने का संकल्प कर लिया।

इसके बाद जब राजा ने वेश्या के घर पहुँच दुबारा गन्ने के रस की परीक्षा की तब वह पहले के समान ही अधिक निकल आया। यह देख वेश्या ने कहा मालूम होता है, अब फिर राजा का चित्त प्रजा की तरफ़ से साफ़ हो गया है। इस वाक्य को सुन राजा को बड़ा सन्तोष हुआ।

राजा भोज का नियम था कि वह नित्य कर्म से निवृत्त होकर धारा नगरी से कुछ दूर पर स्थित परमारों की कुल देवी के दर्शन को जाया करता था। एक रोज़ जिस समय वह दर्शन कर रहा था उस समय देवी ने प्रत्यक्ष होकर उसे शत्रु सैन्य के निकट होने की सूचना दी और वहाँ से लौट कर झटपट नगर में चले जाने को भी कहा। राजा यह सुन उसी समय वहाँ से लौट चला और घोड़े को भगाता हुआ धारा नगरी के द्वार तक पहुँच गया। परन्तु उसके वहाँ पहुँचते २ गुजरातवालों के दो सवार भी जो दूर से उसका पीछा कर रहे थे उसके निकट आ पहुँचे और उन्होंने भोज को नगर में घुसता हुआ देख पीछे से अपने धनुष उसके गले में डाल दिये। इससे भोज घोड़े पर से गिर पड़ा।

कवि कहता है :—

> असौगुणी नमत्येव भोजः कण्ठमुपेयुषा।
> धनुषा गुणिना यश्चापश्यदश्वान्निपातितः॥

इसका तात्पर्य यह है कि—भोज भी गुणी था और धनुष भी गुणी (प्रत्यंचा-डोर वाला) था। एक गुणी दूसरे गुणी को झुका हुआ देखकर खुद भी झुक जाता है। इस लिये डोर चढ़ाने से झुके हुए धनुष को देखकर गुणी भोज भी घोड़े पर से गिरकर झुक गया।

एक बार राजा भोज अपने तेज़ घोड़े पर सवार होकर घूमने गया था। वहाँ से लौटते हुए उसने देखा कि लोगों की हलचल के कारण एक छाछ बेचनेवाली का घड़ा सिर से गिर गया। परन्तु उसने इस बात की तरफ कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यह देख राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उस औरत से इस बे परवाही का कारण पूछा। इस पर वह बोली :—

हत्वानृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं
देशान्तरे विधिवशाद्गणिकास्मि जाता ॥
पुत्रं भुजंगमधिगम्यचितां प्रविष्टा
शोचामि गोप गृहणी कथमद्य तक्रम् ॥

अर्थात्—मैंने भाग्य के फेर में पड़कर पहले राजा को मारा, फिर दूसरे पति को साँप काट लेने पर विदेश में जाकर वेश्यावृत्ति की। इसके बाद वहाँ पर धोखे में अपने पुत्र का संसर्ग हो जाने से चिता प्रवेश किया और उससे (वृष्टि आदि के कारण) बच जाने से अब एक चरवाहे की स्त्री बनकर रहती हूँ। इस लिये भला मैं इस छाछ की क्या चिन्ता करूँ ?

एक दिवस राजा भोज धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। और लक्ष्य के स्थान पर पत्थर की एक बड़ी चट्टान सामने थी। इतने में श्वेताम्बर जैन संप्रदाय के चन्दनाचार्य वहाँ आ पहुँचे और राजा को इस प्रकार शस्त्रविद्या के अभ्यास में लगा देख बोले :—

विद्धा विद्धा शिलेयं भवतु परमतः कार्मुकक्रीडितेन
राजन्पाषाणवेधव्यसनरसिकतां मुञ्चदेव ! प्रसीद ॥
क्रीडेयं चेत्प्रवृद्धा कुलशिखरिकुलं केलिलक्ष्यं करोषि
ध्वस्ताधारा धरित्री नृपतिलक ! तदा याति पातालमूलम् ॥

अर्थात्—हे राजा भोज ! जितनी शिलाएँ अब तक छिन्न भिन्न करदी गई हैं उन्हें छोड़ अब आप इस पाषाणवेध के शौक़ को छोड़ दें और इस निशानेबाज़ी को भी बन्द करें। यदि यह खेल बढ़ता गया और आपने कहीं तमाम कुल-पर्वतों को ही अपना निशाना बना लिया तो उनके नष्ट हो जाने से यह पृथ्वी बे आधार की होकर पाताल में धँस जायगी।

यह सुन भोज ने कहा कि आप के मुख से 'ध्वस्ताधारा' इन शब्दों को सुन मुझे धारा नगरी पर ही आफ़त आने की शङ्का होने लगी है।

———

भोज के समकालीन समझे जानेवाले कुछ प्रसिद्ध कवि

भोज की सभा में अनेक विद्वान् रहते थे। मेरुतुङ्गरचित प्रबन्ध-चिन्तामणि और बल्लालकृत भोजप्रबन्ध में माघ, बाणभट्ट, पुलिन्द, सुबन्धु, मयूर, मदन, सीता, कालिदास, अमर, वासुदेव, दामोदर, राजशेखर, भवभूति, दण्डि, मल्लिनाथ, मानतुङ्ग, धनपाल, भास्करभट्ट, वररुचि, रामदेव, हरिवंश, शङ्कर, कलिङ्ग, कर्पूर, विनायक, विद्या-विनोद, कोकिल, तारेन्द्र आदि अनेक प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध कवियों का भोज की सभा में होना लिखा है। परन्तु इनमें से बहुत से विद्वान् भोज से पहले हो चुके थे। इसलिये यह नामावलि विश्वासयोग्य नहीं है।

आगे इनमें से कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के समय आदि पर विचार किया जाता है।

कवि माघ

बल्लालरचित भोजप्रबन्ध में लिखा है कि एक रोज़ जिस समय राजा भोज सभा में बैठा था, उस समय द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि दुर्भिक्ष से पीड़ित गुजरात का महाकवि माघ शहर के बाहर आकर ठहरा है और गरीबी से तंग होने के कारण उसने अपनी स्त्री को आपके पास भेजा है। यह सुन राजा ने उसे शीघ्र राजसभा

में ले आने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार माघपत्नी ने सभा में पहुँच राजा को एक पत्र दिया। उसमें लिखा था :—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥[१]

अर्थात्—रात में फूलनेवाली कुमुदिनी मुरझा गई है और दिन में फूलने वाले कमल खिल रहे हैं। उल्लू उदास और चकवा ख़ुश है। सूर्य उदय और चन्द्रमा अस्त हो रहा है। इस दुष्ट भाग्य के कामों का नतीजा ही अजब है।

राजा ने इस अजीब प्रभात वर्णन को देखकर माघ की स्त्री को तीन लाख रुपये दिए और कहा कि हे माता! यह तो मैं सिर्फ खाने के खर्च के लिये देता हूँ। सुबह स्वयं तुम्हारे निवासस्थान पर पहुँच माघ पण्डित को नमस्कर करूँगा। इसके बाद जब माघ की स्त्री राजसभा से लौटकर पति के पास चली तब मार्ग में याचकों ने एकत्रित होकर उसके पति की तारीफ़ करनी शुरू की। यह देख उसने राजा के दिए वे सारे के सारे रुपये उनको दे डाले और पति के पास पहुँच सारा हाल कह सुनाया। इसपर माघ ने उसकी बहुत प्रशंसा की और कहा कि यह तूने बड़ा ही अच्छा काम किया। इतने में वहाँ पर भी कई याचक आ पहुँचे। उन्हें देख माघ ने कहा :—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः सन्तोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति॥

अर्थात्—गरीबी की आग तो सन्तोष के जल से बुझ गई।

---

[१] यह शिशुपालवध काव्य के ११वें सर्ग का ६४वाँ श्लोक है।

परंतु इन माँगने को आए हुए याचकों की उम्मीद के टूटने से जो जलन चित्त में पैदा होगई है वह कैसे मिटेगी ?

माघ कवि को खाली हाथ जान जब याचक लौटने लगे तब उसे और भी दुःख हुआ और उसने कहा :—

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतांगते ।
पश्चादपिहि गन्तव्यं क्वसार्थः पुनरीदृशः ॥

अर्थात्—ऐ प्राणों ! याचकों के बिना कुछ पाए लौटने पर अब तुम भी चल दो। जब पीछे भी जाना ही है तब ऐसा साथ कहाँ मिलेगा ?

इतना कहते कहते माघ पण्डित ने प्राण त्याग दिए। इसकी खबर पाते ही राजा भोज स्वयं सौ ब्राह्मणों को लेकर वहां पहुँचा और माघ के शरीर को नर्मदातीर पर लेजाकर उसका दाहकर्म आदि करवाया। माघ की पतिव्रता पत्नी भी पति के साथ सती हो गई।

मेरुतुङ्ग ने अपनी प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है :—

"राजा भोज ने माघ की विद्वत्ता और दानशीलता का हाल सुन एक बार सर्दी के मौसम में उसे श्रीमाल से अपने यहां बुलवाया। उसके वहां पहुँचने पर राजा ने उसके खान पान और आराम का सब तरह से उचित प्रबंध करवा दिया। परंतु माघ ने दूसरे दिन सोकर उठते ही घर लौट जाने की आज्ञा माँगी। यह देख राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उससे खाने पीने और आराम के प्रबंध के विषय में सारा हाल पूछा। इसपर माघ ने कहा कि खाना तो जैसा कुछ भी बुरा भला था परंतु मैं तो रात में सरदी से ठिठर गया हूँ। यह सुन राजा को उसकी बात माननी पड़ी। और वह उसे नगर के बाहर तक पहुँचा आया। घर लौटते हुए माघ ने भी भोज से एक बार अपने यहाँ आने की प्रार्थना की। इसी के अनुसार जब राजा भोज अपने दलबलसहित

उसके वहाँ पहुँचा, तब उसके वैभव और प्रबंध को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ पर सरदी में भी उसे ठंढ प्रतीत नहीं हुई। माघ ने उसका सत्कार करने में कोई कसर न की। कुछ दिन वहाँ रहकर जब भोज लौटा तब इस अतिथिसत्कार की एवज़ में उसने अपने बनते हुए 'भोजस्वामी' के मंदिर का पुण्य माघ को दे दिया।[१]

कहते हैं कि माघ के जन्मसमय ज्योतिषियों ने उसके पिता से कहा था कि यह बालक पहले तो वैभवशाली होगा परंतु अंत में दरिद्री हो जायगा और पैरों पर सूजन आकर मरेगा। यह सुन माघ के पिता ने सोचा कि पुरुष की आयु १०० वर्ष की होती है और उन १०० वर्षों में ३६ हजार दिन होते हैं। इसलिये उसने उतने ही अलग अलग गड्ढे करवा कर उनमें क़ीमती हार आदि रख दिये और जो कुछ बच रहा वह माघ को सौंप दिया। माघ भी दान और भोग से अपने जीवन को सफल करता हुआ अंत में भाग्य की कुटिलता से दरिद्रावस्था को पहुँच गया और जब उसके लिये अपने नगर में रहना असम्भव हो गया तब लाचार होकर वह धार की तरफ़ चल दिया। वहाँ पहुँचने पर उसने अपनी स्त्री को अपना बनाया शिशुपाल-वध नामक महाकाव्य देकर राजा भोज के पास भेजा। भोज भी माघ-पत्नी की यकायक ऐसी दशा देख अचरज में पड़ गया। इसके बाद जब उसने पुस्तक को खोला तो पहले ही उसकी दृष्टि "कुमुदवन..."[२] इस श्लोक पर पड़ी। राजा ने कविता के चमत्कार से और खासकर चतुर्थ पाद में के 'हीं' शब्द के औचित्य से प्रसन्न होकर माघ की स्त्री को एक लाख रुपये दिए।

---

[१] 'स्वयं करिष्यमाणनव्यभोजस्वामिप्रसादप्रदत्तपुण्यो मालवमण्डलं प्रति प्रतस्थे।'

[२] यह श्लोक पहले लिखा जा चुका है।

परंतु जैसे ही माघ की पत्नी लौटकर पति के पास जाने लगी, वैसे ही कुछ याचकों ने उसे पहचान लिया और उसके पास पहुँच दान माँगने लगे। इस पर उसने वह सारा का सारा द्रव्य उन्हें दे डाला और माघ के पास पहुँच सारा हाल उसे कह सुनाया। उसे सुन माघ ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। उस समय माघ का अन्तिम समय निकट आजाने के कारण उसके पैरों पर कुछ कुछ सूजन हो चली थी। इतने में और भी एक याचक वहाँ आ पहुँचा। परन्तु माघ के पास उस समय देने को कुछ भी न था। इसलिये उसने अपने प्राण देकर ही अपनी दानशीलता का निर्वाह किया।

जब भोज को इस घटना की सूचना मिली तब उसको बड़ा दुःख हुआ और उसने माघ की जातिवालों का जो श्रीमाल के नाम से प्रसिद्ध थे और जिन्होंने मालदार होकर भी माघ जैसे विद्वान् की ऐसी दशा में कुछ सहायता नहीं की थी, नाम बदलकर भिन्नमाल कर दिया।"

जैन प्रभाचन्द्र ने अपने 'प्रभावक चरित्र'[1] में माघ का हाल इस प्रकार लिखा है :—

"गुर्जर देश के श्रीमालनगर का राजा वर्मलात बड़ा प्रसिद्ध था। उसके मंत्री सुप्रभदेव के दो पुत्र हुए—दत्त और शुभंकर। दत्त और राजा भोज दोनों बड़े मित्र थे। इसी दत्त का पुत्र कविश्रेष्ठ माघ था, जिसने शिशुपालवध नामक महाकाव्य बनाया। माघ का चचा शुभंकर बड़ा सेठ था। उसका पुत्र 'सिद्ध' हुआ। उसी ने 'उपमितिभवप्रपञ्च' नामक महाकथा लिखी थी।"

परन्तु स्वयं माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य के अन्त में अपने वंश का वर्णन इस प्रकार दिया है :—

---

[1] यह ग्रन्थ वि० सं० १३२२ के क़रीब लिखा गया था।

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥१॥

❀ ❀ ❀

तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ॥३॥

❀ ❀ ❀

तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः।
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥५॥

अर्थात्—वर्मलात राजा का प्रधान मंत्री सुप्रभदेव था। उसका पुत्र दत्तक और दत्त का पुत्र शिशुपालवध का कर्ता माघ हुआ।

वसंतगढ़ (सिरोही राज्य) से चावड़ानरेश वर्मलात के समय का वि० सं० ६८२ (ई० स० ६२५) का एक शिलालेख मिला है।[1] उससे ज्ञात होता है कि उस समय वर्मलात का सामन्त राज्जिल अर्बुद देश का शासक था।

भीनमालनिवासी ब्रह्मगुप्त ने श० सं० ५५० (वि० सं० ६८५ ई० स० ६२८) में 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' नामक ज्योतिष का ग्रन्थ लिखा था। उससे ज्ञात होता है कि जिस समय वह ग्रन्थ लिखा गया था उस समय भीनमाल पर चावड़ावंश के राजा व्याघ्रमुख का राज्य था।

वसन्तगढ़ के लेख के और 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' के लेख के समय के बीच केवल तीन वर्ष का अन्तर है। इससे ज्ञात होता है कि वि० सं० ६८२ (ई० स० ६२५) में भीनमाल का शासक वर्मलात् और वि० सं० ६८५ (ई० स० ६२८) में उसका उत्तराधिकारी व्याघ्रमुख विद्यमान थे।[2]

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ६, पृ० १६१-६२।

[2] लाट देश के सोलंकी पुलकेशी के कलचुरि संवत् ४६० (वि० सं०

इन अवतरणों पर विचार करने से विदित होता है कि माघ विक्रम की आठवीं शताब्दी के मध्यभाग (ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ) के आसपास विद्यमान था। ऐसी हालत में भोज प्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि के लेखकों का माघ को भोज का समकालीन लिखना या प्रभावक चरित्र के कर्ता का उसके पिता दत्तक को भोज का मित्र बतलाना बिलकुल असम्भव है।

इसके अलावा काश्मीर के आनन्दवर्धनाचार्य ने, जिसको कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' में काश्मीर नरेश, अवन्तिवर्मा का समकालीन लिखा है, विक्रम् संवत् की दसवीं शताब्दी के पूर्वभाग (ईसवी सन् की नवीं शताब्दी के उत्तर भाग) में 'ध्वन्यालोक' नामक अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा था। उसके दूसरे उद्योत में उदाहरण के रूप में यह श्लोक[1] उद्धृत किया गया है।

त्रासाकुलः परिपतन्परितो निकेता-
न्पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाभि-
राकर्णपूर्णनयनेषु हतेक्षणश्रीः॥

यही श्लोक 'शिशुपालवध' महाकाव्य के पाँचवे सर्ग में (संख्या

---

७३६ ई० स० ७३९) के दानपत्र से ज्ञात होता है कि अरबों ने उसी समय के आस पास चावड़ा वंश के राज्य को नष्ट किया था।

'फ़ुतूहुल बुलदान' नामक इतिहास में लिखा है कि ख़लीफ़ा हिशाम के समय सिन्ध के शासक जुनैद ने भीनमाल पर भी चढ़ाई की थी।

(इलियट् की हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भा० १, पृ० ४४१-४२)

[1] निर्णयसागर, बम्बई की 'काव्यमाला' में मुद्रित 'ध्वन्यालोक', पृ० ११४।

२६ पर) मिलता[1] है। आगे 'ध्वन्यालोक' के उसी उद्योत में 'श्लेषध्वनि' के उदाहरण में यह श्लोक[2] दिया है :—

रम्या इति प्राप्तवतीः पताकाः कामं विविक्ता इति वर्धयन्तीः ।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः समं वधूभिर्वलभीर्युवानः ॥

यह भी शिशुपालवध के तीसरे सर्ग का ५३वाँ श्लोक है।[3] इससे ज्ञात होता है कि माघ का समय अवश्य ही इससे बहुत पूर्व था।[4]

वल्लभदेव ने अपनी 'सुभाषितावलि' में माघ के नाम से दो श्लोक (१५६१ और ३०७५) और क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' में माघ के नाम से एक श्लोक[5] उद्धृत किया है। ये श्लोक शिशुपालवध में नहीं मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि माघ ने उक्त काव्य के अलावा और भी कोई काव्य लिखा होगा, जो इस समय अप्राप्य हो रहा है।

---

[1] वहाँ पर 'क्वचिदङ्गनाभिराकर्णं' के स्थान में 'क्वचिदङ्गनानामाकर्णं' पाठ दिया है। बस यही दोनों में भेद है।

[2] काव्यमाला में मुद्रित 'ध्वन्यालोक' पृ० ११५।

[3] इसमें 'कामं विविक्ता' के स्थान में 'रागं विविक्ता' पाठ है।

[4] शिशुपालवध के उपोद्घात में पंडित दुर्गाप्रसाद लिखते हैं कि उक्त काव्य के दूसरे सर्ग के ११२वें श्लोक में माघ ने न्यास-ग्रन्थ का उल्लेख किया है, इसलिए वह न्यास के लेखक जिनेन्द्रबुद्धिपादाचार्य के बाद ही हुआ होगा।

[5] बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः ॥

बाणभट्ट

यह वात्स्यायनवंश का ब्राह्मण[1] और वैसवंशी सम्राट् श्रीहर्ष का समकालीन था। इसके (वि० सं० ६७७—ई० स० ६२० के निकट) बनाए हर्षचरित से ज्ञात होता है कि इसका स्वभाव बचपन में चञ्चल और युवावस्था में कुछ उद्धत रहा था। परन्तु आयु की वृद्धि के साथ इसका चरित्र निर्मल हो गया। इसके बाद सम्राट् हर्षदेव के भाई कृष्ण की सहायता से इसका हर्ष की राजसभा में प्रवेश हुआ। हर्षदेव ने इसकी युवावस्था की बुराइयाँ सुन रक्खी थीं। इससे पहले तो उसने इसका विशेष आदर नहीं किया, परन्तु कुछ ही दिन बाद इसने अपने बर्ताव से उसको प्रसन्न कर लिया। इसके बाद वहाँ से घर लौट कर इसने हर्षचरित नामक गद्य काव्य की रचना की। इस काव्य में हर्ष के पूर्वज पुष्यभूति से लेकर हर्ष के दिग्विजय करने को निकलने, और मार्ग में अपनी बहन राज्यश्री को विंध्याचल के जंगल से ढूँढलाकर गङ्गातट पर पड़ी अपनी सेना में वापस आने तक का हाल है।

यद्यपि राज्य पर बैठते समय हर्ष के लिये दो ज़िम्मेदारियाँ मुख्य थीं। एक तो राज्यश्री का पता लगाना और दूसरा गौड़राज शशाङ्क से अपने भाई का बदला लेना। परन्तु हर्ष चरित में दूसरी ज़िम्मेदारी के निर्वाह का कुछ भी हाल नहीं दिया है। हाँ, हर्ष के गुप्त संवत् ३००

---

[1] कुछ लोग इसका निवासस्थान सोन के किनारे (शाहाबाद ज़िले में) मानते हैं। परमेश्वरप्रसाद शर्मा ने गया ज़िले में रफ़ीगंज से १४ मील उत्तर-पश्चिम में च्यवन ऋषि का आश्रम होना बतलाया है। यह आजकल देवकुर (देवकुण्ड) के नाम से प्रसिद्ध है। इसी के पास के 'सोनभद्र' गाँव को, जो वहाँ के वत्सगोत्रीय ब्राह्मणों का आदि निवासस्थान समझा जाता है, उक्त महाशय बाण का जन्मस्थान बतलाते हैं।

माधुरी (आषाढ़ १९८७) पूर्ण संख्या ६६, पृ० ७२४।

(वि० सं० ६७६—ई० स० ६१९) के ताम्रपत्र[1] से पता चलता है कि गौड़ाधिप स्वयं तो किसी तरह बच गया था, परन्तु उसके राज्य पर हर्ष का अधिकार हो गया था।

इन बातों पर विचार करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि बाणभट्ट भोज का समकालीन न होकर (विक्रम की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध) (ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ के निकट में) सम्राट् हर्ष-वर्धन का समकालीन था।

इसने हर्षचरित के अलावा 'कादम्बरी' नामक गद्य काव्य और 'चण्डीशतक' भी लिखा था।[2]

पुलिन्द भट्ट[3]

यह बाणभट्ट का पुत्र था और पिता की मृत्यु के बाद कादम्बरी का उत्तरार्ध इसी ने पूर्ण किया था।

उसके प्रारम्भ में लिखा है :—

> यातेदिवं पितरि तद्वचसैवसार्धं
> विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
> दुःखं सतां तदसमाप्ति कृतं विलोक्य
> प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात्॥

अर्थात्—पिता के मरने पर जो कथा अधूरी रह गई थी, वह विद्वानों के चित्त को दुखित करती थी। यह देखकर ही मैं उसे समाप्त करता हूँ। यह प्रयास मैंने अपनी रचनाशक्ति के घमण्ड से नहीं किया है।

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ६, पृ० १४४।

[2] इसी ने 'पार्वतीपरिणय' नाटक, 'मुकुटताडितक,' और 'पद्य कादम्बरी' भी लिखी थी।

[3] तिलकमञ्जरी (श्लोक २६) में इसका नाम 'पुलिन्ध्र' लिखा है।

सुबन्धु

इसने 'वासवदत्ता' नामक संस्कृत का गद्यकाव्य लिखा था। इस कवि का समय वि० सं० ६३७ (ई० स० ५८०) के करीब और बाणभट्ट से पहले था। यह पिछली बात हर्षचरित के प्रारम्भ में बाण के लिखे इस श्लोक से प्रकट होती है :—

> कवीनामगलद्दर्पो नूनं 'वासवदत्तया'।
> शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥ ११ ॥

अर्थात्—जिस प्रकार इन्द्र की दी हुई शक्ति (अस्त्र विशेष) के कर्ण के पास पहुँच जाने से पाण्डवों का गर्व गल गया था, उसी प्रकार 'वासवदत्ता' नामक गद्यकाव्य के लोगों के कानों तक पहुँच जाने से कवियों का गर्व गल गया।[1]

मयूर

मानतुङ्गाचार्य्य[2] रचित 'भक्तामर' की टीका[3] के प्रारम्भ में और मेरुतुङ्ग रचित 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में लिखा है कि यह कवि भोज का समकालीन था।

---

[1] इस श्लोक में 'वासवदत्तया' में कवि ने श्लेष रक्खा है। इसीसे इसके दो अर्थ होते हैं। एक तो इन्द्र की दी हुई शक्ति, और दूसरा वासवदत्ता नामक गद्य काव्य।

इसी प्रकार 'कर्णगोचरं' के भी दो अर्थ होते हैं। एक तो कर्ण नामक पाण्डवों के छठे भ्राता के हाथ पड़ना और दूसरा (लोगों के) कानों में पड़ना।

[2] यह आचार्य वि० सं० ६५७ (ई० सं० ६००) में विद्यमान था।

[3] यह टीका वि० सं० १४२७ (ई० स० १३७०) में गुणाकर सूरि ने लिखी थी।

'प्रबन्ध चिन्तामणि' में मयूर को बाण का बहनोई[1] लिखा है।

'शार्ङ्गधर पद्धति' में राजशेखर का[2] एक श्लोक उद्धृत किया गया है। उसमें लिखा है :—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समोबाणमयूरयोः॥

इससे भी प्रकट होता है कि बाण और मयूर दोनों श्रीहर्ष की सभा के सभ्य थे।

इसके बनाए 'सूर्यशतक' के पद्य 'ध्वन्यालोक' में उद्धृत किए गए हैं।[3]

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि, यह कवि भोज के समय में न होकर विक्रम की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध (ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ) के निकट था।

सुभाषितावलि आदि में इसके नाम से कुछ ऐसे श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं, जो 'मयूरशतक' में नहीं मिलते।

कहते हैं कि एक बार बाणभट्ट और उसकी स्त्री के बीच रात्रि

---

[1] जैन ग्रन्थों में कहीं कहीं शायद मयूर को बाण का श्वसुर भी लिखा है।

[2] यह वि० सं० ६६० (ई० स० ६०३) के करीब विद्यमान था।

[3] दत्तानन्दाः प्रजानां समुचितसमयक्लिष्टसृष्टैः पयोभिः।
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि संहारभाजः॥
दीप्तांशोर्दीर्घदुःखप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो।
गावो वः पावनानां परमपरिमितां प्रीतिमुत्पादयन्तु॥

(सूर्यशतक, श्लो० ९ और ध्वन्यालोक, पृ० ९९-१००)

में प्रणय-कलह हो गया[१]। उस समय ये दोनों पति-पत्नी कमरे में सोए हुए थे, और संयोग से मयूर कवि भी उसी कमरे के बाहर सोया था। बाण ने अपनी स्त्री को मनाने की बहुत कुछ कोशिश की। परन्तु जब वह किसी तरह भी ख़ुश न हुई तब उसने उससे कहा—

गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी सीदत इव
प्रदीपोयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो

---

[१] मम्मट ने काव्य प्रकाश में लिखा है—आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थ-निवारणं' इस पर टीका करते हुए नरसिंह ठाकुर की 'नरसिंह मनीषा' नाम की टीका में मयूर का 'सूर्यशतक' बनाकर कुष्ठ रोग से निवृत्ति पाना लिखा है।

"सूर्यशतक"[१] पर लिखी भट्ट यज्ञेश्वर की टीका में मयूर को बाण का साला लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि "एक वार मयूर ने कुछ सुन्दर कविता बनाई और उसे सुनाने के लिये वह अपने मित्र और बहनोई बाण के घर पहुँचा। उस समय बाण के और उसकी स्त्री के बीच प्रणय-कलह हो रहा था। बाण के मुख से निकले उपर्युक्त 'गत प्राया रात्रिः...' आदि श्लोक के तीन पादों को सुनकर बाहर से ही मयूर ने उसका चौथा पाद बनाकर ज़ोर से पढ़ा। इसे सुन और अपने सम्बन्धी और प्रिय-मित्र मयूर को आया जान बाण झटपट बाहर निकल आया। इस प्रकार प्रेमालाप में उपस्थित हुए विघ्न को देख बाण की स्त्री ने अपने भाई मयूर को शाप दे दिया। इससे उसको कुष्ठ रोग हो गया। अन्त में सूर्यशतक बनाकर मयूर ने उस रोग से मुक्ति पाई। यह बात मेरुतुङ्ग रचित प्रबन्धचिन्तामणि, आदि ग्रन्थों में लिखी मिलती है।"

परन्तु इस समय उपलब्ध होनेवाली 'प्रबन्धचिन्तामणि' में मयूर की स्त्री के शाप से बाण का कुष्ठ रोगी होना लिखा है।

अर्थात्—हे दुबले शरीर वाली ! रात करीब करीब बीत चली है। चन्द्रमा फीका पड़ रहा है। यह दीपक भी रातभर जगने से निद्रा के वश होकर ऊँघने (बुझने) लगा है। मान तो पति के पैरों पड़ जाने तक ही रहता है, परन्तु तू अब भी राजी नहीं होती।

बाण ने अभी उपर्युक्त श्लोक के तीन पाद ही कहे थे कि, बाहर से मयूर, जो जगकर अपनी बहन का बाण के साथ का सारा वार्तालाप सुन रहा था, झट से बोल उठा—

कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्

अर्थात्—हे गुस्सैल स्त्री ! स्तनों के नजदीक होने से तेरा हृदय भी उन्हीं के समान कठोर हो गया है।

इसपर बाण की भार्या ने जो बड़ी पतिव्रता थी मयूर को शाप दे दिया। इससे उसको कुष्ठ रोग हो गया। अन्त में मयूर ने 'सूर्यशतक' बनाकर उस रोग से पीछा छुड़ाया।[1] परन्तु 'मयूर शतक' के अन्त में स्वयं मयूर ने लिखा है—

श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिताः श्री मयूरेण भक्त्या
युक्तश्चैतान्पठेद्यः सकृदपि पुरुषः सर्वपापैर्विमुक्तः।
आरोग्यं सत्कवित्वं मतिमतुलबलं कान्तिमायुः प्रकर्षं
विद्यामैश्वर्यमर्थं सुतमपि लभते सोत्र सूर्यप्रसादात्॥ १०१॥

---

[1] परमेश्वरप्रसादशर्मा के लेखानुसार मयूर की तपोभूमि का, गया ज़िले के पामरगंज स्टेशन से १४ मील दक्षिण-पश्चिम (और च्यवनाश्रम से २० कोस दक्षिण-पश्चिम) में स्थित, देव नाम के स्थान पर होना पाया जाता है। वहाँ पर एक सूर्य का मन्दिर है और आस पास मरियार ब्राह्मण रहते हैं। तथा अनेक कुष्ठ रोगी भी अपनी रोग-निवृत्ति के लिये यात्रा में आते हैं।

माधुरी (आषाढ़ १९८७, पूर्ण संख्या ९६, पृ० ७२४)

अर्थात्—मयूर ने ये १०० श्लोक लोगों के कल्याण के लिये ही बनाए हैं। इनको, एक बार भी भक्ति से पढ़ने वाले के, सूर्य के प्रभाव से, सब पाप, रोग, आदि नष्ट हो जाते हैं, और वह सब प्रकार की कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

इससे उपर्युक्त कथा की पुष्टि नहीं होती।

बाण ने भी हर्षचरित में अपने हमजोलियों में मयूर का नाम लिखा है।[1] नहीं कह सकते कि वहाँ पर इसी मयूर से तात्पर्य है, या किसी अन्य से ?

प्रबन्ध चिन्तामणि के गुजराती अनुवाद में यह कथा इस प्रकार लिखी है :—

बाण कवि मयूर का साला था। एक बार वह अपनी बहन से मिलने गया। परन्तु रात अधिक हो जाने के कारण मयूर के मकान का दरवाज़ा बंद था, इसलिये वह मकान के बाहर ही सो गया। इसके बाद मयूर और उसकी स्त्री के बीच प्रणय कलहवाली घटना हुई, और बाहर से ही श्लोक का चतुर्थ पाद कहने के कारण मयूर की स्त्री ने बाण को शाप दे दिया। इससे उसके शरीर में कुष्ठ हो गया। अपनी यह दशा देख बाण जंगल में चला गया और वहाँ पर उसने एक कुँड में अग्नि भरकर उसके बीच में एक खंभा खड़ा किया। उस खंभे पर ऊपर नीचे ६ छींके लगे हुए थे। इस प्रकार सब प्रबन्ध ठीक हो जाने पर वह ऊपर के छींके में खड़ा हो गया और सूर्य की स्तुति करने लगा। जब उसका पहला श्लोक बन गया तब उसने उस छींके की रस्सियाँ काट दीं। इससे वह वहाँ से दूसरे छींके पर गिर गया। इसी प्रकार उसने ५ श्लोक बनाकर पाँच छींकों की रस्सियाँ काट दीं

---

[1] 'जाङ्गुलिको मयूरकः'।

और जैसे ही वह छटा श्लोक बनाने लगा वैसे ही सूर्य ने प्रत्यक्ष होकर उसको दर्शन दिए। इससे उसका रोग दूर हो गया।

इसके बाद जब वह भोज की सभा में पहुँचा तब भोज ने आश्चर्य में आ मयूर की तरफ़ देखा। इसपर उसने कहा कि यह सब सूर्य का प्रताप है। यह बात बाण को बुरी लगी। इससे उसने कहा कि यदि देवाराधन आसानी से होता हो तो तुम भी क्यों नहीं कर लेते। यह सुन मयूर बोला कि भला जो बीमार ही नहीं हो उसको वैद्य से क्या प्रयोजन है। फिर भी तुम कहते हो तो मैं अपने हाथ पैर कटवाकर देवी की आराधना करूँगा और तुमने जो सिद्धि ६ श्लोक बनाकर प्राप्त की है वही मैं श्लोक के ६ अक्षर कहकर हासिल करूँगा। इसके बाद मयूर ने ऐसा ही किया और उसके मुख से 'माभाङ्क्षीर्विभ्रम' इस प्रकार ६ अक्षरों के निकलते ही देवी ने प्रत्यक्ष होकर उसके सब अङ्ग अविकल कर दिए।

मदन

बाल सरस्वती मदन[1] परमार नरेश भोज के वंशज अर्जुनवर्मा का गुरु था। इसने 'पारिजात मञ्जरी' (या विजयश्री) नाम की नाटिका बनाई थी। यह नाटिका पहले पहल धार में भोज की बनाई पाठशाला में खेली गई थी। इसके पहले दो अङ्क उसी पाठशाला से, जो आजकल कमाल मौला की मसजिद कहाती है, एक शिला पर खुदे मिले हैं।[2] इनमें गद्यभाग के साथ ही साथ ७६ श्लोक भी हैं। इसकी भाषा में नाट्यशास्त्र के मतानुसार संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इस नाटिका में अर्जुनवर्मा द्वारा, गुजरात नरेश

---

[1] यह गौड़ देश के रहनेवाले गंगाधर का वंशज और आशाधर का शिष्य था।

[2] ये उस शिला पर ८२ पंक्तियों में खुदे हैं।

जयसिंह का रणस्थल से भगाया जाना दिखलाया है। यह युद्ध पावागढ़ के पास हुआ था।

भोज प्रबन्ध में भोज के समकालीन जिस मदन का उल्लेख किया गया है, वह यदि यही मदन हो तो मानना होगा कि यह उस समय न होकर अर्जुनवर्मा के समय[1] वि० सं० १२६७ (ई० स० १२१०) में विद्यमान था।

सीता

भोज के पिता सिन्धुराज (सिन्धुल) के सभा-कवि पद्मगुप्त (परिमल) ने अपने बनाए 'नवसाहसाङ्कचरित[2]' नामक काव्य में मालवे के, परमार वंश के, पहले राजा कृष्णराज (उपेन्द्र) के वर्णन में लिखा है :—

सदागतिप्रवृत्तेन सीतोच्छ्वसितहेतुना।
हनूमतेव यशसा यस्याऽलङ्घ्यत सागरः ॥७७॥

(सर्ग ११)

अर्थात्--वायु के समान तीव्र गतिवाले हनूमान् की तरह, सीता को प्रसन्न करनेवाले, जिसके यश ने समुद्र पार कर लिया।

इससे यही समझना होगा कि जिस प्रकार हनूमान् सीता को प्रसन्न करने वाला था, उसी प्रकार कृष्णराज (उपेन्द्र) का यश सीता पण्डिता को प्रसन्न करने वाला था। अर्थात्—सीता ने उक्त नरेश की प्रशंसा में कुछ लिखा था।

ऐसी हालत में सीता पण्डिता का भोज के समय विद्यमान होना सम्भव नहीं हो सकता। उसका समय विक्रम की नवीं शताब्दी के

---

[1] अर्जुन वर्मा के, वि० सं० १२६७ से १२७२ (ई० स० १२१० से १२१५) तक के तीन दानपत्र मिले हैं।

[2] यह काव्य वि० सं० १०६० (ई० स० १००३) के करीब लिखा गया था।

उत्तरार्ध से दसवीं शताब्दी के प्रथम पाद के बीच (ईसवी सन् की नवीं शताब्दी के प्रारम्भ से उसके चतुर्थ पाद के बीच) किसी समय होगा।

कालिदास

कथाओं में प्रसिद्ध है कि—

धन्वन्तरिः क्षपणकामरसिंह शंकु
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः[1]।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेस्सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

---

[1] योगिराट् की बनाई 'पार्श्वाभ्युदय' की टीका के अन्त में लिखा है कि, कालिदास ने 'मेघदूत' नामक काव्य बनाकर, दूसरे कवियों का अपमान करने की इच्छा से, उसे दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम की सभा में सुनाया। परन्तु उसकी यह बात विनयसेन को अच्छी न लगी। इसलिये उसके कहने से जिन सेनाचार्य ने कालिदास का परिहास करते हुए कहा कि "इस काव्य में प्राचीन-काव्य से चोरी करने के कारण सुन्दरता आ गई है। यह सुन कालिदास ने उस काव्य को दिखलाने के लिये कहा। इस पर जिनसेन ने उत्तर दिया कि वह काव्य किसी दूसरे नगर में है। इसलिये उसके मँगवाने में ८ दिन लगेंगे। इन्हीं ८ दिनों में जिनसेन ने 'मेघदूत' के श्लोकों से एक—एक दो दो पदों को लेकर 'पार्श्वाभ्युदय' नाम का एक नया काव्य बना डाला और नियत समय पर उसे सभा में लाकर सुना दिया। आगे 'पार्श्वाभ्युदय' से एक नमूना दिया जाता है :—

श्रीमन्मूर्त्या मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या
योगैकाग्रस्तिमिततरया तस्थिवांसं निदध्यौ।
पार्श्वं दैत्यो नभसि विहरन् बद्धवैरेण दग्धः
कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः॥

अर्थात्—विक्रमादित्य की सभा में १ धन्वन्तरि, २ क्षपणक, ३ अमरसिंह[1], ४ शंकु, ५ वेतालभट्ट, ६ घटखर्पर, ७ कालिदास,

---

इससे ज्ञात होता है कि, कालिदास वि० सं० ८७२ से ९३४ (ई० स० ८१४ से ८७७) के बीच किसी समय था। परन्तु यह बात माननीय नहीं हो सकती; क्योंकि एक तो इस घटना का लेखक स्वयं योगिराट् विजयनगर नरेश हरिहर के समय, वि० सं० १४५६ (ई० स० १३९९) के क़रीब, अर्थात् जिनसेन से करीब ५०० वर्ष बाद हुआ था। इसलिये उसका लिखा प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। दूसरा विक्रम की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध (ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ के निकट) में होनेवाले बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में लिखा है—

निर्गतासु नवा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥ १७॥

ऐसी हालत में कालिदास का अपने बनाये मेघदूत नामक काव्य को लेकर राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम (वि० सं० ८७२ से ९३४=ई० स० ८१४ से ८७७) की सभा में जाना सिद्ध नहीं होता।

[1] अमरसिंहरचित 'नामलिङ्गानुशासन' (अमरकोष) में का—

'दैवतानि पुंसि वा'

(प्रथमकाण्ड, स्वर्ग वर्ग, श्लोक ९)

यह वाक्य मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश के सप्तम उल्लास में 'अप्रयुक्त' के उदाहरण में उद्धृत किया है। यह काव्य प्रकाश नामक अलङ्कार का ग्रन्थ विक्रम की १२वीं शताब्दी के पूर्वार्ध की समाप्ति (ईसवी सन् की ११वीं शताब्दी के अन्तिम भाग) के निकट लिखा गया था।

इससे सिद्ध होता है कि अमरसिंह ने अपना कोश इस समय के पूर्व ही बनाया होगा। विद्वान् लोग इसका ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी में बनाया जाना मानते हैं।

८ वराहमिहिर[1] और ९ वररुचि[2] ये नौ रत्न थे।

परन्तु इतिहास से ज्ञात होता है कि ये सब विद्वान् समकालीन न थे।

कवि-कुल-गुरु प्रसिद्ध कालीदास के समय के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। पहले मत के अनुयायी कालिदास को विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य का और दूसरे मतवाले गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) और उसके पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का समकालीन मानते हैं।

पहले मत के समर्थकों में सर विलियम जोन्स और डाक्टर पैटरसन आदि विद्वान् हैं। पण्डित नन्दर्गीकर ने भी अश्वघोष[3] के बनाए 'बुद्ध चरित' और कालिदास रचित काव्यों के एक से 'श्लोक-पादों' का मिलान कर उपर्युक्त विद्वानों के मत की पुष्टि की है। इस मत के पोषक विद्वानों की युक्तियाँ आगे दी जायँगी।

---

[1] वराहमिहिर वि० सं० ५६२ (श० सं० ४२७=ई० स० ५०५) में विद्यमान था। यह बात उसकी बनाई 'पञ्च सिद्धान्तिका' नामक पुस्तक से सिद्ध होती है। यह पुस्तक श० सं० ४२७ में लिखी गई थी।

[2] वररुचि का नाम कथा सरित्सागर में मिलता है। इसका दूसरा नाम कात्यायन था।

गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में 'बृहत्कथा' लिखी थी। उसमें एक लाख श्लोक थे। सोमदेवभट्ट ने, काश्मीर के राजा अनन्तराज के समय (वि० सं० १०८५–११३७=ई० स० १०२८–१०८०) उक्त नरेश की विदुषी रानी सूर्यवती के कहने से, उसका सार संस्कृत के २५ हज़ार श्लोकों में ग्रथित कर उसका नाम 'कथा सरित्सागर' रक्खा था।

[3] अश्वघोष का समय ईसवी सन् की पहली शताब्दी माना जाता है।

दूसरे मत के पोषक ली विच, वी० ए० स्मिथ आदि विद्वान् हैं। इस मत के माननेवालों की युक्तियाँ इस प्रकार है :—

रघुवंश में नीचे लिखे श्लोक और श्लोक पाद मिलते हैं :—

"तस्मै सभ्याः सभार्य्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः"। १।५५।

"अन्वास्य गोप्ता गृहिणी सहायः"। २। २४।

"इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः" ॥ ४। २०।

"स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णि रयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया" ॥ ४। २६।

"ब्राह्मे मुहूर्त्ते किल तस्य देवी
कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्" ॥ ५। ३६।

"मयूर पृष्ठाश्रयिणा गुहेन"। ६। ४।

इनसे प्रकट होता है कि, जिस प्रकार 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक में—

"क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥"

इस श्लोक से विशाखदत्त ने, व्यञ्जनावृत्ति से, चन्द्रगुप्त का उल्लेख किया है, उसी प्रकार रघुवंश के उपर्युक्त श्लोकों में भी 'गुप्त' और 'कुमार' शब्दों से कालिदास ने चन्द्रगुप्त और कुमारगुप्त का उल्लेख किया है। इसलिये यह उनका समकालीन था।[1]

कालिदासरचित 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक में 'शुङ्ग-वंशी' अग्निमित्र का वर्णन है। यह शुङ्गवंश के संस्थापक पुष्यमित्र का पुत्र था और वि० सं० से ९२ (ई० स० से १४९) वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा।

---

[1] कुछ विद्वान् इसका स्कन्दगुप्त के समय तक रहना भी मानते हैं।

चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी द्वितीय (सत्याश्रय) के समय के, श० सं० ५५६ (वि० सं० ६९१=ई० स० ६३४) के एहोले से मिले लेख[१] में उसके लेखक रविकीर्ति की तुलना कालिदास और भारवि से की[२] गई है।

इन बातों पर विचार करने से स्पष्ट प्रकट होता है कि कालिदास विक्रम संवत् से ९२ वर्ष पूर्व से वि० सं० ६९१ (ई० स० से १४९ वर्ष पूर्व से ई० स० ६३४) के बीच किसी समय हुआ था।

कालिदास ने, रघुवंश में वर्णित, इन्दुमती के स्वयंवर में सब से पहले उसे मगधनरेश के सामने लेजाकर खड़ा किया[३] है और वहीं पर मगधनरेश को सर्वश्रेष्ठ नरेश लिखा[४] है। रघु की दिग्विजय-यात्रा में उसका सिन्धु-तीरस्थ हूणों को हराना लिखा[५] है। परन्तु हूणों

---

[१] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ६, पृ० ४-७।

[२] 'स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविः कीर्तिः'।

(एपिग्राफिया इण्डिका, भा० ६, पृष्ठ ७, श्लोक ३७)

[३] प्राक्सन्निकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा ॥'

(रघुवंश, सर्ग ६, श्लो० २०)

[४] 'राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।' ।

(रघुवंश, सर्ग ६, श्लोक २२)

'सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात्ततोन्यत्र राजवान्'

(अमरकोष, द्वितीयकाण्ड, भूमिवर्ग, श्लोक १३)

[५] 'सिन्धुतीरविचेष्टनैः।

(रघुवंश, सर्ग ४ श्लोक ६७)

'तत्रहूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।

(रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ६८)

का भारत पर का पहला आक्रमण वि० सं० ५१२ (ई० स० ४५५) में स्कन्दगुप्त के राज्य पर बैठने के समय हुआ था।

कालिदास ने उज्जयिनी का जैसा वर्णन किया है वैसा बिना आँखों से देखे नहीं हो सकता।[1]

गुप्त संवत् ८२ (वि० सं० ४५७-४५८=ई० स० ४०१-४०२) के उदयगिरि से मिले चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय के लेख[2] से ज्ञात होता है कि पूर्वी मालवे पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो चुका था। सम्भवत: इसी विजय-यात्रा में कालिदास भी उसके साथ उज्जैन गया होगा।

कालिदास ने अपने 'मेघदूत' नामक खण्ड काव्य में बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग[3] का उल्लेख कर उसे नीचा दिखाया है। यह दिङ्नाग काञ्ची का रहने वाला और वसुबन्धु का शिष्य था।

मि० विन्सैंट स्मिथ के मतानुसार यह वसुबन्धु समुद्रगुप्त का समकालीन[4] था।

---

[1] इसी आधार पर म० म० हरप्रसाद शास्त्री इसे मन्दसोर का निवासी मानते हैं।

[2] कॉर्पस् इन्सक्रिपशनम् इण्डिकेरम्, भा० ३, पृ० २१।

[3] 'दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्

(मेघदूत, श्लोक १४)

[4] अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ३४७।

हुएन्त्संग ने मनोरथ, व सुबन्धु और दिङ्नाग का उल्लेख किया है।

कहते हैं कि दिङ्नाग ने कालिदास के काव्यों की कड़ी समालोचना की थी। इसी से कालिदास ने अपने 'मेघदूत' नामक काव्य में दिङ्नाग का व्यङ्ग्य से परिहास किया है। दिङ्नाग का समय विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्वार्ध (ई० स० की पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध) में माना गया है।

कालिदास ने अपने ग्रन्थों में राशिचक्र का, और जामित्र, होरा, आदि ज्योतिष के कुछ पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। ईसवी सन् ३०० के करीब बने 'सूर्यसिद्धान्त' में राशिचक्र का उल्लेख नहीं है। परन्तु आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ में उसका उल्लेख किया है।[१] इस आर्यभट्ट का जन्म वि० सं० ५३३ (ई० सं० ४७६) में कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) में हुआ था। होरा, द्रेक्कोण (द्रेष्काण), आदि राशिचक्र के विभागों का उल्लेख पहले पहल ग्रीक ज्योतिषो फर्मीकस मीटरनस (Fermicus Meternus) के, जो वि० सं० ३९३ से ४११ (ई० स० ३३६ से ३५४) तक विद्यमान था, ग्रन्थ में मिलता है।

इन सब अवतरणों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कालिदास गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के और स्कन्दगुप्त के समय के बीच किसी समय हुआ था।

पहले लिखा जा चुका है कि कुछ विद्वान् कालिदास को विक्रम संवत् के प्रवर्तक मालवानरेश विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं। उनकी युक्तियाँ इस प्रकार हैं :--

कालिदास ने अपने रघुवंश में इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन करते हुए, दक्षिण के शासक, पाण्ड्यों और उनकी राजधानी उरगपुर[२] (उराइयूर कावेरी के तट पर[३]) का उल्लेख किया है और उसके रघु के दिग्विजय वर्णन में चोलों और पल्लवों का उल्लेख नहीं है।

---

[१] इसने 'आर्याशतक' और 'दशगीतिका' नाम की पुस्तकें लिखी थीं।

[२] रघुवंश सर्ग ६, श्लोक ५९-६०। परन्तु मिस्टर वी० ए० स्मिथ 'उरियूर' का करिकाल के पहले से ही चोल नरेशों की राजधानी होना मानते हैं। (अर्ली हिस्ट्री आफ़ इण्डिया पृ० ४८१)।

[३] गदवल से मिले चालुक्य नरेश विक्रमादित्य के ताम्रपत्रों से उरगपुर का कावेरी के तट पर होना प्रकट होता है। मल्लिनाथ ने भ्रम से उरगपुर को नागपुर लिख दिया है।

इतिहास से ज्ञात होता है कि चोल नरेश करिकाल ने ईसवी सन् की पहली शताब्दी में पाण्ड्यों को हरा दिया था। इसके बाद ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में फिर से पाण्ड्यों ने बल पकड़कर मदुरा (मड्यूरा) को अपनी राजधानी बनाया। परन्तु ईसवी सन् की पाँचवीं या छठी शताब्दी में पल्लव वंश के राजाओं ने फिर से इनका राज्य छीन लिया।

इन बातों पर विचार करने से अनुमान होता है कि कालिदास पाण्ड्यों के, ईसवी सन् की पहली शताब्दी में, प्रथम बार पतन होने के पूर्व ही हुआ था। क्योंकि उसने पाण्ड्यों की राजधानी उरगपुर का उल्लेख किया है। यदि वास्तव में वह गुप्त नरेशों के समय हुआ होता तो उरगपुर के स्थान में मदुरा को ही पाण्ड्यों की राजधानी लिखता।[1] इसी प्रकार उस काव्य में चोलों और पल्लवों का उल्लेख न होने से भी इसकी पुष्टि होती है।

कालिदास ने अपने नाटक के पात्रों में यवनियों को भी स्थान दिया है। यद्यपि सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय से ही यवनों का भारत से सम्बन्ध हो गया था, तथापि ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी में वह टूट गया था।

इनके सिवाय यदि वास्तव में कालिदास गुप्त नरेशों का सम-कालीन होता और वह उनका उल्लेख अपने काव्यों मे करना चाहता तो उसे उसको इतना घुमा फिराकर करने की क्या अवश्यकता थी।

अस्तु, इसी प्रकार इस कवि के जन्मस्थान के विषय में भी बड़ा

---

[1] परन्तु मिस्टर वी० ए० स्मिथ ईसा की प्रथम शताब्दी में ही मदुरा का पाण्ड्यों की राजधानी होना प्रकट करते हैं। (अर्ली हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, पृ० ४६८)।

मतभेद है। कोई इसे मन्दसौर (या मालवे) का, कोई नव द्वीप का, और कोई काश्मीर[1] का अनुमान करते हैं।

कालिदास के श्रव्य काव्यों में १ रघुवंश, २ कुमारसंभव, ३ मेघदूत,[2] ४ ऋतुसंहार और दृश्य काव्यों में, ५ शकुन्तला, ६ विक्रमोर्वशीय, और ७ मालविकाग्निमित्र प्रसिद्ध हैं।

१ नलोदय, २ द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, ३ पुष्पबाणविलास, ४ शृङ्गारतिलक, ५ ज्योतिर्विदाभरण,[3] आदि भी इसी के बनाए कहे जाते हैं।

सीलोन की कथाओं से ज्ञात होता है कि सिंहलद्वीप के राजा

---

[1] श्रीयुत लक्ष्मीधर कल्ला लिखित (और देहली युनिवर्सीटी द्वारा प्रकाशित 'बर्थप्लेस ऑफ़ कालिदास' नामक पुस्तक में कालिदास का काश्मीर निवासी होना सिद्ध किया गया है।

[2] इन तीनों को प्रचलित प्रथा के अनुसार 'लघुत्रयी' कहते हैं।

[3] यह पुस्तक प्रसिद्ध कालिदास की बनाई प्रतीत नहीं होती। यद्यपि उसके लेखक ने स्वयं ही अपना विक्रम की सभा में होना लिखा है, तथापि एक तो उसकी कविता साधारण है। दूसरा उसमें जिन कवियों, आदि का विक्रम की सभा में होना लिखा है वे समकालीन नहीं थे। तीसरा उनमें अयनांश निकालने की रीति बतलाते हुए लिखा है :—

"शाकः शराम्भोधियुगोनितो हृतो
मानं खतर्कैरयनांशकाः स्मृताः १। १८।"

अर्थात्—शक संवत् में से ४४५ घटाकर बाकी बचे हुए में ६० का भाग देने से अयनांश आते हैं। इसमें शाक संवत् का उल्लेख होने से इस पुस्तक के रचयिता का अपने को विक्रमादित्य का समकालीन लिखना मान्य नहीं हो सकता। विद्वान् लोग 'ज्योतिर्विदाभरण' का रचनाकाल वि० सं० १२९९ (ई० स० १२४२) के करीब अनुमान करते हैं।

कुमारदास[1] (कुमार-धातुसेन) ने कालिदास को अपने यहाँ बुलवाया था और वहाँ पर उसके और कालिदास के बीच मैत्री हो गई थी। कुछ समय बाद वहीं पर कालिदास मारा गया। उसकी दाहक्रिया के समय स्नेह की अधिकता के कारण राजा कुमारदास भी उसकी चिता में गिर कर भस्म हो गया।

इसी प्रकार कथाओं से भोज के समय भी एक कालिदास का विद्यमान होना पाया जाता है। भोज प्रबन्ध आदि में उसकी प्रतिभा और कुशाग्रबुद्धि की बड़ी प्रशंसा की गई है। कहते हैं कि 'नलोदय' नामक काव्य उसी ने बनाया था। उसकी कविता में 'श्लेष' अधिक रहता था। कुछ लोग 'चम्पू रामायण' को भी उसी की बनाई हुई मानते हैं। उनका कहना है कि उसके कर्ता के स्थानपर भोज का नाम तो उसने भोज की गुणग्राहकता के कारण ही रख दिया था।

'नवसाहसाङ्क चरित' की एक हस्तलिखित प्रति में उसके कर्ता पद्मगुप्त (परिमल) को भी, जो भोज के पिता सिन्धुराज का समकालीन था, कालिदास के नाम से लिखा है।

---

[1] इसने 'जानकीहरण' नामक महाकाव्य लिखा था। इस विषय में राजशेखर ने कहा है:—

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासो वा रावणो वा यदि क्षमः॥

महावंश के अनुसार कुमारदास की मृत्यु वि० सं० ५८१ (ई० स० ५२४) में हुई थी।

कहते हैं कि सिंहलद्वीप के दक्षिणी प्रान्त के माटर नामक सूबे में, जहाँ करंदी नदी भारतसागर में गिरती है, कालिदास का स्मारक बना है। 'पराक्रमबाहुचरित' से भी इस बात की पुष्टि होती है।

'सूक्ति मुक्तावली' और 'हारावली' में राजशेखर का कहा यह श्लोक मिलता है।

"एकोऽपि ज्ञायते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयं किमु॥"

अर्थात्—एक भी कालिदास किसी से नहीं जाना जाता है, फिर क्या शृंगार वर्णन में तीन तीन कालिदास हो गए हैं?

इससे ज्ञात होता है कि राजशेखर के समय वि० सं० ९५७ (ई० स० ९००) के करीब तीन कालिदास हो चुके थे।

अमर

यह कवि कौन था। इसका निश्चय करना कठिन है। अमरकोष के कर्ता अमरसिंह के समय के विषय में कालिदास पर विचार करते हुए टिप्पणी में कुछ प्रमाण दिए जा चुके हैं। यहाँ पर अमरुशतक के कर्ता अमरुक के विषय में विचार किया जाता है।

कहते हैं कि, जिस समय मण्डनमिश्र और शङ्कराचार्य के बीच शास्त्रार्थ हुआ उस समय मण्डनमिश्र की स्त्री ने शङ्कराचार्य से कामशास्त्र सम्बन्धी कई प्रश्न किए थे। शङ्कराचार्य तो प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्यपालन करते आ रहे थे। इसलिए उन्होंने मरे हुए अमरुक नामक, राजा के शरीर, में योगबल से, प्रवेश कर उस विषय का ज्ञान प्राप्तकिया और फिर उसी शरीर में रहते हुए 'अमरुशतक' नामक शृङ्गार का ग्रन्थ लिखा। परन्तु माधव कवि प्रणीत 'शङ्करदिग्विजय' से शङ्कराचार्य का 'अमरुशतक' के स्थान पर कामशास्त्र का कोई ग्रन्थ बनाना प्रकट होता है।

विक्रम संवत् की दसवीं शताब्दी के पूर्वभाग (ईसवी सन् की नवां शताब्दी के उत्तर भाग में) होने वाले आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने

'ध्वन्यालोक' नामक अलङ्कार के ग्रन्थ में अमरुक के 'मुक्तकों' की प्रशंसा में लिखा[1] है :—

'यथाह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव'।

अर्थात्—जैसे अमरुक कवि के फुटकर श्लोक शृङ्गाररस से पूर्ण हैं और एक सिलसिलेवार ग्रन्थ की तरह मालूम होते हैं।

इससे प्रकट होता है कि यह कवि ध्वन्यालोक के रचनाकाल से बहुत पहले ही 'अमरुशतक' लिख चुका था।

इस शतक पर वैसे तो करीब सात टीकाएँ मिल चुकी हैं। परन्तु 'रसिक संजीवनी' नाम की टीका राजा भोज के वंशज और मालवे के परमारनरेश स्वयं अर्जुनवर्मा ने लिखी थी। इस अर्जुनवर्मा के वि० सं० १२६७ से वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१० से १२१५) तक के तीन दानपत्रों का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

अमरुक के 'अमरुशतक' पर भोज के वंशज अर्जुनवर्मा की टीका को देखकर ही शायद लोगों ने इसे भोज का समकालीन मान लिया हो तो आश्चर्य नहीं।

इनके अलावा एक अमर कवि और भी हुआ है। उसने 'छन्दो-रत्नावली,' 'काव्यकल्पलता,' 'मुक्तावली,' 'कलाकलाप' और 'बालभारत' नामक ग्रन्थ लिखे थे। यह कवि सोलंकी वीसल का समकालीन था।

वि० सं० १४०५ (ई० स० १३४८) के बने राजशेखरसूरि के 'प्रबन्ध कोश' में इस कवि को वायट (या वायट—अणहिलवाड़े के पास) के रहने वाले जिनदत्तसूरि के भक्त अमरसिंह का शिष्य लिखा है।

धौलके के राना (बघेल-सोलंकी) वीर धवल के पुत्र वीसल का

---

[1] उद्योत ३, पृ० १४२।

समय वि० सं० १३०० से १३१८ (ई० स० १२४३ से १२६१) तक था। इसी ने सोलंकी त्रिभुवनपाल से गुजरात का राज्य छीना था।

इससे ज्ञात होता है कि ये तीनों ही कवि भोज के समकालीन न थे।

वासुदेव

यह कवि भारतगुरु का शिष्य और महाराज कुलशेखर का समकालीन था।[1] यह कुलशेखर कौन था। इसका पता नहीं चलता। सिंहल की कथाओं से ज्ञात होता है कि वहाँ के राजा कुलशेखर को भगाकर उसकी सेना ने उसके स्थान पर चोल नरेश वीर पाण्डि को गद्दी पर बिठा दिया था।[2] इस कुलशेखर का समय वि० सं० १२२७ (ई० स० ११७०) के करीब माना जाता है।[3] इसके बनाए 'युधिष्ठिर विजय' काव्य पर लिखी गई राजानक रत्नकंठ की श० सं० १५९३ (वि० सं० १७२८=ई० स० १६६१) की टीका आदि को देखकर अनुमान होता है कि यह वासुदेव शायद काश्मीर का रहने वाला था।

'वासुदेव विजय' नामक काव्य का कर्ता वासुदेव[4] और 'युधिष्ठिर विजय' का कर्ता यह वासुदेव एक ही थे या भिन्न भिन्न इसका निश्चय भी नहीं हो सका है।

---

[1] युधिष्ठिरविजय, आश्वास १, श्लोक ६, ६।

[2] वासुदेव का आश्रयदाता कौन सा कुलशेखर था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

[3] इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ६, पृ० १४३।

[4] 'धातुकाव्य' के प्रारम्भ के श्लोक की टीका से प्रकट होता है कि यह वासुदेव केरल के पुरुवन नामक गाँव का रहनेवाला था।

दामोदर

इसी दामोदर मिश्र ने राजा भोज की आज्ञा से 'हनुमन्नाटक' का जीर्णोद्धार और भोज के किए संग्रह के आधार पर 'अब्दप्रबोध' (भोजदेव संग्रह।) की रचना की थी। यह विद्वान वास्तव में भोज का समकालीन था।

राजशेखर

'बालरामायण', 'बालभारत', 'विद्धशाल भञ्जिका' और 'कर्पूरमंजरी' का कर्ता राजशेखर कन्नौज के प्रतिहार (पडिहार) नरेश महेन्द्रपाल का गुरु था। महेन्द्रपाल के वि० सं० ९५० से ९६४ (ई० स० ८९३ से ९०७) तक के तीन दानपत्र मिले हैं।

भवभूति

यह कवि विदर्भ (बरार) के पद्मपुर नगर के रहनेवाले[1] नीलकण्ठ का पुत्र और कन्नौज नरेश यशोवर्मा[2] का सभा-पण्डित था। इस यशोवर्मा का समय वि० सं० ७८८ (ई० स० ७३१) के आस पास था, और इसके नौ दस वर्ष बाद यह काश्मीर नरेश ललितादित्य (मुक्तापीड) द्वारा हराया गया था।[3]

---

[1] भोज प्रबन्ध में इसे बनारस का रहनेवाला लिखा है। यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

[2] कवि वाक्पतिराजश्री भवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥१४५॥

(राजतरंगिणि, तरंग ४)

[3] ऐसी भी प्रसिद्धि है कि इसी समय ललितादित्य भवभूति को अपने साथ काश्मीर लेगया था।

ऐसी प्रसिद्धि है कि इस कवि का असली नाम श्रीकण्ठ था। परन्तु इसके बनाए इस श्लोक[1] के कारण लोग इसे भवभूति कहने लगे। :—

तपस्विकां गतोवस्थामितिस्मेराननाविव।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ॥

अर्थात्—महादेव जी के अंग में लगी भस्म के लग जाने के कारण ऊपर से सुफ़ेद और तपस्वी की सी अवस्था को प्राप्त होने से मुसकराते हुए पार्वती जी के स्तनों को नमस्कार करता हूँ।

भवभूति ने 'मालतीमाधव,' 'उत्तररामचरित' और 'वीर-चरित' नाम के नाटक लिखे थे।

भोज प्रबन्ध में लिखा है कि एक बार राजा भोज की सभा में कालिदास और भवभूति की कविता की श्रेष्ठता के विषय में विवाद उठ खड़ा होने से भुवनेश्वरीदेवी के मन्दिर में जाकर इसका निश्चय करना स्थिर हुआ। इसी के अनुसार वहाँ पर एक घट में देवी का आवाहन कर दोनों की लिखी हुई कविताएँ तकड़ी पर रख दी गईं। जब भवभूति की कविता वाला पल्ला कुछ ऊँचा उठने लगा तब अपने भक्त की सहायता के लिये देवी ने अपने कान पर रक्खे हुए कमल की मकरन्द के कुछ छींटे उस पर डाल दिए। यह देख कालिदास ने कहा :—

अहो मे सौभाग्यं मम च भवभूतेश्च भणितं
घटायामारोप्य प्रतिफलति तस्यां लघिमनि।

---

[1] कहीं कहीं

'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः'

इस श्लोक पाद के कारण इसका नाम भवभूति होना लिखा है।

गिरां देवी सद्यः श्रुतिकलितकह्लारकलिका—
मधूलीमाधुर्यं क्षिपति परिपूर्त्यै भगवती ॥

अर्थात्—यह मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात है कि मेरी और भवभूति की कविता की उत्तमता का निर्णय करने के लिये दोनों कविताओं के तकड़ी पर रक्खे जाने और भवभूति की कविता वाले पलड़े के ऊँचे उठने पर उसके हलके पन को दूर करने के लिये स्वयं सरस्वती अपने कान पर के कमल का मकरन्द उसमें डालती है।

परन्तु यह सब कल्पनामात्र है।

'गौड़वहो' (प्राकृत) का कर्ता वाक्पतिराज भी भवभूति का समकालीन था।

दण्डी

यह कवि विक्रम की ७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध (ई० स० की ७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध) में हुआ था। इसने 'दशकुमारचरित' नामक गद्यकाव्य और 'काव्यादर्श' नामक अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा था।[1]

एक प्राचीन श्लोक में लिखा है:—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥

अर्थात्—जगत् में पहला कवि वाल्मीकि हुआ, दूसरा व्यास, और तीसरा दण्डी।

भवभूति और कालीदास की कथा के समान ही कालिदास और दण्डी की भी कथा प्रसिद्ध है। उसमें इतना अन्तर है कि दोनों की

---

[1] कुछ विद्वान् 'छन्दो विचिति,' 'कलापरिच्छेद,' आदि ग्रंथ भी इसीके बनाए हुए बतलाते हैं।

काव्यशक्ति की उत्तमता के विषय में जाँच की जाने पर घट में से स्वयं सरस्वती ने कहा :—

"कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न चापरः।"

अर्थात्—कवि तो दण्डी ही है।

इस पर कालिदास को क्रोध चढ़ आया और जब उसने पूछा:—

"तदाहमस्मि को रण्डे"!

अर्थात्—तो फिर ऐ राँड ! मैं कौन हूँ ?

तब सरस्वती ने उत्तर दिया।

"त्वमहं त्वमहं त्विति"

अर्थात—तू और मैं तो एक ही हैं (यानी तू तो मेरा ही अवतार है।)

यह सब पिछले लोगों की कल्पित कथा है।

मल्लिनाथ

इसकी लिखी 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव', 'मेघदूत' और 'शिशुपालवध' नामक काव्यों की टीकाएँ मिली हैं। यह वि० सं० १३५५ (ई० स० १२९८) में विद्यमान था।

मानतुङ्ग

यह जैनमतानुयायी आचार्य था। इसका समय वि० सं० ६५७ (ई० स० ६००) के करीब माना जाता है। 'भक्तामर स्तोत्र' इसीने बनाया था।

धनपाल

यह कवि मध्यदेश में जन्में काश्यपगोत्री ब्राह्मण देवर्षि का पौत्र और सर्वदेव का पुत्र था।[1] यह सर्वदेव स्वयं विद्वान् और विशाला

---

[1] आसीद्द्विजन्माखिलमध्यदेशे
प्रकाशशाङ्काश्यनिवेशजन्मा।

(उज्जैन) का निवासी था। उसका जैनों से अधिक समागम रहने के कारण ही उसका छोटा पुत्र शोभन भी जैन होगया था। परन्तु धनपाल को पहले जैनों से घृणा थी। इसी से वह उज्जैन छोड़कर धारा नगरी में जा बसा। इसको मुञ्ज ने 'सरस्वती' की उपाधि दी थी।

इसी धनपाल ने वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) में अपनी छोटी बहन सुन्दरी (अवन्ति सुन्दरी) के लिये 'पाइअलच्छी (प्राकृत लक्ष्मी) नाममाला' नामक प्राकृत का एक कोष लिखा था। यह अवन्ति सुन्दरी स्वयं भी विदुषी थी। उसकी बनाई प्राकृत-कविता अलङ्कार-शास्त्र के ग्रन्थों और कोषों की टीकाओं में मिलती है।

इसके बाद राजा भोज के समय धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी' नाम का गद्यकाव्य लिखा। धनपाल के जैन होने की कथा 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में इस प्रकार लिखी मिलती है :—

एक बार जब वर्धमान सूरि उज्जैन की तरफ आए तब धनपाल के पिता सर्वदेव ने उन्हें अपने यहाँ ठहराकर उनसे अपने पूर्वजों के छिपाए

अलब्ध देवर्षिरिति प्रसिद्धिं
यो दानवर्षित्वविभूषितोपि ॥ ५१ ॥
शास्त्रेष्वधीती कुशलः कलासु
बन्धे च बोधे च गिरां प्रकृष्टः।
तस्यात्मजन्मा समभून्महात्मा
देवः स्वयंभूरिव सर्वदेवः ॥ ५२ ॥

तज्जन्मा जनकाङ्घ्रिपङ्कजरजः सेवाप्तविद्यालवो।
विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात्कथाम्।
अक्षुण्णोपि विविक्तसूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना।
श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः ॥ ५३ ॥

(तिलकमञ्जरी)

हुए धन का स्थान बतलाने की प्रार्थना की। यह सुन वर्धमान ने कहा कि वह आधा हिस्सा देना मंजूर करे तो ऐसा हो सकता है। सर्वदेव ने यह बात स्वीकार करली। तब वर्धमान ने भी अपने योगबल से उसे वह स्थान बतला दिया। इस पर जब वह मिले हुए धन का आधा भाग उन्हें देने लगा तब उन्होंने धन लेने से इनकार कर उसके दो पुत्रों में से एक को माँगा। यह सुन उसके बड़े पुत्र धनपाल ने वर्धमान के साथ जाने से साफ़ इनकार कर दिया। सर्वदेव का अपने छोटे पुत्र शोभन पर अधिक प्रेम था, इससे वह उसे भी न दे सका। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग होते देख अन्त मे उसने तीर्थयात्रा कर पाप से पीछा छुड़ाने का विचार किया। परन्तु शोभन को यह बात अच्छी न लगी। इसी से वह अपने पिता की प्रतिज्ञा को निभाने के लिये स्वयं ही वर्धमानसूरि के साथ हो लिया।

कुछ काल बाद जब धनपाल पढ़ लिखकर भोज का कृपापात्र हुआ तब उसने अपने भाई का बदला लेने के लिये १२ वर्षों तक जैनों का धारा में आना बन्द करवा दिया। परन्तु अन्त में स्वयं शोभन ने वहाँ पहुँच उसे भी जैन मतानुयायी बनालिया। इसके बाद धनपाल भी भोज को जीवहिंसा न करने का उपदेश देने लगा। इस घटना के बाद ही धनपाल ने तिलकमंजरी[1] की रचना की थी। यद्यपि उक्त गद्यकाव्य

---

[1] निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः।
श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य॥
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो।
राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयं॥ ५० ॥

(तिलकमञ्जरी)

इससे प्रकट होता है कि, इस गद्यकाव्य में कवि ने राजा भोज के मनोविनोदार्थ ही जैनशास्त्रोक्त एक कथा लिखी थी।

के प्रारम्भ में उसने जिन की स्तुति की है, तथापि उसी में उसने अपने लिये "विप्र: श्री धनपाल'...लिखकर अपना ब्राह्मण होना भी प्रकट किया है। इससे ज्ञात होता है कि धनपाल केवल जैनमत के सिद्धान्तों का अनुयायी होगया था।

'पाइअलच्छी नाम माला' बनाते समय यदि धनपाल की आयु २५-३० वर्ष की मान ली जाय तो भोज के राज्या-रोहण के बाद तिलकमंजरी की रचना के समय इसकी आयु अवश्य ही ६० और ७० वर्ष के बीच रही होगी।

प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि भोज ने तिलकमञ्जरी की कथा को पढ़कर धनपाल से कहा था कि, यदि वह इस कथा के नायक के स्थान पर स्वयं भोज का, विनता की जगह अवन्ती का, और शक्रावतार तीर्थ के स्थान पर महाकाल का नाम लिखदे तो, उसे मुंह मांगा इनाम मिल सकता है। परन्तु कवि ने यह बात अङ्गीकार न की। इससे भोज क्रुद्ध होगया और उसने उस काव्य को जला डाला। यह देख धनपाल को बहुत दु:ख हुआ और वह घर जाकर एक पुरानी खटिया पर पड़ रहा। परन्तु उसकी कन्या बालपण्डिता ने जो तिलकमञ्जरी को एक बार पढ़ चुकी थी उसे आश्वासन देकर उठाया और अपनी स्मरण शक्ति की सहायता से उस ग्रन्थ का आधा भाग फिर से लिखा दिया, तथा पिछला आधा भाग नया बनाकर ग्रन्थ को पूर्ण कर दिया।[1]

डाक्टर बूलर और टानी धनपाल के भोज के राज्य समय तक जीवित रहने में शङ्का करते हैं। परन्तु तिलकमञ्जरी में कवि ने स्वयं राजा भोज की आज्ञा से उक्त गद्यकाव्य का लिखना प्रकट किया है।

[1] ऐसा भी कहते हैं कि धनपाल की कन्या का नाम तिलकमञ्जरी था। उसी की सहायता से उक्त ग्रन्थ के दुबारा तैयार होने से कवि ने पुस्तक का नाम ही 'तिलकमञ्जरी' रख दिया।

इसने 'भविसयत्त कहा' (अपभ्रंश भाषा की), 'ऋषभपञ्चाशिका', और एक संस्कृत का कोष भी बनाया था। यह कोष शायद अब तक अप्राप्त है।

'प्रबन्धचिन्तामणि' में लिखा है कि एक बार जिस समय राजा भोज सरस्वती कण्ठाभरण नामक महल के तीन दरवाजों वाले मण्डप में खड़ा था, उस समय उसने धनपाल से कहा कि तुम्हारे यहाँ सर्वज्ञ तो पहले हो चुका है। परन्तु क्या उसके बनाए दर्शन (Philosophy) में अब भी कुछ विशेषता बाकी है। इसपर धनपाल ने उत्तर दिया कि अर्हन् के बनाए 'अर्हच्चूडामणिग्रन्थ' से इस समय भी तीनों लोकों और तीनों कालों का ज्ञान हो सकता है। यह सुन जब राजा ने पूछा कि अच्छा बतलाओ तुम किस द्वार से बाहर जाँयगे तब धनपाल ने अपनी बुद्धि के बल से इसका जवाब एक भोज पत्र के टुकड़े पर लिख और उसे एक मिट्टी के गोले में बंदकर पास खड़े हुए आदमी को सौंप दिया। भोज ने सोचा कि इसने अवश्य ही इन्हीं तीन दरवाजों में से एक का संकेत किया होगा। इसलिये वह उस मण्डप की पद्मशिला को हटवा कर उधर से बाहर निकल गया। परन्तु बाहर आकर जब उसने धनपाल के लेख को देखा तो उसमें उसी मार्ग से निकलने का लिखा था।[1]

---

[1] इस पर उसके ज्ञान की प्रशंसा करते हुए भोज ने कहा:—

द्वाभ्यां यन्न हरिस्त्रिभिन्न च हरः स्रष्टा न चवाष्टभि—
र्यन्न द्वादशभिर्गुहो न दशकद्वन्द्वेन लङ्कापतिः।
यन्नेन्द्रो दशभिः शतैर्न जनता नेत्रैरसंख्यैरपि
तत्प्रज्ञा नयनेन पश्यति बुधश्चैकेनवस्तु स्फुटम्॥

अर्थात्—जिस बात को विष्णु अपनी दो आँखों से, महादेव तीन आँखों से, ब्रह्मा आठ आँखों से, कार्तिकेय बारह आँखों से, रावण बीस

उसी पुस्तक (प्रबन्धचिन्तामणि) मे यह भी लिखा है कि समुद्र-जल में डूबे हुए रामेश्वर के मन्दिर की प्रशस्ति के—

'अयि खलु विषमः पुराकृतानां भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः।'

अर्थात्—अगले जन्म में किए हुए कर्मों का प्राणियों पर बेढब असर पड़ता है। इस श्लोकार्ध की पूर्ति धनपाल ने इस प्रकार की थी :—

'हरशिरसि शिरांसि यानि रेजुर्हरि हरि तानि लुठन्ति गृध्रपादैः॥'

अर्थात्—हरि-हरि (अफसोस) जो (रावण के) सिर एक बार महादेव (के सिर) पर चढ़े थे वही आज गीधों के पैरों की ठोकरों से लुढ़क रहे हैं।

इसके बाद जब गोताखोरों द्वारा उस मन्दिर की प्रशस्ति का फिर से अनुसन्धान करवाया गया तब उक्त श्लोक का उत्तरार्ध ठीक यही निकला।

भास्करभट्ट

यह 'दमयन्तीकथा' के कर्ता त्रिविक्रमभट्ट का पुत्र था। 'मदालसा चम्पू' इसी का बनाया हुआ है। यह भोज का समकालीन था और उसने इसे 'विद्यापति' की उपाधि दी थी। इसी के वंश में 'सिद्धान्तशिरोमणि'[1] और 'करण कुतूहल' का कर्ता प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य हुआ था।

वररुचि

इसका दूसरा नाम कात्यायन था। 'अष्टाध्यायी वृत्ति' 'व्याकरण-

आँखों से, इन्द्र हज़ार आँखों से और लोग असंख्य आँखों से भी नहीं देख सकते उसी को विद्वान् अपनी ज्ञान की एक ही आँख से साफ देख लेता है।

[1] सिद्धान्तशिरोमणि श० सं० १०७२ (वि० सं० १२०७-ई० स० ११५५) में समाप्त हुई थी।

कारिका', 'प्राकृत प्रकाश', 'पुष्पसूत्र', 'लिङ्गवृत्ति' आदि अनेक ग्रंथ इसने लिखे थे।

गुणाढ्यद्वारा ईसवी सन् की पहली शताब्दी में लिखी गई 'बृहत्कथा' में वररुचि का उल्लेख होने से सिद्ध होता है कि यह उस समय से भी पूर्व हुआ था। इसको भोज का समकालीन मानना भ्रम मात्र ही है।

मिस्टर वी० ए० स्मिथ कात्यायन का समय ईसवी सन् से पूर्व की चौथी शताब्दी अनुमान करते हैं।

उवट

यह आनन्दपुर (गुजरात) के रहने वाले वज्रट का पुत्र था। इसने भोज के समय उज्जैन में रहते हुए 'वाजसनेय संहिता' (यजुर्वेद) पर भाष्य लिखा था।

उसमें लिखा है:—

ऋष्यादींश्च पुरस्कृत्य अवन्त्यामुवटो वसन्।
मन्त्रभाष्यमिदं चक्रे[1] भोजे राष्ट्रं प्रशासति॥

---

[1] उसी भाष्य की दूसरी कापी में लिखा है:—

आनन्दपुर वास्तव्य वज्रटाख्यस्य सूनुना।
मन्त्रभाष्यमिदं क्लृप्तं भोजे पृथ्वीं प्रशासति॥

मालवे का परमार-राज्य

मालवे के परमारों का राज्य एक समय भिलसा से गुजरात (की सीमा) तक और चित्तौड़ से (दक्षिण में) तापती तक फैल गया था। उज्जैन, धारा, माँडू, भोपाल, (ग्वालियर राज्य में के) उदयपुर, आदि स्थानों में इस वंश के राजाओं द्वारा बनवाए हुए स्थान, मन्दिर, जलाशय, आदि के भग्नावशेष अब तक इन राजाओं की कीर्ति-कथा को प्रकट करते हैं।

सिंधुराज के समय तक तो इनकी राजधानी उज्जैन ही रही। परन्तु बाद में भोज ने यह पद धारा[1] को प्रदान किया। इसी से भोज की एक उपाधि 'धारेश्वर' भी हो गई थी।

इनके यहाँ राज्य-प्रबन्ध के लिये 'मण्डलेश्वर,' 'पट्टकिल,' 'सान्धि विग्रहिक,' आदि अनेक कर्मचारी नियत किए जाते थे। इनमें का पिछला (Minister of the peace and war का) पद ब्राह्मणों को ही मिलता था। इस वंश के नरेशों की उपाधि परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, थी और इनकी मुहर में सर्प हाथ में लिए गरुड़ का चिन्ह बना होता था।

यद्यपि वैदेशिक आक्रमणों के कारण उस समय भारत की

---

[1] वि० सं० की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में होने वाले मौखरीवंशी ईश्वर वर्मा के, जौनपुरसे मिले लेख में धारानगरी का नाम मिलता है।

(कॉर्पस् इन्सक्रिपशनं इण्डिकेरम्, भा० ३, पृ० २३०)

वह पूर्व की सी समृद्धि नहीं रही थी, तथापि अलबेरूनी[1] के, जो अपने को भोज का समकालीन लिखता है, यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय भी मालवा खूब आबाद था। वहाँ के गाँव पाँच पाँच फर्सख (पाँच पाँच मील ?) या इससे भी कम अन्तर पर बसे हुए थे[2]। काश्मीर, बनारस,[3] और कन्नौज, के आस पास के देशों में, जिन्हें आर्यावर्त भी कहते थे, 'सिद्धमातृका'[4] नाम की लिपि का प्रचार था। परन्तु मालवे में 'नागर'[5] नाम की लिपि प्रचलित थी। इसके और

---

[1] अबूरैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद अलबेरूनी का जन्म वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) में ख्वारिज़्म के निकट के बेरूँ नामक स्थान (मध्य एशिया) में हुआ था। वि० सं० १०६३ (ई० स० १०१६ में) जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने 'खीवा' पर चढ़ाई कर उसे विजय किया, उस समय अन्य लोगों के साथ ही अलबेरूनी भी बन्दी के रूप में ग़ज़नी लाया गया। इसके बाद उसने महमूद की सेना के साथ भारत के कई प्रदेशों में भ्रमण किया और फिर ग़ज़नी लौटकर वि० सं० १०८७ (ई० स० १०३०) में भारत का वृत्तान्त लिखा। इसमें का कुछ हाल उसका अपना देखा, और कुछ महमूद के अफसरों, नाविकों, और अन्य हिन्दू-मुसलमान पर्यटकों, का बतलाया हुआ है। अलबेरूनी गणित और ज्योतिष का अच्छा विद्वान् था। इसने अनेक विषयों पर ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें से अधिकांश नष्ट हो गए हैं। इसकी मृत्यु वि० सं० ११०५ (ई० स० १०४८) में हुई थी। इसने अपने भारतीय-विवरण में अपने को धारा के राजा भोज का समकालीन लिखा है।

[2] अलबेरूनी का भारत, भा० २, पृ० १३०

[3] अलबेरूनी के समय काशी और काश्मीर विद्या के केन्द्र थे।

[4] आज कल की काश्मीरी लिपि 'शारदा' लिपि के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भव है यह 'सिद्धमातृका' शब्द का ही रूपान्तर हो।

[5] सम्भव है इसी से आजकल की लिपि का नाम 'नागरी' हुआ हो।

सिद्धमातृका के बीच केवल अक्षरों के रूप में ही भेद था। इन दोनों लिपियों के मेल से जो लिपि बनी थी वह 'अर्धनागरी' कहलाती थी। इसका प्रचार भातिया और सिन्ध के कुछ भागों में था। इसी प्रकार और भी भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न लिपियाँ काम में लाई जाती थीं।[1]

मालवे के परमारराज्य का अन्त

मालवे के परमारनरेशों में सब से पहला नाम उपेन्द्र (कृष्ण-राज) का मिलता है। इसका समय वि० सं० ९१० और ९३० (ई० स० ८५३ और ८७३) के बीच था।[2] इसी प्रकार इस वंश का अन्तिम (सत्ताईसवाँ) नरेश जयसिंहदेव चतुर्थ वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) में विद्यमान था। इससे ज्ञात होता है कि करीब साढ़े चार सौ वर्ष तक मालवे पर परमारों का राज्य रहा था।[3] परन्तु पिछले कुछ राजा अधिक प्रतापी न थे। उनका अधिकार थोड़े से प्रदेश पर ही रह गया था।[4] इसी समय के आस पास वहाँ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया और वह प्रदेश उनकी अधीनता में रहने वाले अनेक छोटे छोटे राज्यों में बँट गया।

---

[1] अलबेरूनी का भारत, भा० २, पृ० ६०-६१।

[2] कुछ विद्वान प्रत्येक नरेश के राज्य की औसत २५ वर्ष मान कर उपेन्द्र का समय वि० सं० ८५७ और ८८२ (ई० स० ८०० और ८२५) के बीच अनुमान करते हैं।

[3] परन्तु वि० सं० ८५७ (ई० ८००) से इस वंश के राज्य का प्रारम्भ माननेवालों के मत से इस वंश का पाँच सौ वर्षों तक राज्य करना सिद्ध होता है।

[4] उनके समय पहले चौहानों का प्रताप बढ़ा और फिर मुसलमानों ने वहाँ पर अधिकार कर लिया।

मालवे के (इक्कीसवें) परमारनरेश देवपाल के समय से ही उस तरफ़ मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो गए थे। हि० स० ६३० (वि० सं० १२८९=ई० स० १२३२) में दिल्ली के बादशाह शम्सुद्दीन अल्तमश ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया और इसके तीन वर्ष भी बाद (वि० सं० १२९२=ई० स० १२३५) में भिलसा और उज्जैन भी उसका कब्ज़ा हो गया।[१] इसी समय उसने उज्जैन के प्रसिद्ध महाकाल के मन्दिर को तुड़वाया था।[२] परन्तु फिर भी उज्जैन पर उसका अधिकार स्थायी न रहा।

'तारीखे फ़रिश्ता' में लिखा है कि हि० स० ६२९ (वि० सं० १२८८=ई० स० १२३१) में शम्सुद्दीन अल्तमश ने ग्वालियर के किले को घेर लिया। यह क़िला अल्तमश के पूर्वाधिकारी आरामशाह के समय में फिर हिन्दुओं के अधिकार में चला गया था।[३] एक साल तक घेरे में रहने के कारण वहाँ का राजा देवबल (देवपाल) रात के समय

---

[१] क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया, पृ० १८४।

[२] कहते हैं कि महाकाल का यह मन्दिर सोमनाथ के मन्दिर के ढंग पर बना हुआ था। और इसके चारों तरफ सौ गज़ ऊँचा कोट था। इस मन्दिर के बनकर तैयार होने में तीन वर्ष लगे थे। महमूद ने इसको नष्ट करके यहाँ की महाकाल की मूर्त के साथ ही प्रसिद्ध वीर विक्रमादित्य की मूर्ति को और बहुत सी धातु की बनी अन्य मूर्तियों को देहली की मसजिद के द्वार पर रख कर तुड़वाया था। यह भी कहा जाता है कि शम्सुद्दीन अल्तमश ने इस मन्दिर के सामान से वहाँ पर एक मसजिद और एक सराय बनवाई थी। इसके बाद पेशवा के सेनापति, अयाप्पा सेंधिया, के प्रतिनिधि (महाराष्ट्र के सारस्वत ब्राह्मण) रामचन्द्र बाबा ने दुबारा उसी स्थान पर आधुनिक महाकाल के मन्दिर की स्थापना की।

[३] इसे पहले कुतुबुद्दीन ऐबक ने विजय किया था।

क़िला छोड़ कर भाग गया। उस समय उसके तीन सौ से अधिक योद्धा मारे गए थे। इसके बाद ग्वालियर पर शम्सुद्दीन का अधिकार हो गया।

'तबकाते-नासिरी' में ग्वालियर के राजा का नाम मलिकदेव और उसके पिता का नाम बसील लिखा है। साथ ही ग्वालियार के विजय होने की तारीख २६ सफर मंगलवार[1] हि० स० ६३० (वि० सं० १२८९ की पौष बदि १४=ई० स० १२३२ की १२ दिसंबर) लिखी है।

इन अवतरणों से प्रकट होता है कि यद्यपि कछवाहों के बाद ग्वालियर का राज्य मुसलमानों के हाथ में चला गया था तथापि देवपाल के समय उसपर परमारों का ही अधिकार था। इसी से अल्तमश को वहाँ के क़िले पर अधिकार करने में एक साल के करीब लग गया। यद्यपि इस घटना के बाद तक भी मालवे पर परमारों का अधिकार रहा था, तथापि उसमें शिथिलता आने लगी थी और धीरे धीरे उसके आस पास मुसलमानों के पैर जमने लगे थे।

तबकाते नासिरी में लिखा[2] है कि हि० स० ६४९ (वि० सं० १३०८=ई० स० १२५१) में नासिरुद्दीन ने ग्वालियर पर चढ़ाई की और वहाँ से वह मालवे की सीमा तक पहुँचा। इस पर मालवे के सब से बड़े राना जाहिरदेव ने जिसकी सेना में ५,००० सवार और २,००,००० पैदल थे उसका सामना किया। परन्तु जीत नासिरुद्दीन की ही हुई।

वास्तव में यह जाहिरदेव देवपाल का उत्तराधिकारी परमार

---

[1] इण्डियन ऐफ़ेमेरिस के अनुसार उस दिन रविवार आता है।

[2] इलीयट की हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भा० २, पृ० ३५१।

नरेश जयसिंह द्वितीय[1] ही होगा; क्योंकि वि० सं० १३१२ (ई० स० १२५५) का इसका एक शिलालेख मिला है।

वि० सं० १३४८ (ई० स० १२९१=हि० स० ६९०) में जलालुद्दीन फीरोज़ ख़िलजी ने उज्जैन पर चढ़ाई कर उसे लूटा और वहाँ के मन्दिरों को तुड़वाया। इसके दो वर्ष बाद वि० सं० १३५० (ई० स० १२९३=हि० स० ६९२) में फिर उसने मालवे पर चढ़ाई की। इस बार भी उसे वहाँ से लूट में बहुत सा माल मिला।

इसी वर्ष उसके भतीजे अलाउद्दीन ख़िलजी ने भिलसा के साथ ही मालवे के पूर्वी हिस्से पर भी अधिकार कर लिया। अगले वर्ष वि० सं० १३५१ (ई० स० १२९४=हि० स० ६९३) में अलाउद्दीन देवगिरि के राजा को हराकर खानदेश होता हुआ मालवे तक पहुँचा।

'तारीख़ फरिश्ता' में लिखा है।[2] कि हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६२=ई० स० १३०५) में कोक ने ४० हज़ार सवार और १ लाख

---

[1] अब्दुल्ला वसाफ़ ने हि० स० ६९९=वि० सं० १३५७=ई० स० १३००) के करीब 'तज़ियतुल अमसार' नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें वह लिखता है कि इस पुस्तक के प्रारम्भ करने के ३० वर्ष पूर्व मालवे का राजा मर गया। इस पर राज्याधिकार के लिये उसके पुत्र और मंत्री में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। अन्त में बड़ी ख़ून ख़राबी के बाद दोनों ने राज्य को आपस में बाँट लिया। इससे बाहर वालों को वहाँ पर लूट मार करने का मौक़ा हाथ लगा। उस समय मालवे में कुल मिलाकर १८,९३,००० नगर और गाँव थे और वहाँ का 'किरबा' नामक वस्त्र (Linen) बहुत बढ़िया होता था।

(ईलियट की हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भा० ३, पृ० ३१)

उस समय मालवे पर परमार नरेश जयसिंह तृतीय या अर्जुन वर्मा द्वितीय का अधिकार था।। परन्तु उनके इतिहास में इस घटना का पता नहीं चलता।

[2] तारीख़ फ़रिश्ता, भा० १, पृ० ११९।

पैदल सिपाही लेकर ऐनुलमुल्क का सामना किया। अन्त में उज्जैन, माँडू, धार और चन्देरी पर ऐनुलमुल्क का अधिकार हो गया।

'तारीखे अलाई' में लिखा[1] है कि मालवे के राव महलकदेव और उसके मंत्री कोका ने, जिनकी सेना में, चुने हुए ३०-४० हजार सवार, और अनगिनती के पैदल सिपाही थे, शाही सेना का सामना किया—परन्तु जीत अलाउद्दीन के ही हाथ रही। इसी युद्ध में कोका मारा गया। इसके बाद ऐनुलमुल्क मालवे का हाकिम बनाया गया और उसे महलकदेव को माँडू से निकाल देने की आज्ञा दी गई। कुछ काल बाद एक जासूस द्वारा क़िले के गुप्त मार्ग का पता लगा कर वह एकाएक उसमें घुसगया और उसने महलकदेव को मार डाला। यह घटना हि० स० ७०५ (वि० सं० १३६२=ई० स० १३०५) की है। इसके बाद सुलतान ने माँडू का प्रबन्ध भी ऐनुलमुल्क को सौंप दिया।

शायद इस घटना का सम्बध भोज द्वितीय से हो। परन्तु इसके बारे में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कह सकते।

'तारीख फ़ीरोज शाही'[2] में रणथंभोर दुर्ग के विजय के पूर्व ही मालवे के धार तक के प्रदेश का अलाउद्दीन के अधिकार में आ जाना लिखा है। रणथंभोर का दुर्ग हि० स० ७०० (वि० सं० १३५८=ई० स० १३०१) में विजय हुआ था।

सादड़ी (मारवाड़) से मिले वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के लेख[3] में लिखा है। कि गुहिलवंशी लक्ष्मसिंह ने मालवे के राजा गोगदेव को हराया था।

---

[1] ईलियट की हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भा० ३, पृ० ७६।

[2] ईलियट की हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, भा० ३, पृ० १७५

[3] भावनगर इन्सक्रिपशन्स पृ० ११४

यह लक्ष्मणसिंह वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अलाउद्दीन

'मीराते सिकन्दरी' में लिखा है कि—हि० स० ७९९ (वि० सं० १४५४=ई० स० १३९७) के करीब यह ख़बर मिली कि माँडू का हिन्दू राजा मुसलमानों पर अत्याचार करता है। यह सुनकर गुजरात के सूबेदार ज़फ़र (मुजफ़्फ़र प्रथम) ने माँडू पर चढाई की। यह देख वहाँ का राजा अपने मजबूत क़िले में जा घुसा। परन्तु एक वर्ष कुछ महीनों तक घिरे रहने के बाद उसने आगे से मुसलमानों को न सताने और ख़िराज देते रहने का वादा कर अपना पीछा छुड़ाया। इसके बाद ज़फ़रख़ाँ वहाँ से अजमेर चला गया।

'तबकाते अकबरी' और 'फ़रिश्ता' में माँडू के स्थान पर माँडलगढ़ लिखा है। परन्तु वि० सं० १४५४=ई० स० १३९७ के बहुत पूर्व ही मालवे पर मुसलमानों का अधिकार हो चुका था। इसलिये 'मीराते सिकन्दरी' के उपर्युक्त लेख पर विश्वास नहीं, किया जा सकता। शायद यहाँ पर मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मंडोर के स्थान पर माँडू लिख दिया गया हो।

'मिराते सिकन्दरी' से यह भी ज्ञात होता है कि हि० स० ७४४ (वि० सं० १४०१=ई० स० १३४४) के करीब मुहम्मद तुग़लक़ ने मालवे का सारा प्रदेश अज़ीज़ हिमार को सौंप दिया था। यह पहले धार का हाकिम था।

दिल्ली के बादशाह फ़ीरोजशाह तुग़लक़ के समय दिलावर खाँ ग़ोरी मालवे का हाकिम था।[1] परन्तु तुग़लक़ों का प्रभाव कमज़ोर होने पर वि० सं० १४५८ (ई० स० १४०१=हि० स० ८०४) में वह स्वतन्त्र

से युद्ध करते हुए चित्तौड़ में मारा गया था। परन्तु गोगदेव का पता नहीं चलता है। शायद फारसी तवारीखों का कोक और यह गोग एक ही हो।

[1] स्वर्गीय मुन्शी देवी प्रसादजी ने महमूद तुग़लक़ के राज्य समय इसको मालवे की हकूमत का मिलना लिखा है।

हो गया। इसकी राजधानी धार में थी। परन्तु इसके बाद इसके पुत्र होशङ्ग के समय से माँडू को राजधानी का पद प्राप्त हुआ।

हि० स० ९७० (वि० सं० १६१९=ई० स०१५६२) में अकबर के समय मालवे पर मुग़लों का अधिकार हुआ और इसके बाद शायद वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में ऊदाजी राव पँवार ने फिर से धार विजय कर वहाँ पर हिन्दू राज्य की स्थापना की।

इस प्रकार मालवे पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने से वहाँ के परमारनरेशों की एक शाखा ने अजमेर प्रान्त में अपना निवास क़ायम किया।[1]

मालवे में इस समय राजगढ़ और नरसिंहगढ़ दो राज्य परमारों के हैं।

यद्यपि बुँदेलखंड में छतरपुर और मालवे में धार और देवास के राजवंश भी परमार क्षत्रिय हैं, तथापि आजकल छतरपुरवाले बुँदेलों में और धार और देवासवाले मरहटों में मिल गए हैं।

---

[1] पिशांगण के तालाब पर के वि० सं० १५३२ के लेख में लिखा है कि जिस परमार वंश में मुञ्ज और भोज हुए थे उसी में हम्मीर का जन्म हुआ। उसका पुत्र हरपाल और पौत्र महीपाल था। महीपाल का पुत्र रघुनाथ हुआ। उसकी रानी (बाहड़मेर के राठोड़ दुर्जनशल्य की पुत्री) राजमती ने उक्त तालाब बनवाया था।

पड़ोसी और सम्बन्ध रखनेवाले राज्य

गुजरात

वि० सं० ८१४ (ई० स० ७५७) के करीब खलीफ़ा अलमन्सूर द्वारा नियत किए गए सिन्ध के अरब—शासक 'हशाम इब्न अमरु अल तघलबी' के सेनापति अमरु बिन जमाल ने काठियावाड़ पर चढ़ाई कर वलभी के राजवंश को कमज़ोर कर दिया।

इसके बाद गुजरात में चावड़ावंश ने ज़ोर पकड़ा। अणहिल पाटण (अनहिलवाड़ा) नामक नगर इसी वंश के राज्य समय बसाया गया था। इन चावड़ों ने करीब २०० वर्ष राज्य किया। इसके बाद वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) में चालुक्य (सोलङ्की) मूलराज ने उनसे गुजरात का प्रदेश छीन लिया। उस समय से वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) के करीब तक वहाँ पर सोलङ्कियों का राज्य रहा और इसी के आसपास धौलका के बघेलों ने उन्हें हटाकर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु वि० सं० १३५६ (ई० स० १२९९) में वे भी मुसलमानों द्वारा वहाँ से हटा दिए गए।

इन गुजरातवालों और मालवे के परमारों के बीच अधिकतर झगड़ा चलता रहता था।

दक्षिण

दक्षिण में पहले राष्ट्रकूटों का राज्य था। इसके बाद वहाँ पर चालुक्यों (सोलंकियों) का अधिकार हुआ। बादामी के सोलंकी पुलकेशी द्वितीय ने वैसवंशी प्रतापी हर्ष को भी नर्मदा के किनारे हरा दिया था।

वि० सं० ८०५ (ई० स० ७४७) के करीब से वहाँ पर दुबारा राष्ट्रकूटों का प्रबल राज्य स्थापित हुआ इस वंश के छठे राजा दन्तिवर्मा (दन्तिदुर्ग द्वितीय) ने उज्जैन में जाकर बहुत से सुवर्ण और रत्नों का दान किया था और इस वंश के आठवें राजा गोविन्दराज द्वितीय के समय (वि० सं० ८३० से ८४२ तक ई० स० ७७३ से ७८५ तक) दक्षिण के राष्ट्रकूटराज्य की सीमा मालवे की सीमा से मिल गई थी। दसवें राजा गोविन्द (तृतीय) ने लाट (भड़ोंच) पर अधिकार कर वहाँ का राज्य अपने भाई इन्द्रराज को दे दिया था। इसी इन्द्र से लाट के राष्ट्रकूटों की दूसरी शाखा चली।

दक्षिण के ग्यारहवें राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (प्रथम) ने मान्य-खेट को अपनी राजधानी बनाया और अट्ठारहवें राजा खोट्टिग को मालवे के परमार नरेश सीयक (श्रीहर्ष) द्वितीय ने हराया था। यह सीयक भोज का दादा था। इसके बाद वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) के करीब चालुक्य (सोलंकी) तैलप द्वितीय ने राष्ट्रकूटवंश के उन्नीसवें राजा कर्कराज द्वितीय को हराकर दक्षिण के राष्ट्रकूटराज्य समाप्ति करदी।

इसी तैलप द्वितीय से कल्याण के पश्चिमी चालुक्यों की शाखा चली थी। जिसका राज्य वि० सं० १२४६ (ई० स० ११८९) के करीब तक रहा। इसी तैलप ने भोज के चचा मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) को युद्ध में परास्त कर (कैद करके) मार डाला था और इसी के वंश के पाँचवें राजा सोमेश्वर (आहवमल्ल) के सामने धारेश्वर-भोज को भी एक बार हार माननी पड़ी थी। वि० सं० १२४६ (ई० स० ११८९) के करीब इस वंश के ग्यारहवें राजा सोमेश्वर चतुर्थ के समय देवगिरि के यादव राजा भिल्लम ने इस शाखा के राज्य के उत्तरी और पूर्वी हिस्से तथा होयशलनरेश वीर-बल्लाल ने दक्षिणी हिस्सा छीन लिया। इससे इन पश्चिमी सोलङ्कियों के राज्य की समाप्ति हो गई।

पिछले यादवनरेश

वि० सं० १२४४ (ई० स० ११८७) के करीब यादव राजा भिल्लम ने दक्षिण में देवगिरि (दौलताबाद) नामक नगर बसाया था। इसके बाद शीघ्र ही इसने पश्चिमी सोलङ्कियों के राज्य का बहुत सा हिस्सा छीन अपने राज्य में मिला लिया। इसके वंशजों का राज्य वि० सं० १३७५ (ई० स० १३१८) तक रहा। जिस समय वि० सं० १२६६ (ई० स० १२०९) के करीब मालवे के परमार राजा सुभट वर्मा ने अनहिलवाड़ा (गुजरात) के सोलंकी भीमदेव द्वितीय पर चढ़ाई की थी उस समय शायद देवगिरि का यादव नरेश सिंघण भी उसके साथ था।

परन्तु बॉम्बे गजटियर में लिखा[1] है कि सिंघण ने सुभट वर्मा को अपने अधीन कर लिया था। ऐसी हालत में, स्वयं सुभट वर्मा ने यादवनरेश सिंघण के सामन्त की हैसियत से ही यह चढ़ाई की होगी।

इस वंश का (वि० सं० १३५७=ई० स० १३०० के करीब का) अन्तिम प्रतापी राजा रामचन्द्र परमारनरेश भोज द्वितीय का मित्र था।

चेदि के राजा

उस समय त्रिपुरी (तेवर-जबलपुर के पास) में हैहयवंशियों का राज्य था। इस वंश का सबसे पहला नरेश, जिसका नाम उनकी प्रशस्तियों में मिलता है कोकल्लदेव प्रथम था। इन हैहयों (कलचुरियों) और मालवे के परमारों के बीच भी बहुधा लड़ाई रहा करती थी।

भोज के चचा मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) ने हैहयवंश के सातवें राजा युवराजदेव द्वितीय को, और स्वयं राजा भोज ने नवें राजा गाङ्गेयदेव को हराया था। इसका बदला लेने के लिये ही, गाङ्गेयदेव के पुत्र कर्णदेव ने, अनहिलवाड़े (गुजरात) के राजा भीमदेव प्रथम को साथ लेकर, भोज पर चढ़ाई की थी। उसी समय के करीब भोज का स्वर्गवास

---

[1] बॉम्बे गैजेटियर भा० १, खण्ड २, पृ० २४०।

हो गया। इसके बाद परमारनरेश उदयादित्य ने[1] कर्ण को हराकर इसका बदला लिया। इसी कर्ण के पोते गयकर्ण का विवाह उदयादित्य की नवासी (मेवाड़ के गुहिलनरेश विजयसिंह की कन्या) आल्हणदेवी से हुआ था।

चन्देलराज्य

यद्यपि ईसवी सन् की नवीं शताब्दी में जेजाकभुक्ति (जेजाहुती-बुंदेलखण्ड) के चन्देलनरेशों का प्रताप बहुत बढ़ गया था तथापि परमारों का इनके साथ अधिक सम्बन्ध न रहा था।

चन्देलनरेशों के आश्रित कवियों ने लिखा है कि भोज (प्रथम) चन्देलनरेश विद्याधर से डरता था और चन्देलनरेश यशोवर्मा मालव नरेशों के लिये यमस्वरूप था। राजा धङ्गदेव के समय चन्देलराज्य की सीमा मालवे की सीमा से मिल गई थी।

काश्मीरराज्य

राजा भोज ने सुदूर काश्मीरराज्य के कपटेश्वर (कोटेर) तीर्थ में पापसूदन का कुण्ड बनवाया था और वह सदा वहीं के लाए हुए जल से मुँह धोया करता था। इसके लिये वहाँ का जल मँगवाने का पूरा पूरा प्रबन्ध किया गया था।

साँभर का राज्य

राजा भोज ने शाकम्भरी (साँभर) के चहुआननरेश वीर्यराम को मारा था, परन्तु परमारनरेश उदयादित्य ने गुजरात के राजा (भीमदेव के पुत्र) कर्ण से बदला लेने के लिये साँभर के चौहाननरेश दुर्लभराज तृतीय से मेल कर लिया था। इसी से इन दोनों ने मिलकर उस (कर्ण) पर चढ़ाई की और उसे युद्ध में मार डाला। रणथंभोर के चौहाननरेश जैत्रसिंह ने और हम्मीर ने मालवे पर हमले कर परमार राज्य के कुछ प्रदेश दबा लिए थे।

---

[1] यह भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह के बाद गद्दी पर बैठा था।

भोज के लिखे माने जानेवाले और उससे सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न भिन्न विषयों के ग्रन्थ

पहले एक अध्याय में भोज के लिखे भिन्न भिन्न विषयों के ग्रन्थों का विवरण देने का उल्लेख कर चुके हैं। इसलिये इस अध्याय में उनमें से कुछ का विवरण देने की यथा साध्य चेष्टा करते हैं।

राजा भोज ने भिन्न भिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखी थीं। परन्तु उसकी बनाई समझी जानेवाली पुस्तकों में से वास्तव में कितनी स्वयं उसकी बनाई हैं, और कितनी अन्य विद्वानों ने उसके नाम से बनाई हैं, इसका निर्णय करना कठिन है।

भोज की बनाई समझी जानेवाली पुस्तकों की सूची इस प्रकार है :—

ज्योतिष—१ राजमृगाङ्क[1] (करण), २ राजमार्तण्ड, ३ विद्वज्जनवल्लभ प्रश्नज्ञान, ४ आदित्य प्रतापसिद्धान्त, और ५ भुजबलनिबन्ध।

अलङ्कार—६ सरस्वतीकण्ठाभरण और ७ शृङ्गारप्रकाश।

योगशास्त्र—८ राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति (पातञ्जल योगसूत्र की टीका)

राजनीति और धर्मशास्त्र—९ पूर्तमार्तण्ड, १० चाणक्य-राजनीतिशास्त्र, ११ व्यवहारसमुच्चय १२ चारुचर्या, १३ विविधविद्याविचार चतुरा और १४ सिद्धान्तसारपद्धति।

शिल्प—१५ समराङ्गणसूत्रधार और १६ युक्ति कल्पतरु।

---

[1] ऑफ्रेक्ट ने अपनी सूची में 'राजमृगाङ्क' के आगे विषय का निर्देश करते हुए ज्योतिष और वैद्यक दोनों विषयों के नाम दिए हैं।

नाटक और काव्य—१७ चम्पूरामायण या भोज चम्पू के ५ काण्ड, १८ महाकालीविजय, १९ विद्याविनोद, २० शृङ्गारमञ्जरी (गद्य काव्य) और २१ दो कूर्मशतक (प्राकृत में) ।

व्याकरण—२२ प्राकृतव्याकरण, और २३ सरस्वतीकण्ठाभरण ।

वैद्यक—२४ विश्रान्त विद्याविनोद, २५ आयुर्वेदसर्वस्व, और २६ राजमार्तण्डयोगसारसंग्रह ।

शैवमत—२७ तत्वप्रकाश, २८ शिवतत्त्वरत्नकलिका, और २९ सिद्धान्तसंग्रह ।

संस्कृत कोष—३० नाम मालिका और ३१ शब्दानुशासन ।

अन्य—३२ शालिहोत्र, ३३ सुभाषितप्रबन्ध और ३४ राजमार्तण्ड (वेदान्त) ।

थीओडोर ऑफ़रेक्ट (Theodor Aufrecht) की कैटैलौगस् कैटैलौगरम् (Catalogus Catalogorum) नामक वृहत् सूची में भोज के बनाये २३ ग्रन्थों के नाम[1] दिए हैं ।

धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कोष, व्याकरण, आदि के अनेक लेखकों ने अपने अपने ग्रन्थों में भोज के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों के अवतरण दिए हैं । इससे भी ज्ञात होता है कि भोज ने इन विषयों पर ग्रन्थ लिखे थे ।

ऑफ़रेक्ट (Aufrecht) ने लिखा है कि शूलपाणि ने (अपने बनाए, प्रायश्चित्तविवेक में), (बौद्ध लेखक) दशबल ने, अल्लाडनाथ ने और रघुनन्दन ने अपने ग्रन्थों में भोज का (धर्मशास्त्र के लेखक के नाम से) उल्लेख किया है । भावप्रकाश और माधवकृत 'रुग्विनिश्चय' में इसे आयुर्वेद के ग्रन्थों का लेखक कहा है । केशवार्क

[1] देखो पृ० ४१८ । सम्भव है हमारे दिए ३४ नामों में से कुछ ग्रंथ किसी अन्य भोज नामधारी के बनाए हुए हों ।

ने इसे ज्योतिषसम्बन्धी ग्रन्थों का लेखक माना है। क्षीरस्वामी, सायण और महीप ने इसे व्याकरण और कोषकार कहा है। और कविचित्तप, दिवेश्वर, विनायक, शङ्करसरस्वती, और कुटुम्बदुहितृ ने इसकी काव्य शक्ति की प्रशंसा की है।

इसी प्रकार अन्य लेखकों ने भी इसकी प्रशंसा में अनेक श्लोक लिखे हैं। उनमें से कुछ का आगे उल्लेख किया जायगा।

राजमृगाङ्कः (करण)

यह राजा भोज का बनाया ज्योतिष का ग्रन्थ है। इसके केवल १४ हस्तलिखित पत्र(२८ पृष्ठ) ही हमें प्राप्त हुए हैं।[1] इस लिखित पुस्तक के पहले के दो पत्रों में अहर्गण लाने की, सब ग्रहों के अब्द-बीजानयन की, और उदयान्तरानयन की विधियाँ उदाहरण देकर[2] समझाई गई हैं। परन्तु इस सम्बन्ध के असली ग्रन्थ के श्लोक नहीं दिए हैं।

तीसरे पृष्ठ के प्रारम्भ से 'राजमृगाङ्क' के श्लोक लिखे हैं। परन्तु यह पृष्ठ (१) मध्यमाधिकार के २५वें श्लोक के उत्तरार्ध से प्रारम्भ होता है।

....डिकाः।

भुक्तिर्जातविनाडीघ्ना खाभ्रषड्हि (३६००) भाजिताः॥

इसके बाद इसमें (२) स्पष्टाधिकार, (३) त्रिप्रश्नाधिकार[3],

---

[1] ये पत्र ज्योतिर्विद् पं० नृसिंहलाल शर्मा, जोधपुर, के संग्रह से मिले हैं।

[2] उदाहरण में विक्रम संवत् १६४० और शक संवत् १५०६ दिया गया है।

[3] इसके प्रारम्भ का यह श्लोक है :—

ब्रह्मतुल्यदिनसंचये युते पक्षसप्तकुनवाष्टभूमिभिः (१८९१७२)।
खण्डखाद्यदिनसञ्चयो भवेद्रामभाषितमिदं वचः सदा॥

(४) चन्द्रपर्वाधिकार, (५) सूर्यपर्वाधिकार, (६) ग्रहास्तोदयाधिकार, (७) ग्रहताराायुत्यधिकार, और (८) शृङ्गोन्नत्यधिकार दिए हुए हैं।

समाप्ति का अंश :—

मूल

देवः सराषसहनं ? क्षितिपालमौलि—
मालामरि (री) चिनिचयो (प) चित्यां (तां) घ्रिपीठः।
व्युत्पत्तिसारमिह राजमृगाङ्कसंज्ञ—
मेतद्व्यधाच्च करणं रणरङ्गमल्लः[1] ॥

अर्थ

राजाओं के मस्तकों पर की रत्नों की मालाओं की किरणों से शोभित चरणों वाले, और युद्धक्षेत्र के वीर, राजा ने बुद्धि बढ़ाने के लिये सार रूप इस 'राजमृगाङ्क' नामक ग्रन्थ को बनाया।

मूल

इति श्री राजमृगाङ्के शृङ्गोन्नत्यधिकारोष्टमः।

अर्थ

यहाँ पर 'राजमृगाङ्क' में 'शृङ्गोन्नति' नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

[1] इस प्रति में राजा भोज का नाम नहीं मिलता है। ऊपर उद्धृत किए ग्रन्थान्त के श्लोक में भी 'देवः' और 'रणरङ्गमल्लः' ही लिखा है। इसलिये इस पुस्तक के कर्ता के विषय में निश्चतरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

राजमार्तण्डः[1]

श्लोक संख्या १४२१। विषय ज्योतिष।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलं स्कंधैस्त्रिभिर्ज्योतिषं[2]
तस्योच्छित्तिभयात्पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्।
भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरो व्याख्यां तु सर्वां व्यधा—
दित्थं यत्प्रवदन्ति योगकुशलास्तस्मै नमो भास्वते ॥१॥

अर्थ

योगियों के कथनानुसार जिस सूर्य ने, अपने बनाए तीन स्कन्धों वाले, बड़े ज्योतिष-शास्त्र के कलियुग में नष्ट हो जाने के भय से, वराह-मिहिर के रूप में, पृथ्वी पर आकर फिर से उसकी पूरी व्याख्या की, उस सूर्य को नमस्कार है।

मूल

पूर्वाचार्यमतेभ्यो यद्यच्छ्रेष्ठं लघु स्फुटं बीजम्।
तद्बुद्धिदं शुभकरं रहस्यमभ्युद्यते वक्तुम् ॥

---

[1] यह पुस्तक बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस में छपी है।

[2] होरा, गणित, और संहिता ये ज्योतिष के ३ स्कन्ध हैं।

'वाराही संहिता' में लिखा है :—

त्रिस्कन्धपारंगम एव पूज्यः
श्राद्धे सदा भूसुरवृन्दमध्ये।
नक्षत्रसूची खलु पापरूपो
हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये ॥

अर्थ

पहले के आचार्यों के मतों से जो-जो श्रेष्ठ, आसान, साफ़ और बीजरूप बातें हैं, उन बुद्धि बढ़ानेवाली, और कल्याणदायक, बातों का रहस्य प्रकट करने की कोशिश की जाती है।।

समाप्ति का अंश :—

मूल

भेदांबुभागपरसंशयनीचकर्म-
दंभव्रतानि च भवन्त्युदये घटस्य।
मीनोदये च शुभमंगलपौष्टिकानि
कर्माणि चाप्यभिहितानि च चापलग्ने ॥

अर्थ

फोड़ना, पानी का बँटवारा, दूसरे पर सन्देह, नीच काम, ढकौसले के व्रत, आदि कुम्भलग्न के उदय पर करने चाहिए, मीन और धनुषलग्न में अच्छे मंगलदायक और पुष्टि करनेवाले काम (करने) कहे हैं।

मूल

इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीभोजविरचितं राजमार्तण्डाभिधानं। ज्योतिःशास्त्रं समाप्तम्।

अर्थ

यहाँ पर श्रीमहाराजाधिराज श्रीभोज का बनाया 'राजमार्तण्ड' नामक ज्योतिष का ग्रन्थ समाप्त हुआ।

इस ग्रन्थ में जीवन से मरण पर्यन्त होनेवाली करीब-करीब सब ही घटनाओं के मुहूर्त दिए गए हैं। इसके 'रतिविधि फलं' नामक प्रकरण में 'सुराचार्य,' 'विशालाक्ष' और 'विष्णु' के और वहीं पर 'गण्डयोग' में 'यवनाधिपति', 'भागुरि', 'गंडगिरि', 'वराहमिहिर' आदि के मत भी दिए हैं और विवाह प्रकरण में देशाचार, आदि लिखे हैं।

इसके यात्राप्रकरण में यह श्लोक लिखा है :—

मूल

अथ विदितजन्मसमयं नृपमुद्दिश्य प्रवक्ष्यते यात्रा ।
अज्ञाते तु प्रसवे गमने गमनं स्यात्कचित्कचित्[1] ॥३८॥

अर्थ

यहाँ पर उस राजा को उद्देश करके, जिसका जन्म समय जाना हुआ है, यात्रा की तिथियाँ कही जाती हैं। परन्तु जिसका जन्मसमय मालूम न हो उसका उन गमनयोग्य तिथियों में कहीं-कहीं ही गमन हो सकता है।

इस श्लोक की उक्ति को देखकर अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ किसी विद्वान् ने बनाकर भोज के नाम से प्रसिद्ध किया होगा।

सम्भवत: 'भोजदेव संग्रह' का कर्ता दामोदर ही इसका भी कर्ता हो तो आश्चर्य नहीं।

---

[1] इसका अर्थ स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। ऐसा ही एक श्लोक 'भोजदेवसंग्रह' में भी मिलता है :—

वक्ष्यामि भूपमधिकृत्य गुणोपपन्नं
विज्ञातजन्मसमयं प्रविभक्तभाग्यम्।
अज्ञातसूतिमथवाविदितास्य भाग्यं
सामुद्रयाश्रिकनिमित्तशतैः पृथक्कैः॥

सम्भवतः इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि उक्त स्थानों पर जो बातें लिखी गई हैं वे विशेष कर राजा भोज के लग्न या उसकी राशि के लिये ही विशेष श्रेष्ठ हैं। परन्तु ज्योतिषशास्त्र के आचार्य ही इन श्लोकों के भावों का पूर्णरूप से निश्चय कर सकते हैं।

इसी यात्राप्रकरण में तिथियों का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

मूल

यो द्वादशीं प्राप्य चतुर्दशीं वा
मति[1] प्रयाणं कुरुतेऽष्टमीं वा।
स नाशमायात्यचिरेण राज-
राजेव चामात्य विलोमचेष्टः ॥५१॥

अर्थ

जो द्वादशी, चतुर्दशी, या अष्टमी को यात्रा करता है वह मंत्री के द्वारा धोखा खाए हुए 'राजराज' की तरह नाश को प्राप्त होता है।

बम्बईप्रान्त के (धारवाड़ ज़िले के होट्टूरनामक गाँव) से मिले लेख से ज्ञात होता है कि चालुक्य (सोलंकी) राजा सत्याश्रय ने चोल-नरेश राजराज (प्रथम) को हराकर भगा दिया था।[2] यह घटना वि० सं० १०५४ और १०६५ (ई० स० ९९७ और १००९) के बीच की है।

विद्वज्जनवल्लभम्[3]

यह राजा भोज का बनाया ज्योतिष-शास्त्र का ग्रंथ है। इसमें निम्न लिखित १७ अध्याय हैं :—

---

[1] इसका अस्पष्ट नहीं होता। सम्भव है इन दिनों के प्रयाण को ही 'मति प्रयाण' के सामान मानकर इस शब्द का प्रयोग किया गया हो या यहां पर 'अमा' अमावस्या के दिन के प्रयाण से तात्पर्य हो।

[2] बाम्बे गज़टियर, भा० १, खण्ड २, पृ० ४३३।

[3] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्रीद्वारा संपादित गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास की संस्कृत पुस्तकों की सूची भा० ३, खण्ड १, 'बी', पृ० ३७०६-३७०७।

१ शुभाशुभाध्यायः।	९ बन्धमोक्षाध्यायः।
२ शत्रुसमागमाध्यायः	१० रोगाध्यायः।
३ गमनागमनाध्यायः	११ कायावरणाध्यायः।
४ प्रोषिताध्यायः।	१२ गर्भवासाध्यायः।
५ यात्राफलाध्यायः।	१३ वृष्ट्यध्यायः।
६ जयापजयाध्यायः।	१४ निक्षिप्तधनाध्यायः।
७ सन्धानाध्यायः।	१५ नष्टद्रव्याध्यायः।
८ आश्रयणीयाध्यायः।	१६ धातु मूल जीव चिन्ताध्यायः।

पुस्तक की समाप्ति का अंश :—

मूल[1]

धातुर्मूलं भवति च धनं[2] जीवमित्योजराशौ
युग्मे राशौ त्रयमपि भवेदेतदेव प्रतीपम्।
लग्ने योऽशस्सकलसुधिया गण्य एव क्रमात्स्यात्
संक्षेपोयं नियतमुदितो विस्तरादत्र भेदः॥

अथ

विषम राशि (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन, और कुम्भ) का

---

[1] वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशा की बनाई 'षट्पञ्चाशिका' में भी इस विषय का इससे मिलता हुआ एक श्लोक है :—

धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ
युग्मे विद्यादेतदेव प्रतीपम्।
लग्ने योंऽशस्तत्क्रमाद्गण्य एव
संक्षेपोयं विस्तरात्तत्प्रभेदः॥

(षट्पंचाशिका, अध्याय १, श्लोक ७)

[2] यहां पर 'धनं' शब्द का अर्थ साफ़ नहीं है।

लग्न हो तो उनके नवांश के क्रम से धातु, मूल और जीव चिन्ता होती है। अर्थात् पहले नवांश में धातु, दूसरे में मूल, तीसरे में जीव चिन्ता, जाने। इसी प्रकार अगले नवांशों में भी समझना चाहिए। परन्तु युग्म (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, और मीन) में इससे उलटा जाने। अर्थात् पहले नवांश में जीव, दूसरे में मूल, और तीसरे में धातु-चिन्ता समझे। इसी प्रकार अगले नवांशों में भी जाने।

प्रत्येक बुद्धिमान् को लग्न के नवांशो को (पहले के अनुसार) क्रम से गिनना चाहिए। यह निश्चय ही संक्षेप से कहा है। परन्तु विस्तार से इसमें कई भेद होते हैं।

मूल

आज्ञ (ज्ञया) खिलवारिराशिरशना···दिनीं मेदिनीं
शास्तैकां नगरीमिवाप्रतिहतः प्रत्यर्थिपृष्टं फलम्।
प्रश्नज्ञानमिदं सपार्थिवशिरोविन्यस्तपादाम्बुजः
श्रीविद्वज्जनवल्लभाख्यमकरोच्छ्रीभोजदेवो नृपः॥

अर्थ

जो अपनी आज्ञा से ही सारे समुद्रों की तागड़ी धारण करने-वाली पृथ्वी पर एक नगरी के समान शासन करता है, और जिसने सब राजाओं के सिरों पर पैर रख दिया है; ऐसे, अकुण्ठित गति, राजा भोजदेव ने प्रत्येक पूछनेवाले के प्रश्न के फल को बतलाने वाले इस 'विद्वज्जन वल्लभ' नामक प्रश्नज्ञान के ग्रंथ को बनाया।

मूल

इति विद्वज्जनवल्लभे धातुमूलजीवचिन्ताध्यायः।

अर्थ

यहाँ पर "विद्वज्जनवल्लभ" नामक ग्रंथ में धातु, मूल, और जीवचिन्ता का अध्याय समाप्त हुआ।

भुजबल निबन्धः[1]

यह ज्योतिष का ग्रंथ है और इसमें नीचे लिखे १८ प्रकरण हैं:—

१ रिष्टाध्यायः।	१० प्रथमरजोनिरूपणम्।
२ स्त्रीजातकलक्षणम्।	११ गृहकर्म प्रवेशकरणम्।
३ योगाध्यायः।	१२ सद्योवृष्टि लक्षणम्।
४ निन्दितयोगाध्यायः।	१३ कालशुद्धिनिर्णयः।
५ अष्टोत्तरशतवर्षदशाविधिः।	१४ योगयात्रा।
६ कर्णादिवेधनम्।	१५ ग्रहयोगोत्पातलक्षणसंक्षेपः।
७ व्रत-प्रकरणम्।	१६ संक्रान्तिस्नानविधिः।
८ विवाहमेलकदशकम्।	१७ चन्द्रसूर्यग्रहणविधिः।
९ विवाहः।	१८ द्वादशमासकृत्यम।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

इन्दीवरदलश्यामं पीताम्बरधरं हरिम्।
नत्वा तु क्रियते यस्माज्ज्योतिश्शास्त्रमनुत्तमम्॥

अर्थ

नील कमल की पँखड़ी के समान श्याम रंगवाले, पीताम्बरधारी, विष्णु को प्रणाम करके श्रेष्ठ ज्योतिष के ग्रंथ की रचना की जाती है।

मूल

न तत्सहस्रकरिणां वाजिनां वा चतुर्गुणम्।
करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः॥

---

१ महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री संपादित गवर्नमेंट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खण्ड १, 'ए', पृ० ४२६२-४२६३।

अर्थ

जो काम स्थान और समय को जाननेवाला ज्योतिषी कर सकता है, वह काम न तो एक हज़ार हाथी ही कर सकते हैं, न इससे चौगुने (चार हज़ार) घोड़े ही।

समाप्ति का अंश:—

मूल

शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च।
शुभराशिविलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम्॥

अर्थ

सोम, बुध, गुरु, शुक्र, और रवि वारों में, मृदु (मृग, चित्रा, अनुराधा और रेवती), क्षिप्र (अश्विनी, पुष्य, हस्त, और अभिजित), और ध्रुव (रोहिणी और तीनों उत्तरा) नक्षत्रों में, और शुभराशि के लग्नों में शान्ति और पुष्टि करनेवाला कार्य करना चाहिए।

मूल

इति श्रीभोजराजकृतौ भुजबलनिबन्धे ज्योतिश्शास्त्रे द्वादशमासकृत्यं समाप्तम्।

अर्थ

यहाँ पर भोजराज के बनाए 'भुजबलनिबन्ध' नामक ज्योतिष के ग्रंथ में बारह महीनों के कार्य समाप्त हुए।

परन्तु इस ग्रंथ में भोज के नाम के साथ किसी उपाधि-विशेष के न होने से नहीं कह सकते कि यह कौन सा भोजराज था?

सरस्वती कण्ठाभरणम्[1]

यह अलङ्कार का ग्रन्थ है और इसकी श्लोक संख्या ८३१६ है। इसमें कुल ५ परिच्छेद हैं। उनमें काव्य के गुण और दोष, शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, उभयालङ्कार, रसस्वरूप, आदि, पर विशदरूप से विचार किया गया है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ का अंशः—

मूल

ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम्।
यस्याः सूक्ष्मादिभेदेन वाग्देवीं तामुपास्महे॥

अर्थ

ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य ये जिसके चारों स्थान हैं, ऐसी वाणी की देवता (सरस्वती) की हम सूक्ष्मा, आदि के भेद से उपासना करते हैं।

मूल

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्व्वन् कीर्तिं प्रीतिञ्च विन्दति॥

अर्थ

दोषों से रहित, गुणों से युक्त, अलङ्कारों से सुशोभित, और रस-वाले काव्य को बनाता हुआ कवि (संसार में) यश और प्रेम को प्राप्त करता है।

---

[1] बङ्गाल गवर्नमेंटद्वारा प्रकाशित और राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित, हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ६, पृ० २२३-२२७।

ग्रन्थ समाप्ति पर का अंश :—

मूल

इति निगदितभङ्ग्यानङ्गसर्वस्वमेतद्
विविधमपि मनोभिर्भावयन्तोऽप्यखेदम् ।
तदनुभवसमुत्थानन्दसम्मीलिताक्षाः
परिषदि परितोषं हन्त सन्तः प्रयान्तु ॥

अर्थ

इस प्रकार कहे हुए तरीके से, इस कामदेव के सर्वस्व को, प्रसन्न-चित्त होकर, अनेक तरह से समझते हुए, और इसके अनुभव से उत्पन्न हुए आनन्द से झपकी हुई आँखोंवाले, सत्पुरुष सभा मे सन्तोष प्राप्त करें।

मूल

यावन्मूर्ध्नि हिमांशुकन्दलभृति स्वर्वाहिनी धूर्जटे-
र्यावद्वक्षसि कौस्तुभस्तबकिते लक्ष्मीर्मुरद्वेषिणः ।
यावच्चित्तभुवस्त्रिलोकविजयप्रौढं धनुः कौसुमं
भूयात्तावदियं कृतिः कृतधियां कर्णावतंसोत्पलम् ॥

अर्थ

जब तक चन्द्रमा की कलावाले महादेव के मस्तक पर गंगा रहेगी, जब तक कौस्तुभमणि धारण किए हुए विष्णु की छाती से लगी लक्ष्मी रहेगी, और जब तक कामदेव का तीन लोक जीतने में विख्यात फूलों का धनुष रहेगा, तब तक यह रचना (ग्रन्थ) भी बुद्धिमानों के कान को भूषित करनेवाले नीले कमल के समान रहे। (यानी वे इसे सुनते रहें)।

मूल

इति महाराजाधिराज श्रीभोजदेवविरचिते सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कारे रसविवेचनो नाम पञ्चमः परिच्छेदः।

अर्थ

यहाँ पर महाराजाधिराज श्रीभोजदेव के बनाए सरस्वती कण्ठाभरणालङ्कार मे 'रसका विचार' नामवाला पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ।

इस ग्रन्थ पर 'रत्नदर्पण' नाम की टीका भी मिलती है।[1] यह रामसिंहदेव की तरफ़ से रत्नेश्वर पण्डित ने लिखी थी। उसके प्रारम्भ का अंश :—

मूल

श्रीरामसिंहदेवेन दोर्दण्डदलितद्विषा।
क्रियतेऽवन्तिभूपालकण्ठाभरणदर्पणः॥

अर्थ

अर्थात्—अपनी भुजाओं के बल से शत्रुओं के मान को मर्दन करने वाला श्रीरामसिंह देव अवन्ति-नरेश के (सरस्वती-) कण्ठाभरण नामक ग्रन्थ पर (रत्न-) दर्पण नाम की टीका लिखता है।

टीका की समाप्ति का अंश :—

मूल

इति महामहोपाध्याय मनीषिरत्न श्रीरत्नेश्वरविरचिते रत्नदर्पण-नाम्नि सरस्वतीकण्ठाभरणविवरणे........

अर्थ

अर्थात्—यहाँ पर महामहोपाध्याय पण्डितश्रेष्ठ रत्नेश्वर की बनाई सरस्वती कण्ठाभरण की 'रत्नदर्पण' नामक टीका में......

इसके अलावा इसकी एक टीका 'सरस्वती कण्ठाभरण विवरणम्' के नाम से जगद्धर ने भी बनाई[2] थी और दूसरी व्याख्या भट्ट नृसिंह ने लिखी थी[3]।

---

[1] बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित, और राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित, हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ६, पृ० २३०-२३१।

यह सरस्वती 'कंठाभरण' छप चुका है।

[2] काश्मीर के राजकीय संस्कृत पुस्तकालय की सूची पृ० २७५-२७६।

[3] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ३, खंड १, 'बी', पृ० ३५१८-१९।

शृङ्गारप्रकाशः[1]

यह भोजदेव का बनाया साहित्य का ग्रन्थ । इसमें नीचे लिखे ३६ प्रकाश हैं:—

१ प्रकृत्यादिप्रकाशः ।	१९ अर्थशृङ्गारप्रकाशः ।
२ प्रातिपदिकप्रकाशः ।	२० कामशृङ्गारप्रकाशः ।
३ प्रकृत्यादिशब्दप्रकाशः ।	२१ मोक्ष शृङ्गारप्रकाशः ।
४ क्रियाद्यर्थचतुष्टयप्रकाशः ।	२२ अनुरागस्थापनप्रकाशः ।
५ उपाध्यर्थचतुष्टयप्रकाशः ।	२३ विप्रलम्भसम्भोगप्रकाशः ।
६ विभक्त्यर्थादिचतुष्टयप्रकाशः ।	२४ विप्रलम्भान्वर्थप्रकाशः ।
७ केवलशब्दसम्बन्धशक्तिप्रकाशः ।	२५ विप्रलम्भसाधर्म्यवैधर्म्यप्रकाशः
८ साक्षेपशब्दशक्तिप्रकाशः	२६ . . .
९ दोषहानिगुणोपादनप्रकाशः ।	२७ अभियोगविधिप्रकाशः ।
१० उभयालङ्कारप्रकाशः ।	२८ दूतविशेषदूतकर्मप्रकाशः ।
११ रसवियोगप्रकाशः ।	२९ दूतसम्प्रेषणादिलक्षणविचारः ।
१२ प्रबन्धाङ्गचतुष्षष्टिचतुष्टयप्रकाशः।	३० मानप्राशः ।
१३ रतिप्रकाशः ।	३१ प्रवासोपवर्णनम् ।
१४ हर्षादिभावपञ्चकप्रकाशः ।	३२ करुणरसविनिर्णयः ।
१५ रत्यालम्बनविभावप्रकाशः ।	३३ सम्भोगशब्दार्थप्रकाशः ।
१६ रत्युद्दीपनविभावप्रकाशः ।	३४ प्रथमानुरागप्रकाशः ।
१७ अनुभवप्रकाशः ।	३५ मानान्तरादिप्रकाशनम्ः ।
१८ धर्मशृङ्गारप्रकाशः ।	३६ सम्भोगावस्थाप्रकाशः ।

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा संपादित गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खंड १, 'बी', पृ० ४८३१-३४ ।

इस ग्रन्थ के उदाहरणों में अनेक ऐसे ग्रंथों के भी श्लोक हैं, जो इस समय दुष्प्राप्य या अप्राप्य हो गए हैं।

ग्रन्थ के आरम्भ का अंश :—

मूल

अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढ-
मप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भ-
सम्भोगसख्यमिव पातु वपुः पुरारेः॥

अर्थ

नहीं टूटी हुई (साबूत) मेखला (तागड़ी) वाला[1], दृढ़ आलिंगन करने, चुंबन करने, और एक दूसरे का मुख देखने में असमर्थ; ऐसा अर्धनारीश्वर महादेव का, वियोग और सम्भोग की हालतों का एक ही स्थान पर मिलाता हुआ, शरीर (सबको) रक्षा करे।

* * *

मूल

शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य-
बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः।
आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयं तु
शृङ्गारमेव रसनाद्रसमामनामः॥

अर्थ

विद्वानों ने १ शृंगार, २ वीर, ३ करुण, ४ अद्भुत, ५ रौद्र, ६ हास्य, ७ बीभत्स, ८ वत्सल, ९ भयानक, १० और शान्त नामक दस रस कहे हैं। परन्तु हम तो स्पष्ट तौर से अनुभव होने वाला होने से एक शृंगार को ही रस मानते हैं।

---

[1] आलिङ्गनादि के अभाव के कारण।

मूल

वीराद्भुतादिषु च येह रसप्रसिद्धि-
स्सिद्धा कुतोपि वटयक्षवदाविभाति।
लोके गतानुगतिकत्ववशादुपेता-
मेतां निवर्तयितुमेव परिश्रमो नः॥

अर्थ

वड़ में रहने वाले 'यक्ष' की प्रसिद्धि की तरह ही 'वीर', 'अद्भुत' आदि में भी किसी कारण से रस की प्रसिद्धि होगई है। दुनिया में भेड़ की चाल के कारण प्राप्त हुई इस प्रसिद्धि को दूर करने के लिये ही हमारा यह परिश्रम है।

मूल

रत्यादयो यदि रसास्स्युरतिप्रकर्षे
हर्षादिभिः किमपराद्ध(द्ध)मतद्विभिन्नैः।
अस्थायिनस्त इति चेद्भयहासशोक-
क्रोधादयो वद कियच्चिरमुल्लसन्ति॥

अर्थ

यदि अधिकता प्राप्तकर लेने के कारण ही रत्यादि (आठ स्थायी भाव[1]) रस हो सकते हैं तो हर्ष आदि (तैंतीस व्यभिचारी भावों) का क्या दोष है (अर्थात वे भी रस क्यों नहीं मान लिए जाते)? यदि इन्हें अस्थायी कहा जाय तो आप ही कहिए कि भय, हास्य, शोक, क्रोध, आदि ही कितनी देर ठहरते हैं ?

मूल

स्थायित्वमत्र विषयातिशयान्मतं चे-
च्चिन्तादयः कुत उत प्रकृतेर्वशेन।

[1] कहीं कहीं 'शम' को नवाँ स्थायी भाव माना है।

तुल्यैव स्वात्मनि भवेदथ वासनाया-
स्सन्दीपनात्तदुभयत्र समानमेव ॥

अर्थ

यदि विषय की अधिकता के कारण ही स्थायी भाव माना जाता हो तो फिर चिन्ता आदि में भी क्यों नहीं माना जाय? क्योंकि चित्त में वासनाओं की वृद्धि से ही इनकी वृद्धि होती है। इस लिये दोनों में ही समानता है।

मूल

अतस्सिद्धमेतत् रत्यादयश्शृङ्गारप्रभवा इति। एकोनपञ्चाशद्भावाः वीरादयो मिथ्यारसप्रवादाः शृङ्गार एवैकश्चतुर्वर्गैककारणं रस इति।

अर्थ

इससे यह सिद्ध हुआ कि शृंगार से ही रत्यादि की उत्पत्ति होती है। उनचास भाव[1] वाले 'वीर' आदि नाहक ही रस कहलाते हैं। वास्तव में शृंगार अकेला ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देनेवाला रस है।

* * *

मूल

न केवलेह प्रकृतिः प्रयुज्यते न केवलास्सुप्तिङ्जण्क्यजादयः।
भवत्युपस्कार इहापृथग्द्वयोः द्वयार्थमेवोपपदं प्रयुज्यते ॥

---

[1] ८ स्थायी भाव, ३३ व्यभिचारिभाव और ८ सात्विक भाव ये मिलकर उनचास हो जाते हैं।

साहित्य दर्पण में लिखा भी है :—

नानाभिनयसम्बन्धान्भावयन्ति रसान् यतः।
तस्माद्भावा अमी प्रोक्ता स्थायि संचारि सात्विकाः ॥
(तृतीय परिच्छेद, श्लो० १८१)

अर्थ

न तो केवल प्रकृति (धातु) का ही प्रयोग किया जा सकता है। न केवल 'सुप्' 'तिङ्' 'अच्' 'अण' 'क्यज्' आदि प्रत्ययों (affix) का ही। यहाँ पर इन दोनों की ही एक साथ एकता होती है। इन दोनों के लिये ही 'उपपद' का प्रयोग होता है।

समाप्ति का अंश :—

मूल

तदेतत्कामसर्वस्वं तदेतत्काव्यजीवितम्।
य एष द्विप्रकारोपि रसः शृङ्गारसंज्ञकः॥

अर्थ

यह कामकला का सर्वस्व, और काव्य का जीवनभूत (संभोग और वियोग रूप) दोनों प्रकार का रस 'शृंगार।रस' कहाता है।

* * *

मूल

यथांशुमाली पीतांशुः यथानर्चिहु ताशनः।
तथाऽप्रतापो नृपतिरशृङ्गारस्तथा पुमान्॥

अर्थ

जिस प्रकार पीली (मन्द) किरणों वाला सूर्य और बिना ज्वाला वाली अग्नि होती है उसी प्रकार बिना प्रताप वाला राजा और बिना शृंगार (रस) वाला पुरुष होता है।

मूल

यथेन्दुना निशा भाति निशाभिश्च (यथोडुराट्)।
(तथाङ्गनाभिः शृङ्गारः) शृङ्गारेण तथाङ्गना॥

अर्थ

जिस प्रकार चन्द्रमा से रात्रो की शोभा होती है, और रात से चन्द्रमा शोभा पाता है उसी प्रकार स्त्रियों से शृङ्गार और शृंगार से स्त्रियाँ शोभती हैं।

* * *

मूल

रसः शृङ्गार एवैकः भावा रत्यादयो मताः।
प्रकर्षगामिनोऽपीह प्रेमग्लानि श्रमादिवत्॥

अर्थ

रस तो एक शृंगार ही है। 'रति' आदि उसके भाव हैं। ये भाव वृद्धि को प्राप्त होने वाले होने पर भी प्रेम, ग्लानि, और श्रम-के समान ही हैं।

इस ग्रन्थ के अन्त में भी 'इति निगदितभङ्ग्यानङ्गसर्वस्वमेतत्' और 'यावन्मूर्ध्नि हिमांशुकन्दलवति स्वर्वाहिनी धूर्जटेः' ये दो श्लोक लिखे हैं। इन्हें हम पहले साहित्य विषयक 'सरस्वती कण्ठाभरण' के उल्लेख में उद्धृत कर चुके हैं।

मूल

इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीभोजदेवविरचिते शृङ्गारप्रकाशे संभोगावस्था प्रकाशो नाम षट्त्रिंशः प्रकाशस्समाप्तिमगमत्।

अर्थ

यहाँ पर महाराजधिराज श्रीभोजदेव के बनाए शृङ्गार प्रकाश में 'संभोगावस्था प्रकाश' नाम का ३६ वाँ प्रकाश समाप्त हुआ।

चाणक्य राजनीतिशास्त्रम्[1]

यह राजा भोज का बनाया नीतिशास्त्र का ग्रन्थ है।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

एकदन्तं त्रिनयनं ज्वालानलसमप्रभम्।
गणाध्यक्षं गजमुखं प्रणमामि विनायकम् ॥१॥

अर्थ

एक दाँत और तीन नेत्र वाले, तथा अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी, गणों के स्वामी, गज के से मुखवाले, गणेश को नमस्कार करता हूँ।

मूल

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥२॥

अर्थ

तीनों लोकों के स्वामी, सर्व शक्तिमान, विष्णु को प्रणाम करके अनेक शास्त्रों से लेकर 'राजनीति समुच्चय' कहा जाता है।

समाप्ति का अंश :—

मूल

शीतभीतश्च विप्रश्च रणभीतश्च क्षत्रियः।
धनाढ्यो दानभीतश्च त्रयी स्वर्गं न गच्छति ॥१६३॥

अर्थ

सरदी से डरने वाला ब्राह्मण, युद्ध से डरनेवाला क्षत्रिय, और दान से डरने वाला धनी, ये तीनों स्वर्ग में नहीं जाते।

---

[1] यह ग्रन्थ छप चुका।

मूल

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः ।
प्रहितं भोजराजेन भुवि किं प्राप्यते न तैः ॥१६४॥

अर्थ

जो बुद्धिमान् पुरुष भोजराज का भेजा (दिया) हुआ चाणक्य सम्बन्धी यह रत्न कण्ठ में धारण (याद) कर लेते हैं, उनके लिये पृथ्वी पर कोई चीज अप्राप्य नहीं रह जाती है।

चारुचर्या[1]

यह राजा भोज का बनाया 'नित्यकर्म' सम्बन्धी ग्रन्थ है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ का अंश :—

मूल

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः ।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता ॥

अर्थ

बुद्धिमान् राजा भोज, नीति शास्त्रों, श्रेष्ठ वैद्यों, और धर्मशास्त्रों के मतानुसार, (इस) 'चारुचर्या' नामक ग्रन्थ की रचना करता है।

मूल

अथ शौचविधिः, दन्तधावनं च ......
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् .... ।
.... कृतशौचावधिस्ततः ॥
प्रातरुत्थाय विधिना ....
.... अत ऊर्ध्वं क्रमेण तु ॥

---

1 महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित, गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २३, पृ० ८१३७-३८ ।

अर्थ

अब शौच विधि, और दतौन करने का तरीका बतलाते हैं....

प्रातः काल जल्दी उठकर .... ।

...........और तब शौच आदि से निवृत्त होकर ॥

बाक़ायदा सुबह उठकर ....

.... इसके बाद क्रम से ॥

मूल

आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

अर्थ

हे वनस्पति ! तू हमें आयु, शक्ति, यश, तेज, सन्तति, पशु, धन, ज्ञान, और स्मरण शक्ति दे। (यह दतौन तोड़ने के पहले पढ़ने के लिये कहा गया है।)

समाप्ति का अंश :—

मूल

शुश्रूषणं गुरुस्त्रीणां तपस्तीर्थेषु मज्जनम् ।
विद्यायाः सेवनं चैव सततं साधु सङ्गमः ॥
दीनान्धकृपणानां च भ्रातृणां चैव पोषणम् ।
कारयेत्सततं भक्त्या कीर्तिलक्ष्मीविवृद्धये ॥
हिताय राजपुत्राणां रचिता भोजभूभृता ।

अर्थ

अपने यश और सम्पत्ति की वृद्धि के लिये हमेशा गुरुओं और स्त्रियों (अथवा गुरु की स्त्रियों) की सेवा, तपश्चर्या, तीर्थों का स्नान, विद्या का अध्ययन, सत्पुरुषों का संग, गरीबों, अंधों, असहायों की और रिश्तेदारों की सहायता करनी (करवाते रहना) चाहिए।

राजा भोज ने (यह 'चारुचर्या') राजपुत्रों के कल्याण के लिये बनाई है।

मूल

स्नानानुलेपनहिमानिलखण्डखादैः
शीताम्बुदुग्धदधियूषरसाः प्रसन्नः।
सेवेत चानुशमनं विरतौ रतस्य
तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम॥

अर्थ

जो पुरुष स्नान के करने, इत्र, तेल, आदि के लगाने, शीतल पवन, तथा मधुर भोजन के सेवन से, प्रसन्नचित्त होकर काम-क्रीड़ा के बाद शान्ति देने वाला ठंडा जल, दूध, दही, यख़नी (अथवा औषधि विशेष का काढ़ा) पीता है उसका शारीरिक बल शीघ्र ही लौट आता है।

मूल

हिताय राजपुत्राणां सज्जनानां तथैव च।
चारुचर्यमिदं श्रेष्ठं रचितं भोजभूभुजा॥

अर्थ

राजा भोज ने इस ग्रन्थ को राजकुमारों और सत्पुरुषों के फ़ायदे के लिये बनाया है।

मूल

इति श्रीमहाराजाधिराजभोजदेवविरचिता चारुचर्या समाप्ता।

अर्थ

यहाँ पर श्री महाराजाधिराज भोजदेव का बनाया 'चारुचर्या' नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

विविधविद्या-विचारचतुरा[1]

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

सर्वकामावाप्तये शान्तिकपौष्टिकान्युच्यन्ते। तत्र नवग्रहमख-स्त्रिविधः। अयुतहोमो लक्षहोमः कोटिहोमश्च।

अर्थ

सब कामनाओं की प्राप्ति के लिये शान्ति और पुष्टि करनेवाले कर्म कहे जाते हैं। उनमें नवग्रहों का होम तीन तरह का होता है। दस हज़ार आहुतियों का, एक लाख आहुतियां और एक करोड़ आहुतियों का।

समाप्ति का अंश :—

मूल

वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्तशिशिरे स्थितम्॥
अश्वमेधसमं प्राहुर्वसन्ते चैत्र यत् स्थितम्।
ग्रीष्मे च संस्थितं तोयं राजसूयाद् विशिष्यते॥

अर्थ

हेमन्त (मँगसिर और पौष) में रहा हुआ जल वाजपेय यज्ञ से, शिशिर (माघ और फाल्गुन) में रहा हुआ त्रिरात्र यज्ञ से, वसन्त (चैत्र और वैशाख) में रहा हुआ अश्वमेध से, और ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ़) में रहा हुआ राजसूय से भी अधिक (फल देनेवाला) होता है।

---

[1] नेपाल दरबार के पुस्तकालय की, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित सूची (१६०५) पृ० ६५।

मूल

एतन्महाराज[1] ! विशेषधर्मान् करोति यो धर्मपरः सुबुद्धिः ।
स याति रुद्रालयमाशु पूतः कल्पाननेकान् दिवि मोदते च ॥
अनेन लोकान् समहस्तपादान्[2] भुक्त्वा परार्द्धद्वयमङ्गनाभिः ।
सहैव विष्णोः परमं पदं यत् प्राप्नोति तद्योगबलेन भूयः ॥

अर्थ

हे महाराज ! जो अच्छी व और धर्मात्मा पुरुष इस तरह खास धर्मों को करता है वह शीघ्र ही पवित्र होकर शिवलोक को प्राप्त होता है और अनेक कल्पों तक स्वर्ग में सुख भोगता है ।

इससे दो शंख वर्षों तक स्त्रियों के साथ दुनिया में आनन्द भोगकर साथ ही उस योग के बल से विष्णु के श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करता है ।

मूल

इति श्रीमद्भोजदेवविरचितायां विविधविद्याविचारचतुराभिधानायां नवग्रहमखतुलापुरुषादिमहादानादिकर्मपद्धतौ तडागवापीकूपप्रतिष्ठाविधिः ।

---

[1] यहाँ पर यदि 'महाराजविशेषधर्मान्' को समस्त पद माना जाय तो इसका अर्थ 'महाराज के विशेष धर्मों को' होगा और यदि महाराज को सम्बोधन मानें तो कहना होगा कि यह पुस्तक किसी अन्य विद्वान् ने भोज के नाम से लिखी थी ।

[2] 'समहस्तपादान्' इसका अर्थ २ हाथों और २ पैरों की संख्या के अनुसार ४ हो सकता है । यदि इसे लोकान् का विशेषण करें तो इसका तात्पर्य ४ लोकों से होगा । परन्तु संस्कृत साहित्य में लोक ३ या १४ माने गये हैं । इसलिये इस पद का अर्थ समझने में हम असमर्थ हैं ।

अर्थ

यहाँ पर श्रीमद्भोजदेव की बनाई 'विविधविद्या-विचारचतुरा' नाम की, नवग्रह, तुला पुरुष, आदि बड़े दानों के करने की विधि को बतलाने वाली, पुस्तक में तालाव, बावली, और कूँआ तैयार करने की विधि समाप्त हुई।

सिद्धान्तसारपद्धतिः[1]

गद्यपद्य मय। श्लोक संख्या १३८४।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

यमासाद्य निवर्तन्ते विकल्पाः सुखदुःखयोः।
....।
....विधिं तथा
पवित्रारोहणश्चैव प्रतिष्ठाश्च......... ॥

अर्थ

जिसको पाकर सुख दुःख के विचार दूर हो जाते हैं।....
....तथा तरीका
पुनीत आरोहण और स्थापन..........................

समाप्ति का अंश :—

मूल

सैषा क्रमेण नित्यादिकर्म्मस्मरणपद्धतिः।
भवाब्धिमुक्तितीर्षूणां......नौरिव निर्म्मिता॥

---

[1] नेपाल दरबार के पुस्तकालय की, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित, सूची (१६०५) पृ० १३०-३१।

अर्थ

यह नित्य कर्मों के (याद) करने को नियमानुसार (विधि) पद्धति (मैंने), संसाररूपी समुद्र को पार करने की इच्छा वालों के लिये नाव की तरह, बनाई है।

मूल

यद्विप्रकीर्ण······स्फुटार्थं
नित्यादिकर्म्म··············।
तत् संगतश्च लघुवाऽयपरिस्फुटञ्च
श्रीभोजदेवजगतीपतिनाभ्यधायि॥

अर्थ

बिखरा हुआ······साफ़ अर्थवाला, नित्य कर्म आदि······ ·····················उससे मिलता हुआ थोड़ा या साफ़ समझ में नहीं आनेवाला, (जो कुछ भी इस पुस्तक में है) वह सब राजा भोजदेव का कहा है।

मूल

इति महाराजाधिराज श्रीभोजदेवविरचितायां सिद्धान्तसार-पद्धतौ जीर्णोद्धारविधिः समाप्तः।

अर्थ

यहाँ पर महाराजाधिराज श्रीभोजदेव की बनाई सिद्धान्तसार पद्धति में जीर्णोद्धार विधि समाप्त हुई।

इस पुस्तक में अनेक विधियाँ दी गई हैं। जैसे :—

सूर्यपूजा-विधि, नित्यकर्म-विधि, मुद्रालक्षण-विधि, प्रायश्चित्त-विधि, दीक्षा-विधि, साधकाभिषेक-विधि, आचार्याभिषेक-विधि, पादप्रतिष्ठा-विधि, लिङ्गप्रतिष्ठा-विधि, द्वारप्रतिष्ठा-विधि, हृत्प्रतिष्ठा-विधि, ध्वजप्रतिष्ठा-विधि, जीर्णोद्धार-विधि।

समराङ्गण सूत्रधार:[1]

विषय—शिल्प। अध्याय ८३, और श्लोक संख्या करीब ७०००।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

देवः स पातु भुवनत्रयसूत्रधार-
स्त्वां बालचन्द्रकलिकाङ्कितजूटकोटिः।
एतत्समग्रमपि कारणमन्तरेण
कात्स्न्यार्दसूत्रितमसूत्र्यत येन विश्वम् ॥१॥

अर्थ

तीनों लोकों का बनानेवाला वह कारीगर (Engineer), जिस की जटा चन्द्रमा की कला से शोभित है और जिसने यह सारा जगत् बग़ैर कारण और नक़शे के ही पूरी तौर से बना डाला है, तुम्हारी रक्षा करे।

मूल

देशः पुरं निवासश्च सभा वेश्मासनानि च।
यद्यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छ्रेयस्करं मतम् ॥४॥

अर्थ

देश, नगर, घर, सभा, मकान, आसन और ऐसे ही अन्य (शुभ-लक्षण वाली) वस्तुऐं कल्याण करनेवाली मानी गई हैं।

मूल

वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चयः।
तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुदीर्यते ॥५॥

---

[1] यह ग्रन्थ गायकवाड ओरियण्टल सीरीज़, बड़ोदा, से दो भागों में प्रकाशित किया गया है।

अर्थ

वास्तु (गृह निर्माण अथवा शिल्प) शास्त्र के बिना उन (पहले लिखी चीजों) के लक्षण का निर्णय नहीं हो सकता। इसीलिये लोगों पर कृपा करके यह शास्त्र कहा जाता है।

इस ग्रन्थ के 'महदादि सर्गाध्याय' नामक चौथे अध्याय में पौराणिक ढंग पर सृष्टि की उत्पत्ति और 'भुवन कोशाध्याय' नामक पाँचवें अध्याय में भूगोल लिखा गया है। वहाँ पर पृथ्वी की परिधि (Circumference) के विषय में लिखा है :—

मूल

मेदिन्याः परिधिस्तावद्योजनैः परिकीर्तितः।
द्वात्रिंशत्कोट्यः षष्ठिर्लक्षाणिपरिधिः क्षितेः॥३॥

अर्थ

पृथ्वी की परिधि योजनों में कही है। इसकी परिधि ३२ करोड़, ६० लाख योजन[1] की है।

'सहदेवाधिकार' नामक छठे अध्याय में लिखा है कि सत्ययुग में देवता और मनुष्य (तथा स्त्रियाँ और पुरुष) एक साथ बिना घरों के ही रहा करते थे। उस समय :—

मूल

एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽस्मिन् वेदोऽभूदेक एव च।
ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः॥१२॥

अर्थ

उस समय (पृथ्वी पर) अकेला ब्राह्मणवर्ण, एक वेद और कामदेव को उत्तेजन देनेवाला, एक वसन्त ऋतु ही था।

---

[1] योजन ४ कोस का होता है। इस हिसाब से पृथ्वी की परिधि १ अरब, ३० करोड़, ४० लाख कोस की होगी।

परन्तु कुछ काल बाद मनुष्यों द्वारा होने वाले अपने निरादर को देखकर देवता लोग स्वर्ग को चले गए और जाते हुए 'कल्पवृक्ष' को भी अपने साथ ले गए। इससे पृथ्वी निवासी लोगों के खाने का सहारा जाता रहा। इसी अवसर पर पृथ्वी से 'पर्पटक' (एक औषधि विशेष) की उत्पत्ति हुई। यह देख कुछ दिन लोगों ने उसी से उदर-पूरणा की। परन्तु थोड़े ही समय में वह भी नष्ट हो गया। इसके बाद बग़ैर बोये चावलों की उत्पत्ति हुई। यह खाने में बहुत ही स्वादवाले प्रतीत हुए। इसीसे लोग इनको नष्ट होने से बचाने के लिये इनका संग्रह और इनके खेत तैयार करने लगे। इससे उनके चित्त में लोभ, क्रोध और ईर्ष्या ने तथा कामदेव ने अपना प्रभाव दिखलाया। वे खेतों और स्त्रियों के लिये आपस में लड़ने लगे। धीरे धीरे उन्होंने कल्पवृक्ष के आकार पर अपने रहने के लिये अलग अलग घर आदि भी बनाने शुरू कर दिए।

'वर्णाश्रम प्रविभाग' नामक सातवें अध्याय में लिखा है कि इसके बाद उनमें अमन चैन बनाए रखने के लिये ब्रह्मा ने उनका पहला राजा पृथु को बनाया। इसी पृथु ने ४ वर्णों और ४ आश्रमों की स्थापना की; जैसा कि आगे दिए श्लोकों से प्रकट होता है :—

मूल

ततः सचतुरो वर्णनाश्रमांश्च व्यभाजयत्।
तेषु ये देवनिरताः स्वाचाराः संयतेन्द्रियाः ॥९॥
सूरयश्चावदाताश्च ब्राह्मणास्तेऽभवंस्तदा।
यजनाध्ययनेदानं याजनाध्यापनार्थिताः ॥१०॥
धर्मस्तेषां विमुच्यान्त्यां स्त्री तुल्याः क्षत्रवैश्ययोः।

अर्थ

इसके बाद पृथु ने चार वर्ण और चार आश्रम बनाए। उस समय लोगों में से जो देवताओं में भक्ति रखनेवाले, अच्छे आचरणवाले,

इन्द्रियों का दमन करनेवाले, विद्वान् और गुणी, थे वे ब्राह्मण हो गए। इनका काम—यज्ञ करना, पढ़ना, दान देना, यज्ञ करवाना, पढ़ाना और दान लेना हुआ। इनको शूद्रवर्ण को छोड़कर क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में विवाह करने का अधिकार भी दिया गया।

मूल

येतु शूरा महोत्साहाः शरण्या रक्षणक्षमाः ॥११॥
दृढव्यायत देहाश्च क्षत्रियास्त इहाभवन्।
विक्रमो लोकसंरक्षा विभागो व्यवसायिता ॥१२॥
एतेषामयमप्युक्तो धर्मः शुभफलोदयः।

अर्थ

जो बहादुर, उत्साही, शरण देने और रक्षा करने में समर्थ, मजबूत और लंबे शरीरवाले थे, वे इस संसार में क्षत्रिय हुए। उनका काम ब्राह्मणों के लिये बतलाए कामों के अलावा बहादुरी, लोगों की रक्षा, उनके नियमों (हिस्सों आदि) का प्रबन्ध, और उद्योग करना हुआ।

मूल

निसर्गान्नैपुणं येषां रतिर्वित्तार्जनं प्रति ॥१३॥
श्रद्धादाक्ष्यदयावन्तो वैश्यांस्तानकरोदसौ।
चिकित्सा कृषिवाणिज्ये स्थापत्यं पशुपोषणम् ॥१४॥
वैश्यस्य कथितो धर्मस्तद्वत् कर्म च तैजसम्।

अर्थ

जो स्वभाव से ही चतुर थे और धन कमाने की लालसा रखते थे, तथा विश्वास, फुर्ती, और दयावाले थे, उनको उसने वैश्य बनाया। इनका काम इलाज, खेती, व्यापार, कारीगरी, पशुपालन और धातु की चीजें बनाना रक्खा।[1]

---

[1] 'कर्म च तैजसम्' का अर्थ (क्षत्रियों का सा) बहादुरी का काम भी हो सकता है।

मूल

नातिमानभृतो नाति शुचयः पिशुनाश्च ये ॥१५॥
ते शूद्रजातयो जाता नाति धर्मरताश्च ये।
कलारम्भोपजीवित्वं शिल्पिता पशुपोषणम् ॥१६॥
वर्णत्रितयशुश्रूषा धर्मस्तेषामुदाहृतः।

अर्थ

अपनी इज्जत का ख़याल न रखनेवाले, पूरी तौर से पवित्र न रहने वाले, चुगलख़ोर और धर्म की तरफ़ से बे परवाह लोग, शूद्र जातियों में रक्खे गए। करतब दिखला कर और मुख से ख़ास तौर की आवाज़ें निकाल कर पेट पालना, कारीगरी, पशुपालन और ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य इन तीनों वर्णों की सेवा करना, उनका काम रक्खा।

इससे ज्ञात होता है कि राजा भोज के मतानुसार यह चातुर्वर्ण्य का विभाग जन्म से न होकर गुण, कर्म, और स्वभाव से ही हुआ था।

अगले अध्याय में भूमि की परीक्षा के तरीके बतलाकर फिर नगर, प्रासाद, आदि के निर्माण की विधियाँ बतलाई हैं।

इकतीसवें 'यन्त्र विधानाध्याय' में अनेक तरह के यंत्रों (मशीनों) के बनाने के उसूल मात्र दिए हैं। वहीं पर प्रारम्भ मे यन्त्र की परिभाषा इस प्रकार लिखी है :—

मूल

यदृच्छया वृत्तानि भूतानि स्वेन प्रवर्त्मना।
नियम्यास्मिन् नयति यत् तद् यन्त्रमिति कीर्तितम् ॥३॥

अर्थ

अपनी इच्छा से अपने रास्ते पर चलते हुए भूतों (पृथ्वी, जल, आदि तत्वों) को जिसके द्वारा नियम में बाँधकर अपनी इच्छानुसार चलाया जाय उसे यन्त्र (मशीन) कहते हैं।

आगे यंत्र के मुख्य साधनों के विषय में लिखा है :—

मूल

तस्य बीजं चतुर्धास्यात् क्षितिरापोऽनलोऽनिलः ।[1]

आश्रयत्वेन चैतेषांवियदप्युपयुज्यते ॥५॥

भिन्नः सूतश्चयैरुक्तस्ते च सम्यङ् न जानते ।

प्रकृत्या पार्थिवः सूतस्त्रयी तत्र क्रिया भवेत् ॥६॥

अर्थ

उस यन्त्र के लिये पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि, इन ४ चीजों की खास जरूरत है। इन चारों तत्वों का आश्रय होने से ही आकाश की भी उसमें आवश्यकता होती है। जिन लोगों ने पारे को इन तत्वों से भिन्न कहा है वे ठीक तौर से नहीं समझे हैं। वास्तव में पारा पृथ्वी का ही भाग है और जल, वायु और तेज, के कारण ही उसमें शक्ति उत्पन्न होती है।

---

[1] उसी अध्याय में लिखा है :—

मूल

एतत्स्वबुद्ध्यैवास्माभिः समग्रमपि कल्पितम् ॥८३॥

अग्रतश्च पुनर्ब्रूमः कथितं यत्पुरातनैः ।

❀ ❀ ❀

बीजं चतुर्विधमिह प्रवदन्ति यंत्रे-

ष्वम्भोग्निभूमि पवनैर्निहितैर्यथावत् ।

अर्थ

यह सब हमने अपनी बुद्धि से ही सोचा है। आगे हम अपने से पहले के लोगों का कहा बतलाते हैं।

यन्त्र में जल, अग्नि, पृथ्वी, और पवन, इन चारों का, ठीक तौर से, यथास्थान रखना ही उसके ४ तरीके हैं।

इसके बाद यन्त्रों के भेद गिनाए हैं :—

मूल

स्वयं वाहकमेकंस्यात्सकृत्प्रेर्य तथा परम्।
अन्यदन्तरितं वाह्यं वाह्य मन्यत्त्वदूरतः ॥१०॥
स्वयं वाह्यमिहोत्कृष्टं हीनं स्यादितरत्रयम्।

अर्थ

पहला अपने आप चलने वाला, दूसरा एक बार चलाने देने से चलने वाला, तीसरा दूर से गुप्त शक्ति द्वारा चलाया जानेवाला, और चौथा पास खड़े होकर चलाया जानेवाला। इनमें अपने आप चलने वाला यन्त्र अन्य तीनों यन्त्रों मे श्रेष्ठ है।

आगे यन्त्र की गति के विषय में लिखा है :—

मूल

एका स्वीया गतिश्चित्रे वाह्येन्या वाहकाश्रिता।
अरघट्टाश्रिते कीटे दृश्यते द्वयमप्यदः ॥१३॥
इत्थं गतिद्वयवशाद् वैचित्र्यं कल्पयेत्स्वयम्।
अलक्षता विचित्रत्वं यस्माद्यन्त्रेषु शस्यते ॥१४॥

अर्थ

एक तो यन्त्र की अपनी गति होती है, और दूसरी उसके जरिये से उत्पन्न हुई उस वस्तु की जिसमें वह यन्त्र लगा रहता है। चलते हुए रहट पर स्थित कीड़े में दोनों गतियाँ दिखाई देती हैं।

इस प्रकार दो गतियों के होने से यन्त्र बनानेवाला उनमें अनेक विचित्रताएँ पैदा कर सकता है। यन्त्रों में कारण (मशीन) का छिपा रहना, और विचित्रता ही प्रशंसा का कारण है।

आगे यन्त्र बनाने के स्थूल नियमों के विषय में लिखा है :—

मूल

· · · भार गोलक पीडनम् ॥२५॥
लम्बनं लम्बकारे च चक्राणि विविधान्यपि ।
अयस्ताम्रं च तारं च त्रपुसंवित्प्रमर्दने ॥२६॥
काष्ठं च चर्म वस्त्रं च स्वबीजेषु प्रयुज्यते ।

अर्थ

· · · भारी गोले के दबाव का, लटकने वाले यंत्र में लटकन (Pendulum) का, अनेक तरह के चक्रों (पहियों) का, लोहे, ताँबे, चाँदी, और सीसे, का तथा लकड़ी, चमड़े और कपड़े का प्रयोग उचित रूप से तत्वों के साथ किया जाता है ।

आगे यन्त्रों के द्वारा बनी हुई वस्तुओं का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

मूल

यन्त्रेण कल्पितो हस्ती नदद्गच्छन्प्रतीयते ।
शुकाद्याः पक्षिणः क्लृप्तास्तालस्यानुगमान्मुहुः ॥७३॥
जनस्य विस्मयकृतो नृत्यन्ति च पठन्ति च ।
पुत्रिका वा गजेन्द्रो वा तुरगो मर्कटोऽपि वा ॥७४॥
वलनैर्वर्तनैर्नृत्यंस्तालेन हरते मनः ।

अर्थ

यंत्र लगा हुआ हाथी चिंघाड़ता हुआ और चलता हुआ प्रतीत होता है । इसी प्रकार के तोते, आदि पक्षी भी ताल पर नाच और बोल कर देखनेवालों को आश्चर्य में डालते हैं; तथा पुतली, हाथी, घोड़ा अथवा बन्दर अपने अङ्गों का संचालन कर लोगों को खुश कर देते हैं ।

आगे विमान बनाने के दो तरीके लिखे हैं :—

मूल

लघुदारुमयं महाविहङ्गं
दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य ।
उदरे रसयन्त्रमादधीत
ज्वलनाधारमधोस्य चाग्निपूर्णम् ॥९५॥
तत्रारूढः पुरुषस्तस्य पक्ष-
द्वन्द्वोच्चलप्रोज्झितेनानलेन
सुप्तस्यान्तः पारदस्यास्य शक्त्या
चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥९६॥
इत्थमेवसुरमन्दिरतुल्यं
सञ्चलत्यलघुदारुविमानम्
आदधीत विधिना चतुरोन्त-
स्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान् ॥९७॥
अयः कपालाहितमन्दवह्नि—
प्रतप्ततत्कुम्भभुवागुणे
व्योम्नोझगित्याभरणत्वमेति
सन्तप्तगर्जद्रसराजशक्त्या ॥९८॥

अर्थ

हलकी लकड़ी का बड़ा सा पक्षी बनाकर उसके पेट में पारे का यन्त्र लगावे और उसके नीचे अग्नि का पात्र रक्खे। परन्तु पक्षी के शरीर के जोड़ पूरी तौर से बन्द और मजबूत बनाने चाहिए। उस पर बैठा हुआ पुरुष, पक्षी के परों के हिलने से तेज हुई आँच की गरमी द्वारा उड़नेवाले पारे की शक्ति के कारण आकाश में दूर तक जा सकता है। इसी तरह लकड़ी का देव-मन्दिर की तरह का बनाया हुआ बड़ा विमान भी आकाश में उड़ सकता है। चतुर पुरुष उस विमान के भीतर

पारे से भरे मजबूत घड़े क़ायदे से रखकर उनके नीचे लगाए हुए लोहे के कूँडे में की आग से उनको धीरे धीरे गरम करे। ऐसा करने से वह विमान घोर गर्जन करता हुआ आसमान में उड़ने लगता है।

परन्तु उक्त पुस्तक में इन यंत्रों की पूरी रचना नहीं लिखी गई है। उसके बाबत ग्रन्थकार ने लिखा है:—

मूल

यन्त्राणां घटना नोक्ता गुप्त्यर्थं नाज्ञतावशात् ॥७६॥
तत्र हेतुरयं ज्ञेयो व्यक्ता नैते फलप्रदाः।
कथितान्यत्र बीजानि.... ॥८०॥

अर्थ

यंत्रों के बनाने की पूरी विधि की जानकारी होने पर भी उसे गुप्त रखने के लिये ही इस पुस्तक में नहीं लिखा है। इसका कारण इस विषय का हमारा अज्ञान नहीं है।

सर्वसाधारण के इन यंत्रों की विधि को जान लेने से इनका महत्त्व नष्ट हो जाता। इसी से यहाँ पर इनके बीज (उसूल) ही बतलाए हैं।

समझ में नहीं आता कि एक तो जब पारा जल से १३.६ गुना भारी होता है, और उसके भाप बनने में भी जलके भाप बनने से कहीं अधिक ताप की आवश्यकता होती है, तब भोजदेव ने वायुयानों आदि में जल की भाप के उपयोग को छोड़कर पारे की भाप का उपयोग क्यों लिखा है?

दूसरा पारे से भरे लोहे के घड़े फूलकर अपने नीचे की हवा से हलके तो हो नहीं सकते। ऐसी हालत में जब तक यंत्र के भीतर की शक्ति का बाहर की शक्ति से संघर्ष न हो तब तक वह निरर्थक ही रहेगी। इसलिये जब तक घड़ों में भरे हुए पारे की भाप अपने स्थान से बाहर निकलकर आसपास की विपरीत शक्ति से टक्कर नहीं ले, तब तक वह

यन्त्र का संचालन नहीं कर सकती। सम्भव है इसी लिये भोजदेव ने 'आदधीत विधिना चतुरोन्तः' (श्लो० ९७) में 'विधिना'[1] शब्द का प्रयोग किया है।

आगे यंत्रों के बनाने में कारीगर के लिये इतनी बातें आवश्यक बतलाई हैं :—

मूल

पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं
शास्त्राभ्यासो वास्तुकर्मोद्यमो धीः।
सामग्रीयं निर्मला यस्य सोऽस्मि—
श्चित्राण्येवं वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ॥८७॥

अर्थ

खानदानी पेशा, उपदेश (तालीम) से आई हुई चतुरता, यंत्र निर्माण पर लिखी गई किताबों का पढ़ना, कारीगरी के काम का शौक़, और अक़्ल, जिसमें ये बातें हों वही अनेक तरह के यंत्र बना सकता है।

आगे और भी अनेक तरह के यंत्रों के बनाने की विधियाँ दी हैं। उनमें से कुछ यहाँ पर उद्धृत करते हैं :—

मूल

वृत्तसन्धितमथायसयन्त्रं
तद्विधाय रसपूरितमन्तः।
उच्चदेशविनिधापिततप्तं
सिंहनादमुरजं[2] विदधाति ॥९९॥

अर्थ

पारे से भरा लोहे का गोल और मज़बूत जोड़ों वाला यंत्र बना·

---

[1] 'विधिना—तरकीब से' जो तरकीब यहाँ पर गुप्त रक्खी गई है।

[2] मुरज एक प्रकार के ढोल को कहते हैं। यहाँ पर 'सिंहनादमुरजं' के प्रयोग का मतलब स्पष्ट नहीं होता।

कर और उसे ऊंची जगह रख कर गरम करने से सिंह की गर्जना के समान शब्द करने लगता है।

मूल

दृग्ग्रीवातलहस्तप्रकोष्ठ बाहूरुहस्तशाखादि
सच्छिद्रं वपुरखिलं तत्सन्धिषु खण्डशो घटयेत् ॥१०१॥
श्लिष्टं कीलकविधिना दारुमयं सृष्टचर्मणा गुप्तम्।
पुंसोथवा युवत्या रूपं कृत्वातिरमणीयम् ॥१०२॥
रन्ध्रगतैः प्रत्यङ्गं विधिना नाराचसङ्गतैः सूत्रैः।
ग्रीवाचलनप्रसरणविकुञ्चनादीनि विदधाति ॥१०३॥

अर्थ

लकड़ी की, आदमी या औरत की, सुन्दर रूपवाली, पोली मूर्ति बनाकर, उसमें आँखों, गरदन, हाथों, पहुँचों, भुजाओं, जंघाओं, अंगुलियों, आदि के टुकड़ों को जोड़ों की जगह कीलों से इस प्रकार जोड़ दे कि वे आसानी से घूम सकें। इसके बाद उन जोड़ों को तैयार किए हुए चमड़े से मँढ़ दे। इन जोड़ों के छेदों की कमानियों में लगे तागों के सहारे यह पुतली गरदन हिला सकती है अथवा अङ्गों को फैला या सिकोड़ सकती है। (इसी प्रकार और भी अनेक काम कर सकती है।)

मूल

दारुजमिभस्वरूपं यत् सलिलं।पात्रसंस्थितं पिबति।
तन्माहात्म्यं निगदितमेतस्योच्छ्राय तुल्यस्य ॥११५॥

अर्थ

लकड़ी का हाथी बरतन का पानी पी जाता है। उच्छ्राय यंत्र[1] के समान ही इस यंत्र में भी यह तारीफ़ है।

---

[1] जल को ऊपर खींचनेवाला यंत्र।

इसे साइफ़न (Cyphon) सिस्टम कहते हैं। यदि पोला हाथी बनाकर उसकी सूँड से पेशाब करने के स्थान तक आरपार छेद करदें और

इसके बाद अनेक तरह के फव्वारों का उल्लेख किया गया है। वहीं पर नलों के जोड़ों को मजबूत करने की विधियाँ भी लिखी हैं :—

मूल

लाक्षासर्जरसदृषन्मेषविषाणोत्थचूर्णसंमिश्रम्।
अतसीकरञ्जतैलप्रविगाढो वज्रलेपः स्यात्॥१३१॥
दृढसन्धिबन्धहेतोः स तत्र देयो द्विशः कदाचिद् वा।
शणवल्कलश्लेष्मातकसिक्थकतैलैः प्रलेपश्च ॥१३२॥

अर्थ

लाख और साल वृक्ष के रस को पत्थर और मैंढे के सींग के चूर्ण में मिलाकर अलसी और करंज के तेल में गाढ़ा लेप बनाले। यह 'वज्रलेप' हो जायगा।

जोड़ों की मजबूती के लिये इसके दो लेप तक लगाए जा सकते हैं। अथवा सन की छाल, लसौड़ा, मोम और तेल से उसपर लेप करे।

हाथी के पेट में पूरी तौर से जल भर कर उसकी सूँड़ को किसी पानी से भरे पात्र में डुबो दें तो उस पात्र में के पानी की सतह पर के हवा के दबाव के कारण वह सारा पानी हाथी की सूँड़ में चढ़कर उसके पेशाब के स्थान से निकल जायगा।

मथुरा का वासुदेव प्याला भी इसी उसूल पर बनाया जाता है। परन्तु पहले हाथी के पेट में इतना पानी भरा जाय कि वह उसकी सूँड़ से लेकर पेशाब करने के स्थान तक अच्छी तरह से भर जाय, बीच में बिलकुल खाली स्थान न रहे। इसके बाद उसकी सूँड़ को पानी में डुबोते समय भी दोनों छिद्रों पर उँगली रखकर उसे पहले ही खाली न होने दिया जाय। इस प्रकार उसकी सूँड़ के पानी में डूबने पर उस पात्र का सारा पानी सूँड़ से होकर उसके मूत्र स्थान से निकल जायगा।

आगे के अध्यायों में गज-शाला, अश्व-शाला, अनेक तरह के महल, और मकान, आदि बनाने की विधियाँ कही गई हैं। इस प्रकार इस छपी हुई पुस्तक के पहले भाग में ५४ और दूसरे में २९ अध्याय हैं।

ग्रन्थ समाप्ति का अंश :—

मूल

उरोर्धयोगात् पार्श्वार्धयोगाच्च क्रमशः स्थितौ।
एतौ विद्वान् विजानीयादुरः पार्श्वार्धमण्डलौ॥

अर्थ

आधी छाती और आधे पार्श्वों से चिपका कर रक्खे हुए हाथों को 'उरःपार्श्वार्धमण्डल' जाने।

छपी हुई प्रति में यहीं पर पुस्तक समाप्त हो गई है। इसके बाद का ग्रन्थ का कितना अंश छूट गया है यह कहना, जब तक पुस्तक की अन्य लिखित प्रति न मिले, तब तक असम्भव है। परन्तु प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर मिलने वाली 'इति महाराजाधिराज श्रीभोजदेव विरचिते समराङ्गण सूत्र धारनाम्नि वास्तुशास्त्रे ....' इस अध्याय समाप्ति की सूचना के पुस्तकान्त में न होने से अनुमान होता है कि सम्भवतः आगे का कुछ न कुछ अंश तो अवश्य ही नष्ट हो गया है।

युक्ति कल्पतरुः[१]

इसकी श्लोकसंख्या २०१६ है।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

विश्वसर्गविधौ वेधास्तत्पालयति यो विभुः।
तदत्ययविधावीशस्तं वन्दे परमेश्वरम्॥

---

[१] बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित, और राजेन्द्रलाल मिश्र द्वारा संपादित संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २, पृ० १४६।

अर्थ

जो दुनिया को पैदा करते समय ब्रह्मा का, पालन करते समय विष्णु का, और नाश करते समय शिव का, रूप धारण करता है उस परब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार है।

मूल

कं सानन्दमकुर्वाणः कं सानन्दं करोति यः।
तं देववृन्दैराराध्यमनाराध्यमहं भजे॥

अर्थ

(इस श्लोक के पूर्वार्ध में जवाब सवाल का चमत्कार रक्खा गया है।) (प्रश्न) वह किसको दुखी करके किसको सुखी करता है? (उत्तर) कंस को दुखी करके ब्रह्मा को सुखी करता है।

(इसके उत्तरार्ध में विरोधालंकार रक्खा गया है,) वह आराध्य होकर भी अनाराध्य है। (परन्तु इसका अर्थ इस प्रकार होगा कि) वह देवताओं से आराधना करने लायक है। परन्तु आदमी उसकी आराधना पूरी तौर से नहीं कर सकते, ऐसे उस (कृष्ण) को मैं भजता हूँ।

मूल

नमामि शास्त्रकर्तृणां चरणानि मुहुर्मुहुः।
येषां वाचः पारयन्ति श्रवणेनैव सज्जनान्॥

अर्थ

उन शास्त्र-कर्ताओं के चरणों को मैं बार बार नमस्कार करता हूँ जिनके वचन, सुनने मात्र से ही, भले आदमियों को (भवसागर से) पार कर देते हैं।

मूल

नानामुनिनिबन्धानां सारमाकृष्य यत्नतः।
तनुते भोजनृपतिर्युक्तिकल्पतरुं मुदे॥

अर्थ

राजा भोज, अनेक मुनियों के रचे ग्रन्थों के सार को लेकर बड़े यत्न से, इस युक्ति कल्पतरु को (अपनी या विद्वानों की) प्रसन्नता के लिये बनाता है।

समाप्ति का अंश :—

मूल

यानं यत् लघुभिर्वृक्षैर्वृक्षयानं तदुच्यते।
जन्तुभिः सलिले यानं जन्तुयानं प्रचक्षते॥

अर्थ

हलके वृक्षों से जो सवारी बनाई जाती है उसे वृक्षयान कहते हैं। जीवों पर बैठकर पानी में चलने को जन्तुयान कहते हैं।

मूल

बाहुभ्यांवारि ··· ज्जन्येषु न निर्णयः।

अर्थ

दोनों हाथों से पानी ··· उससे पैदा होनेवालों का निर्णय नहीं है।

मूल

इति युक्तिकल्पतरौ निष्पाद्यानोद्देशः।

अर्थ

यहाँ पर 'युक्तिकल्पतरु' में विना पैर की सवारी का विषय समाप्त हुआ।

इस ग्रन्थ में अमात्यादि-बल, यान, यात्रा, विग्रह, दूत-लक्षण, द्वैध, दण्ड, मन्त्रि-नीति-युक्ति, द्वन्द्व-युक्ति, नगरी-युक्ति, वास्तु-युक्ति, राजगृह-युक्ति, गृह-युक्ति, आसन-युक्ति, छत्र-युक्ति, ध्वज-युक्ति, उपकरण-युक्ति, अलङ्कार-युक्ति, हीरक-परीक्षा, विद्रुम-परीक्षा, प्रवाल-परीक्षा, मुक्ता-परीक्षा, वैदूर्य-परीक्षा, इन्द्रनील-परीक्षा, मरकत-परीक्षा, कृत्रिमाकृत्रिम-परीक्षा, कर्केतन-परीक्षा, भीष्ममणि-परीक्षा, रुधिराख्य-परीक्षा, स्फटिक-परीक्षा, खड्ग-परीक्षा, गजादि-परीक्षा, आदि अनेक विषय दिए हैं।

चम्पूरामायणम्[1]

इस ग्रन्थ के पहले के पाँच काण्ड तो राजा भोज ने बनाए थे और छठा (युद्ध) काण्ड लक्ष्मणसूरि ने बनाया था।

ग्रन्थ के प्रारम्भ का अंश :—

मूल

लक्ष्मीं तनोतु नितरामितरानपेक्ष—
मङ्घ्रिद्वयं निगमशाखिशिखाप्रवालम्।
हैरम्बमम्बुरुहडम्बरचौर्यनिघ्नं
विघ्नाद्रिभेदशतधारधुरंधरं नः ॥१॥

अर्थ

वेदरूपी वृक्ष की शिखा (उपनिषद्) के नये पत्ते के समान (वेदान्तवेद्य), कमल की कान्ति का अपहरण करने वाले, विघ्नरूपी पर्वतों को नष्ट करने में वज्र समान, और किसी की अपेक्षा न रखने वाले, गणपति के दोनों चरण हमारी लक्ष्मी की वृद्धि करें।

मूल

गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्ति—
र्हृद्याहि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय
चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया ॥

अर्थ

मेरी जिह्वा, कवियों के मार्ग को अङ्गीकार करने वालों के सुख के लिये, बाजे के साथ होने वाले गाने के समान गद्य के रस से मिली हुई और सुन्दर पद्यों के कथन से सुशोभित, 'चम्पूरामायण' की रचना को धारण (तैयार) करे।

---

[1] यह ग्रंथ रामचन्द्र बुधेन्द्र की टीकासहित छप चुका है।

सुन्दरकाण्ड का अन्तिम श्लोक :—

मूल

देव ! तस्याः प्रतिष्ठासूनसूनाशैकपालितान् ।
मुद्रयित्वा प्रपन्नोहं तवाभिज्ञानमुद्रया ॥

अर्थ

हे देव ! मैं निकलने की इच्छावाले, परन्तु आपके मिलने की आशा से रुके हुए, सीता के प्राणों को, आपको अभिज्ञानमुद्रा (अंगूठी) से अंदर बद करके हाजिर हुआ हूँ। अर्थात्, सीता को आप का सन्देश देकर आया हूँ।

मूल

इति श्री विदर्भराजविरचिते[1] चम्पूरामायणे सुन्दर काण्डः समाप्तः ।

अर्थ

यहाँ पर विदर्भराज की बनाई 'चम्पूरामायण' में सुन्दरकाण्ड समाप्त हुआ।

लक्ष्मणसूरि-कृत युद्धकाण्ड के अवतरण :—

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्य—
न्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदाराम् ।
न व्रीडितोऽहमधुना नवरत्नहार—
सङ्गेन किंतु हृदि धार्यत एव तन्तुः ॥२॥

अर्थ

भोज की उस श्रेष्ठ रचना को अपनी थोड़ी सी (या साधारण)

---

[1] यहाँ पर 'विदर्भराज' यह विशेषण सन्देहास्पद है।

रचना से पूरी करने में मुझे लज्जा नहीं है; क्योंकि नवीन रत्नों के हार के साथ ही तागा भी हृदय पर धारण कर लिया जाता है।

मूल

मुद्रामुद्रित जीवितां जनकजां मोहाकुलं राघवं
चूडारत्नविलोकनेन सुचिरं निध्याय निध्याय च।
प्रारंभे हृदि लक्ष्मणः कलयितुं पौलस्त्यविध्वंसनं
धीरः पूरयितुं कथां च विमलामेकेन काण्डेन सः ॥३॥

अर्थ

श्रीरामचन्द्र की अँगूठी से रक्षित जीवन वाली सीता का और (सीता की) चूड़ामणि के देखने से व्याकुल हुए श्रीराम का चिरकाल तक हृदय में ध्यान करके धैर्यवाले लक्ष्मण ने एक ही बाण से रावण के मारने का और लक्ष्मणसूरि ने एक काण्ड लिखकर इस 'चम्पूरामायण' को पूरा करने का इरादा कर लिया।[1]

लङ्काकाण्ड की समाप्ति का अंश :—

मूल

साहित्यादिकलावता शनगर ग्रामावतंसायिता
श्रीगङ्गाधरधीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिका सूनुना।
प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डोलक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोपि जीयाच्चिरम् ॥

अर्थ

साहित्य आदि की कला को जानने वाले, 'शनगर' नामक शहर के आभूषण (निवासी) गंगाधर और गङ्गाम्बिका के पुत्र लक्ष्मणसूरि ने,

---

[1] इस श्लोक के 'लक्ष्मण' और 'काण्ड' शब्दों में कवि ने श्लेष रक्खा है।

भोज के बनाए (विद्वानों को) आनन्द देनेवाले और पाँच काण्डोंवाले इस ग्रन्थ में, छठा काण्ड बनाया। यह भी चिरकाल तक आनन्द देता रहे।

परन्तु राजचूड़ामणि ने अपने बनाए 'काव्यदर्पण'[1] में लिखा है :—

"यश्चैकाह्नाभोजचम्पोर्युद्धकाण्डमपूरयत्"

अर्थात्—जिसने एक दिन में ही भोज चम्पू के 'युद्धकाण्ड' को पूर्ण कर दिया। नहीं कह सकते कि लेखक का इससे क्या तात्पर्य है। इसने लक्ष्मणसूरि के बनाए 'भोजचम्पू' (चम्पूरामायण) के युद्धकाण्ड की ही पूर्त्ति की थी अथवा एक नया ही युद्धकाण्ड बनाया था। कामेश्वर सूरि कृत 'चम्पूरामायण' की टीका में उक्त पुस्तक का ही दूसरा नाम 'भोजचम्पू' भी लिखा है।

इस राजचूड़ामणि के पिता का नाम श्रीनिवास और दादा का नाम लक्ष्मीभवस्वामि भट्ट था, जो कृष्णभट्ट का पुत्र था।

इस ग्रन्थ पर कई टीकाएँ हैं जिनका परिचय नीचे दिया जाता है :—

(१) रामचन्द्र बुधेन्द्र की साहित्य मंजूषा नाम की टीका।

(२) करुणाकर की लिखी टीका। यह टीका उसने कालीकट-नरेश विक्रम के कहने से लिखी थी।[2]

(३) कामेश्वरसूरि-कृत 'विद्वत्कौतूहल' नाम की टीका।[3] यह

---

[1] श्री कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २२, पृ० ८६१६।

[2] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित, गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खण्ड १ 'सी,' पृ० ४४४८।

[3] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित, गवर्नमेंट

टीका शायद केवल लङ्काकाण्ड पर ही लिखी गई थी।

उसमें लिखा है :—

मूल

* * *

छ श्रीलक्ष्मणीयं विषमललितशब्दाभिरामं[1] च काण्डम् ॥
व्याकर्तुं यत्नकर्तुर्निखिलबुधगणः क्षम्यतां साहसं मे ॥

अर्थ

पण्डित लोग लक्ष्मण के बनाए कठिन और सुन्दर शब्दों से शोभित छठे काण्ड की व्याख्या करने का उद्योग करने वाले मुझे मेरे इस साहस के लिये क्षमा करें।

इसी 'चम्पूरामायण' का दूसरा नाम 'भोजचम्पू' भी था; जैसा कि इसी टीका के इस श्लोक से प्रकट होता है :—

मूल

तस्य श्रीसूनुकामेश्वरकविरचिते योजने भोजचम्वाः
विद्वत्कौतूहलाख्ये समभवदमलो युद्धकाण्डः समाप्तः ॥

अर्थ

उसके पुत्र कामेश्वर कवि की बनाई 'भोजचम्पू' को ठीक तौर से समझाने वाली 'विद्वत्कौतूहल' नाम की टीका में युद्धकाण्ड समाप्त हुआ।

ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २, खण्ड १ 'सी,' पृ० २३७२, २३७४।

[1] यहाँ पर 'यतिभङ्ग' दूषण प्रतीत होता है।

(४) नारायण की लिखी व्याख्या।[1]

(५) मानदेवकृत टीका।[2] यह मानदेव कालीकट का राजा था। इस टीका में लिखा है :—

मूल

· · · समानदेवनृपतिर्भोजोदितांसाम्प्रतं

चम्पूं व्याकुरुते · · · ·

अर्थ

वह मानदेव राजा, भोज के बनाए चम्पू की, व्याख्या करता है।

रामायण के उत्तरकाण्ड की तरह ही इस 'चम्पूरामायण' पर बाद में रामानुज ने 'उत्तर-रामायण चम्पू' लिखा था।[3]

शृङ्गारमञ्जरी कथा

समाप्तिका अंश :—

मूल

इति श्रीमहाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीभोजदेवविरचितायां शृङ्गारमञ्जरीकथायां पद्मराककथानिका द्वादशी समाप्ता।[4]

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २, खण्ड १ 'ए,' पृ० १५३६, १५४०।

[2] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित, गवर्नमेंट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ३, खण्ड १ 'सी,' पृ० ४०२१।

[3] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खण्ड १ 'बी,' पृ० ५१३०।

[4] एपिग्राफिया इण्डिका, भा० १, पृ० २३२।

अर्थ

यहाँ पर महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेव की बनाई शृङ्गारमञ्जरी कथा में १२वीं पद्मराक की कथा समाप्त हुई।

यह पुस्तक डाक्टर बूलर (Bühler) को जैसलमेर पुस्तक भण्डार से मिली थी।

कूर्मशतकम्[१] (दो)

एक शिला पर खुदे हुए इस नाम के दो प्राकृत[२] काव्य ई० स० १९०३ के नवंबर में धार से मिले थे। इनमें के प्रत्येक काव्य में १०९ आर्या छंद हैं।

दोनों के प्रारम्भ में 'ओं नमः शिवाय'[३] तथा पहले काव्य की समाप्ति और दूसरे काव्य के प्रारम्भ के बीच—

> 'इति श्री महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेव विरचितं
> अवनि कूर्म्मशतम्। मङ्गलं, महाश्रीः।'

लिखा है।

ये दोनों काव्य शिला पर ८३ पंक्तियों में खुदे हैं। इनमें की २६ से ३८ तक की पंक्तियों के आगे के कुछ अक्षरों को छोड़कर बाकी की सब पंक्तियाँ अबतक सुरक्षित हैं।

शिला पर के अक्षर भी सुन्दर और साफ हैं। परन्तु पहले शतक

---

[१] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ८, पृ० २४१, २६०।

[२] इनकी भाषा महाराष्ट्री मानी गई है। परन्तु उसमें अपभ्रंश के रूप भी पाए जाते हैं।

[३] इन स्थानों पर 'ओं' के पहले '९' इस प्रकार के ओङ्कार के चिह्न भी बने हैं।

के ६५वें श्लोक में 'चक्कमणमणमग्गो'[1] के स्थान पर 'चम्मकणमणमग्गो' खुदा हुआ है।

पहले शतक में अनेक स्थानों पर शब्दों और भावों की समानता मिलती है। उदाहरण के लिये पहले शतक के श्लोक[2] २३ और २८; ३२ और ३३; ९८ और १०१ उद्धृत किए जा सकते हैं। इनमें का अधिकांश भाग एक ही है।

---

[1] दन्तिकिरिपन्नएहिं
देक्खावेक्खीए धारिआ धरणी।
चम्मकणमणमग्गे
निव्वडिअं एत्थ कुम्मस्स ॥६५॥

संस्कृतच्छाया :—

दन्तिकिरिपन्नगैः प्रावेक्ष्य धारिता धरणी।
चंक्रमणमार्गे निपतितमत्र कूर्मस्य ॥

अन्य अशुद्धियों आदि के लिये देखो एपिग्राफिया इण्डिका, भा० ८, पृ० २४१, २४२।

[2] परिकलिउं न चइज्जइ अज्झवसाओ हु एत्थ पुरिसाण।
कुम्मस्स तं खु रू [अं] ववसाओ सो हु पुण तस्स ॥२३॥

संस्कृतच्छाया :—

परिकलितुं न त्यज्यते अध्यवसायः खलु अत्र पुरुषाणाम्।
कूर्मस्य तत्खलु रूपं व्यवसायः स खलु पुनस्तस्य ॥

*　　　*　　　*

परिकलिउं न चइज्जइ अज्झवसाओ हु एत्थ पुरिसाण।
कुम्मेण तं खु कलिअं हिअए वि हु जन्न सम्माइ ॥२८॥

संस्कृतच्छाया :—

परिकलितुं न त्यज्यते अध्यवसायः खलु अत्र पुरुषाणाम्।
कूर्मेण तत्खलु कलितं हृदयेपि खलु यन्न सम्माति ॥

इसी प्रकार श्लोक[1] १० और ५५; १४ और १०१; ९३ और ९४ में भी बहुत कम भेद है। 'नय जाओ नेअ जम्मिहिइ' यह श्लोक का चौथा पाद[2] १०वें; १६वें; ४८वें; ५५वें और ८५वें; श्लोकों में अविकृत रूप से मिलता है।

इन काव्यों के प्रारम्भ के श्लोकों में शिव की स्तुति की गई है। इसके बाद प्रथम काव्य में कूर्म्मावतार की प्रशंसा है :—

मूल

कुम्मेण को णु सरिसो विणा विकज्जेण जेण एक्केण।
जह निअसुहस्स पट्ठी तहदिएणा भुअण भारस्स ॥५॥

संस्कृतच्छाया :—

कूर्मेण कोनु सदृशो विनापि कार्येण येनैकेन।
यथा निज सुखस्य पृष्ठं तथा दत्तं भुवनभारस्य।

---

[1] पायाले मज्जंतं खंधं दाऊण भुअण मुद्धरिअं।
तेण कमठेण सरिसो नय जाओ नेअ जम्मिहिइ ॥१०॥

संस्कृतच्छाया :—

पाताले मज्जन्तं स्कन्धं दत्वा भुवनमुद्धृतम्।
तेन कमठेन सदृशो न च जातो नैव जनिष्यते ॥

* * *

जाओ सोच्चिअ वुच्चइ जम्मो सहलो हुतस्स एक्कस्स।
जस्स सरिच्छो भुअणे नय जाओ नेअ जम्मिहिइ ॥५५॥

संस्कृतच्छाया :—

जातः स चैव उच्यते जन्म सफलं खलु तस्य एकस्य।
यस्य सदृशो भुवने न च जातो नैव जनिष्यते ॥

[2] इसका उदाहरण ऊपर उद्धृत श्लोक १० और ५५ में ही मिल जायगा।

अर्थ

उस कछुए (कूर्मावतार) की बराबरी कौन कर सकता है जिसने अपने सुख को पीठ देकर (छोड़कर) अकेले ही पृथ्वी के भार को भी पीठ दी (अर्थात् धारण किया)।

इस सारे काव्य में यही भाव दिखलाया गया है। परन्तु दूसरे काव्य में कवि ने राजा भोज को कूर्म्मावतार से भी अधिक मानकर उसकी प्रशंसा की है :—

मूल

धरणि तुमं अइ गरुई तुज्झ सयासाओ कच्छओ गरुओ।
भोएण सोवि जित्तो गरुआहिम्वि अत्थि गरु अयरो ॥१८॥

संस्कृतच्छाया :—

धरणि ! त्वमति गुर्वी तव समाश्वासकः कच्छपो गुरुकः।
भोजेन सोपि जितो गुरुतायामपि अस्ति गुरुकतरः ॥

अर्थ

हे पृथ्वी ! तू बहुत भारी (बड़ी) है, और तुझे सहारा देने वाला कच्छप और भी बड़ा है। परन्तु भोज ने बड़ाई में उसको भी जीत लिया है। इसीलिये राजा भोज सब से बड़ा है।

इस द्वितीय काव्य मे, अनेक स्थानों पर, स्वयं भोज को लक्ष्य करके भी उसकी प्रशंसा की गई है।[1] इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन काव्यों का कर्त्ता स्वयं भोज न होकर कोई अन्य कवि ही था।

---

[1] धवलो सो च्चिअ वुच्चइ भर धारण वावडेहिं समयं पि।
उच्चल्लइ जो गु भरं सो एक्को भोअ तं चेअ ॥५॥

यद्यपि इन काव्यों की कविता साधारण है, उसमें विशेष चमत्कार नज़र नहीं आता, तथापि सम्भव है द्वितीय शतक में की गई अपनी प्रशंसा को देखकर ही भोज ने इन्हें अपनी कृति के नाम से अङ्गीकार कर लिया हो और अपनी बनवाई पाठशाला में, शिला पर खुदवा कर, रखने की आज्ञा दे दी हो।

सरस्वतीकण्ठाभरणम्[1]

यह भोजदेव का बनाया व्याकरण का ग्रन्थ है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ का अंश :—

मूल

प्रणम्यैकात्मतां यातौ प्रकृतिप्रत्ययाविव।
श्रेयः पदमुमेशानौ पदलक्ष्म प्रचक्ष्महे॥

संस्कृतच्छाया :—

धवलः स चैव उच्यते भरधरणव्यापृतेपि समयेपि।
उच्चालयति यः खलु भरं स एकः भोज ! त्वमेव॥

* * *

इह अप्पस्स सयासा बुज्भइ लहुअं इमेण विहिएण।
चडइ को इह गुणो भूवइ धरणीधरं तस्स॥७॥

संस्कृतच्छाया :—

इह आत्मनः सकाशाद्बुध्यते लघुकं अनेन विधिना।
भण चटति क इह गुणः भूपते ! धरणीं धरतः॥

(सम्भव है इन शतकों के प्राकृत छन्दों की संस्कृत 'छाया' में कहीं गलती रह गई हो। विज्ञ-पाठक उसे सुधार लेने की कृपा करें।)

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खण्ड १ 'बी', पृ० ४८८०-८१।

अर्थ

धातु (Root) और (उसमें लगे) प्रत्यय (affix) की तरह (अर्धनारीश्वर रूप से) मिले हुये पार्वती और शङ्कर को प्रणाम करके कल्याणकारी (सुप्तिङन्तरूप) पद के लक्षण (व्याकरण) को कहते हैं।

मूल

अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल्। सिद्धिः क्रियादेर्लोकात्। भूवादिः क्रियावचनो धातुः। जुचुलुम्पादिश्च। सनाद्यन्तश्चाणिङः।

अर्थ

'अइउण्' से 'हल्' तक के व्याकरण के ये १४ सूत्र महादेव के डमरू से निकले हुए माने जाते हैं। क्रिया आदि की सिद्धि लोगों के प्रयोगों को देखकर होती है। क्रियावाचक 'भू' आदि धातु कहलाते हैं। इसी प्रकार 'जु', और 'चुलुम्प', आदि भी धातु हैं। (ये सौत्र धातु हैं) जिनके अन्त में 'सन्' से लेकर 'णिङ्' तक के प्रत्यय हों ऐसे शब्द भी धातु हैं।

ग्रन्थ समाप्ति का अंश :—

मूल

अपदादौ पादा(दि)के वाक्ये। स्वरितस्यैकश्रुतौ सिद्धिः।

अर्थ

'पद' अथवा 'पाद' के आदि में स्थित युष्मद् अस्मद् शब्दों को 'ते' 'मे' आदि आदेश नहीं होते हैं। परन्तु वाक्य में ये आदेश विकल्प से होते हैं। एक श्रुति होने पर स्वरित के आदि का 'इक्' 'उदात्त' हो जाता है।

मूल

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरभोजदेवविरचिते सरस्वतीकण्ठाभरण नाम्नि व्याकरणेऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ।

अर्थ

यहाँ पर महाराजाधिराज, परमेश्वर, भोजदेव के बनाए 'सरस्वती कण्ठाभरण' नामक व्याकरण में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

राजमार्तण्ड नाम योगसारसंग्रह[1]

इसमें अनेक तरह के तैल औषधि आदि का निरूपण किया गया है। इसकी श्लोक संख्या ५६० है ।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

नीलस्निग्धगिरीन्द्रजालकलतासम्बद्धबद्धस्पृहः ।
चन्द्रांशुद्युतिशुभ्रदंष्ट्रवदनः प्रोत्सर्पदुग्रध्वनिः ।
लीलोद्रेककरप्रवाहदलितोद्दामद्विपेन्द्रः श्रियं
दिश्याद्वोग्निशिखापिशङ्गनयनश्चण्डीशपञ्चाननः ।

अर्थ

नीली और चिकनी हिमालय की लताओं के जाल में रहने वाला, चंद्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल डाढ़ों से शोभित मुखवाला, घोर गर्जन करने वाला, खेल में ही, पंजे के प्रहार से बड़े बड़े हाथियों की मस्ती को भगाने वाला, और आगकी लपट को सी लाल आँखों वाला, पार्वती-पति पाँच मुखों वाला, महादेव तुम्हें धनवान् करे ।

---

[1] बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित, और राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित, संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २, पृ० ११२ ।

इस श्लोक में 'पंचानन' में श्लेष रखकर महादेव और सिंह में समानता दिखलाई गई है।

महादेव और सिंह दोनों ही हिमालय के लता कुंजों में रहते हैं। महादेव की चन्द्रकला और सिंह की डाढ़ एक सी प्रतीत होती है। दोनों क्रुद्ध होने पर घोर गर्जन करते हैं। सिंह हाथी को मार देता है और महादेव ने 'गजासुर' को मारा था। महादेव की आँखें, नशे से या क्रोध से, और शेर की स्वभाव से या क्रोध से लाल रहती हैं।

मूल

दृष्ट्वा रोगैः समग्रैर्जनमवशमिमं सर्व्वतः पीड्यमानं
योगानां संग्रहोऽयं नृपतिशतशिरोधिष्ठिताज्ञेन राज्ञा।
कारुण्यात् सन्निबद्धः स्फुटपदपदवीसुन्दरोद्दामबन्धै-
र्वृत्तैरुद्वृत्तशत्रुप्रमथनपटुना राजमार्तण्डनामा॥

अर्थ

सैकड़ों राजाओं द्वारा आदरणीय आज्ञा वाले, और शत्रुओं का नाश करने में चतुर, राजा भोज ने संसारी जीवों को, सब तरफ़ से रोगों से, पीड़ित और विवश देखकर, तथा उनपर दया करके सुन्दर छन्दों वाला, 'राजमार्तंड' नामक यह योगों का संग्रह लिखा।

समाप्ति का अंश :—

मूल

समस्तपाथोनिधिवीचिसञ्चय-
प्रवर्तितान्दोलनकेलिकीर्तिना।
प्रकाशितो भोजनृपेण देहिनां
हिताय नानाविधयोगसंग्रहः॥

अर्थ

जिसका यश तमाम समुद्रों की तरंगों से खेलता है, (अर्थात

चारों तरफ़ फैला हुआ है), ऐसे राजा भोज ने लोगों के फ़ायदे के लिये अनेक तरह के योगों का संग्रह प्रकाशित किया।

मूल

महाराज श्रीभोजराजविरचितो राजमार्तण्डनामयोगसार-संग्रहः समाप्तः।

अर्थ

यहाँ पर श्रीभोजराज का बनाया 'राजमार्तण्ड' नामक योगसार संग्रह' समाप्त हुआ।

तत्त्वप्रकाशः[1]

विषय पशुपतिपाश-निरूपण या शैव-दर्शन।

श्लोक संख्या ९५।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

चिद्घन एको व्यापी नित्यः सततोदितः प्रभुः शान्तः।
जयति जगदेकबीजं सर्वानुग्राहकः शम्भुः॥

अर्थ

श्रेष्ठ ज्ञानवाला, अकेला, सब जगह व्याप्त, नित्य, हर समय प्रकाशमान, सब का स्वामी, शान्तरूप, जगत् की उत्पत्ति का कारण, और सब पर कृपा करनेवाला, ऐसा महादेव सब से श्रेष्ठ है।

---

[1] बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित, और राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित, हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की सूची, नं० १, पृ० ८६।

समाप्ति का अंश :—

मूल

यस्याखिलं करतलामलकक्रमेण
देवस्य विस्फुरति चेतसि विश्वजातम्।
श्रीभोजदेवनृपतेः स शिवागमार्थं
तत्त्वप्रकाशमसमानमिमं व्यधत्त ॥३५॥

अर्थ

जिस राजा भोजदेव के चित्त में तमाम जगत् की बातें हाथ में रक्खे हुए आँवले की तरह प्रकट रहती हैं, उसी ने शैव सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखनेवाले इस 'तत्त्व प्रकाश' नामक अपूर्व ग्रन्थ को बनाया है।

इस ग्रन्थ पर अघोर शिवाचार्य की बनाई टीका भी मिली है।[1]

सिद्धान्तसंग्रहविवृतिः[2]

यह भोज के बनाए 'सिद्धान्तसंग्रह' की टीका है। इसके कर्ता का नाम सोमेश्वर था। इसका मैटर ९२० श्लोकों का है, और इसका सम्बन्ध शैवमत से है।

प्रारम्भ का अंश :—

मूल

सोमं सोमेश्वरं नत्वा सोमं सोमार्द्धधारिणम्।
सोमेश्वरेण विवृतो भोजसिद्धान्तसंग्रहः ॥

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पु स्वामी संपादित गवर्नमेंट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खण्ड १, 'सी', पृ० ४८०७-८।

[2] श्रीयुत राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा सम्पादित और बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ८, पृ० ३०२।

अर्थ

अर्थात्—पार्वती सहित सोमेश्वर महादेव को सोम (रस या यज्ञ) और अर्ध-शशाङ्क को धारण करने वाले शिव को नमस्कार करके सोमेश्वरद्वारा भोज के बनाए सिद्धान्त संग्रह की टीका लिखी गई है।

मूल

अथ शब्द ब्रह्मणस्तात्पर्य्यमविद्वांसो न परं ब्रह्माधिगच्छेयुः। तदस्य कुत्र तात्पर्य्यमित्यपेक्षायां परमकारुणिको भोजराजो निजशक्ति-सिद्धपरमेश्वर...भावे सत्तासमानाख्यब्रह्मणि परकोटौ शिवस्वरूपेति। मङ्गलपूर्वकं पुराणार्थं संगृह्णाति। सच्चिदानन्दमयः परमात्मा शिवः। इत्यादि।

अर्थ

अर्थात्—शब्द ब्रह्म के तात्पर्य को नहीं जानने वाले पुरुष पर-ब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये इसका क्या तात्पर्य है, इसको जानने की जरुरत होने से, दयावान राजा भोज ने, अपनी सामर्थ्य से सिद्ध है परमेश्वरभाव जिसमें ऐसे सत्ता से प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ, शिवरूप ब्रह्म में पुराणों का मुख्य तात्पर्य बतलाते हुए, उसका खुलासा किया है, कि वह शिव के रूप से ही तात्पर्य रखता है। और इसीलिये वह मङ्गलाचरण में पुराणों के उस अर्थ को ग्रहण करता है, कि सत्, चित् और आनन्दरूप परमात्मा शिव है, आदि।

समाप्ति का अंश :—

मूल

एवञ्च सर्व्वदा सर्व्वत्र सर्व्वेषां...रूपः शिव एव सर्वात्मना उपास्यः। तस्यैव ईश्वर वा...देवादिर्व्यौपाधिकनिरूपितानि तान्यपि सर्व्वैस्तथैव उपास्यानि...इति सिद्धम्।

अर्थ

इस प्रकार हमेशा सब जगह सब को सब तरह से (ब्रह्म) रूप शिव की ही उपासना करनी चाहिए। उसी को ईश्वर (ता प्राप्त होने के कारण) उपाधि भेद से प्राप्त हुए उसके रूपों (अन्य देवादिकों) की भी उसी तरह उपासना करनी चाहिये, यह बात सिद्ध होती है।

द्रव्यानुयोगतर्कणाटीका[1]

यह भोज की बनाई श्वेताम्बर-जैन-सम्प्रदाय के 'द्रव्यानुयोगतर्कणा' नामक ग्रन्थ की टीका है। इसके प्रारम्भ का अंश :—

मूल

श्रियां निवासं निखिलार्थ वेदकं
सुरेन्द्रसंसेवितमन्तरा······।
प्रमाणयन्त्या···नयप्रदर्शकं
नमामि जैनं जगदीश्वरं महः॥

अर्थ

अर्थात्—सब तरह के कल्याणों के स्थान, सर्वज्ञ, इन्द्र से पूजित, और श्रेष्ठ मार्ग को बतलाने वाले, जिनके ईश्वरीय तेज को नमस्कार करता हूँ।

टीका की समाप्ति का अंश :—

मूल

तेषां विनेयलेशेन भोजेन रचितोक्तिभिः।
परस्वात्मप्रबोधार्थं द्रव्यानुयोगतर्कणा॥

---

[1] श्रीयुत राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित, और बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित, संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों की सूची, भा० ७, पृ० २५८-५९।

अर्थ

अर्थात्—उनकी[1] शिक्षा के प्रभाव से, भोज ने अपने और दूसरों के ज्ञान के लिये, 'द्रव्यानुयोगतर्कणा' (की टीका) तैयार की।

इसका मैटर २,१८१ श्लोकों का बतलाया जाता है।

नहीं कह सकते कि यह कौन सा भोज था? साथ ही अन्त के श्लोक से भोज के टीकाकार होने के स्थान में ग्रन्थकार होने का भ्रम भी होता है। परन्तु असली ग्रन्थ और उसकी टीका को देखे बिना इस विषय में कुछ नहीं कह सकते।

भोजदेव संग्रहः[2]

श्लोक-संख्या ६००। गद्य-पद्य मय

प्रारम्भ का अंशः—

मूल

सर्व्वज्ञमद्वयमनादि मनन्तमीशं
मूर्द्धाभिवन्द्य वचनैर्विविधैर्मुनीनाम्।
आ*द्प्रबोधमुदयन्नमुदानिधानं
दामोदरोऽव्यरचयद् गुणिनः! क्षमध्वम्॥

---

[1] टीका के प्रारम्भ के ये श्लोक भी ध्यान देने लायक हैं:—

विद्यादेवपुरोहित प्रतिनिधि श्रीमत्तपागच्छपं
प्रख्यातं विजयाद्दयागुणधरं द्रव्यानुयोगेश्वरम्॥
श्रीभावसागरं नत्वा श्रीविनीतादिसागरम्।
प्रबन्धे तत्प्रसादेन किञ्चिद्व्याख्या प्र (तन्) यते॥

[2] नेपाल दरबार के पुस्तकालय की, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित, सूची, (१९०५) पृ० १२०-२१।

अर्थ

सब के ज्ञाता, सबसे श्रेष्ठ, आदि अन्त से रहित, ईश्वर को प्रणाम करके दामोदर ने अनेक मुनियों के वचनों के आधार पर, ज्योतिषियों को प्रसन्न करने वाला, यह 'आब्द प्रबोध' नामक ग्रन्थ बनाया है। हे विद्वान् लोगो! (गलती के लिये आप) क्षमा करें।

मूल

करवदरसदृशमखिलं लिखितमिव तौ[1] निषिक्तमिवहृदये।
सचराचरं त्रिभुवनं यस्य सजीयाद्व वराहमिहिरमुनिः॥

अर्थ

जिसके सामने चर और अचर वस्तुओं वाले तीनों लोक हाथ में रक्खे हुए बेरकी तरह, लिखे हुए की तरह, या हृदय में रक्खे हुए की तरह, जाहिर थे ऐसा मुनि वराहमिहिर श्रेष्ठ पद को प्राप्त हो।

मूल

स्वस्याभिधेय विपुलाभिधान बहु संग्रहैरजातमुदः:।
लघुमलघुवाच्य संग्रहमवदधतुसुपद्यगद्यमिमम्॥

अर्थ

अपने विषय और कथनसंबंधी बड़े बड़े संग्रहों से भी प्रसन्न न होने वाले लोग इस पद्य और गद्यवाले छोटे से संग्रह को, जिसमें बहुत कुछ कह दिया गया है, ध्यान से सुनें।

---

[1] इसका अर्थ अज्ञात है। यहाँ पर कोई अक्षर नष्ट हुआ सा प्रतीत होता है; क्योंकि इस आर्या छन्द के द्वितीय पाद में १८ के स्थान में १७ मात्राएँ ही हैं। सम्भव है "तौ" के स्थान में "मतौ" पाठ हो और उसका अर्थ 'बुद्धि में लिखा हुआ सा हो।'

मूल

श्रीभोजदेवनृपसंग्रहसवसारं
सारञ्च संग्रहगणस्य वराहसाम्यात् ।
योगीश्वरादिबुधसाधुमतं गृहीत्वा
ग्रन्थोयथागमकृतो न विकल्पनीयः ॥

अर्थ

राजा श्री भोजदेवकृत संग्रह के सार को, और दूसरे संग्रहों के सारों को, तथा योगीश्वर, आदि विद्वानों के मतों को, लेकर, वराहमिहिर के मतानुसार शास्त्र की रीति से यह ग्रन्थ बनाया है इसमें शंका नहीं करनी चाहिये ।

मूल

वक्ष्यामिभूपमधिकृत्य गुणोपपन्नं
विज्ञात जन्म समयं प्रविभक्तभाग्यम् ।
अज्ञातसूतिमथवाविदितास्य[1] भाग्यं
सामुद्रयाश्रिक[2] निमित्तशतैः पृथक्कैः ॥

अर्थ

इस ग्रन्थ को मैं उस राजा के आधार पर, जो कि गुणों से युक्त है, जिसका जन्म समय मालूम है, और जिसका भाग्य दूसरों से अलग

---

[1] यहाँ पर पाठ अशुद्ध है और श्लोक के उत्तरार्ध का अर्थ भी साफ समझ में नहीं आता ।

[2] सम्भवतः यहाँ पर 'सामुद्रिकाश्रय' पाठ हो ।

इसी भाव का एक श्लोक भोजरचित 'राजमार्तण्ड' के तिथिनिर्णय प्रकरण में भी मिलता है :—

अथ विदित जन्म समयं नृपमुद्दिश्य प्रवक्ष्यते यात्रा ।
अज्ञाते तु प्रसवे गमने गमनं स्यात्कचित्कचित् ॥३८॥

(श्रेष्ठ) है, अथवा जिसके जन्म का और भाग्य का सामुद्रिक शास्त्र के अनेक लक्षणों के अनुसार पता नहीं है, कहूँगा।

समाप्ति का अंश :—

मूल

शके सम्वत् १२९७ फाल्गुन शुक्ल द्वितीयायां रेवती नक्षत्रे शुक्र दिने शुभलग्ने लिखितमिदं पुस्तकं श्रीश्रीजयार्जुनदेवस्य यथा दृष्टं तथालिखितम्।

अर्थ

शक सम्वत् १२९७ की फागुन सुदि २, रेवती नक्षत्र के श्रेष्ठ दिन और शुभ लग्न में, श्री जयार्जुनदेव की यह पुस्तक लिखी। जैसी देखी वैसी लिखी है।

इससे ज्ञात होता है कि राजा भोजदेव ने वराहमिहिर के मत के आधार पर ज्योतिष शास्त्र का एक संग्रह भी तैयार किया था।

वैद्यनाथ-रचित 'तिथिनिर्णय' के प्रारम्भ में यह श्लोक दिया हुआ[१] है:—

ॐ।

विज्ञानेश्वरयोगिना भगवतानन्तेन भ च
श्रीमद्भोजमहीभुजातिथिगणेषु निर्णयोऽङ्गीकृतः।
सोयं सम्प्रति वैद्यनाथ विदुषा संक्षेपतः कथ्यते
ज्योतिर्वेदविदामनिन्दितधियामानन्दसम्भूतये॥

---

[१] बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित, और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित, हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की सूची, (द्वितीय-माला Second Series) भा० ४, पृ० ८२।

अर्थ

योगी विज्ञानेश्वर, अनन्तभट्ट, और राजा भोज ने तिथियों का जो निर्णय माना है वही ज्योतिषशास्त्र के पंडितों के आनन्द के लिये वैद्यनाथ पण्डितद्वारा इस ग्रन्थ में संक्षेप से कहा जाता है।

इससे ज्ञात होता है कि राजा भोजदेव ने 'तिथिनिर्णय' पर भी अपना मत लिपिबद्ध किया था।

हनूमन्नाटकम् (अथवा महानाटकम्)[1]

ऐसी जनश्रुति है कि, कपि-पुंगव हनूमान ने इस नाटक को बनाकर पहाड़ की शिलाओं पर खोद दिया था। परन्तु जब वाल्मीकि ने उसे पढ़ा तो उन्होंने सोचा कि यह बहुत ही विशद रूप से लिखा गया है। इसलिये इससे उनकी बनाई रामायण का आदर कम हो जायगा। यह सोच, उन्होंने हनूमान से कह सुनकर उन शिलाओं को समुद्र में डलवा दिया। परन्तु अन्त में भोज ने, उन शिलाओं को समुद्र से निकलवा कर,[2] उस लुप्त-प्राय ग्रन्थ का, अपने सभा-पण्डित दामोदर द्वारा, फिर से जीर्णोद्धार करवा डाला।

एक तो उस समय इस नाटक का असली नाम न मिलने के

---

[1] अत्रेयं कथा पूर्व्वमेवेदं टङ्कगिरिशिलासु लिखितं, तत्तु वाल्मीकिना दृष्टं। तदेतस्य अतिमधुरत्वमाकलय्य......प्रचारभाव शङ्कया हनूम......त्वं समुद्रे निधेहि। तथेति तेनाब्धौ प्रापितं.. भग्नेन भोजेन बल......रुद्धृतमिति॥

(मोहनदास विरचिता हनूमन्नाटकदीपिका)

[2] बंगाल में मधुसूदन मिश्र द्वारा संग्रह किए गए इस नाटक का बहुत प्रचार है। परन्तु उसमें और भोजद्वारा उद्धृत नाटक में विषय के एक होने पर भी पाठान्तरों के साथ साथ कई श्लोकों में भी भिन्नता है।

कारण इसका नाम इसके कर्ता के नाम पर 'हनूमन्नाटक' रख दिया गया था। और दूसरा उक्त नाटक के चमत्कारपूर्ण होने से लोगों में यह 'महानाटक' के नाम से भी प्रसिद्ध हो गया।

जनश्रुति मे इसके जीर्णोद्धार कर्ता का नाम कालिदास बतलाया जाता है; जो भोज का सभा-पण्डित माना जाता है। परन्तु उक्त नाटक के टीकाकार के मत से यह मत मेल नहीं खाता। कुछ बङ्गाली विद्वान् मधुसूदन मिश्र को इसका जीर्णोद्धार कर्ता मानते हैं।

इस नाटक मे श्री रामचन्द्र का चरित्र वर्णन किया गया है और इसकी श्लोक संख्या १७७५ के करीब है।[1]

नाटक के प्रारम्भ का अंश :—

मूल

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं जीवनानां[2]
वीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

अर्थ

कल्याण का खज़ाना, कलिकाल के पाप को नष्ट करनेवाला, पवित्र को भी पवित्र करने वाला, परमपद पाने के लिये चले और मोक्ष चाहने वाले के, मार्ग का (भोजनादि का) सहारा, श्रेष्ठ कवियों के वचनों के विश्राम की जगह, जीवन देनेवाली वस्तुओं को भी जीवन देनेवाला, धर्मरूपी वृक्ष का बीज, ऐसा राम का नाम आप लोगों के कल्याण के लिये हो।

---

[1] बंगाल गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित, और राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा सम्पादित, हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की सूची, भा० ९, पृ० २७-२९।

[2] 'जीवनानां' के स्थान में 'सज्जनानां' पाठ भी मिलता है।

मूल

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धाबुद्ध[1] इति प्रमाणपटवः कर्तेतिनैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशास्त्रनिरताः कर्म्मेति मीमांसकाः
सोयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

अर्थ

शैव मत वाले शिव, वेदान्ती ब्रह्म, बौद्धमतावलम्बी बुद्ध, प्रमाण (या तर्क) में चतुर नैयायिक संसार का कर्ता, जैनमतावलम्बी अर्हन, मीमांसक कर्म, कहकर जिसकी, उपासना करते हैं वह तीन लोकों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) का स्वामी विष्णु तुम्हारी इच्छा पूरी करे।

मूल

आसीदुद्भटभूपतिप्रतिभटप्रोन्माथि विक्रान्तिको
भूपः पंक्तिरथोविभावसुकुलप्रख्यातकेतुर्बली।
ऊर्व्यां वर्व्वरभूरिभारहृतये भूरिश्रवाः पुत्रतां
यस्य स्वांशमथो[2] विधाय महितः पूर्णश्चतुर्धाविभुः॥

अर्थ

उद्दण्ड विपक्षी राजाओं को नाश करने की ताकत रखने वाला, सूर्यवंश में प्रसिद्ध, बलवान् और वीर राजा दशरथ हुआ। (जिसके

---

[1] इस श्लोक में बुद्ध का नाम आने से ज्ञात होता है कि या तो यह श्लोक दामोदर मिश्र ने अपनी तरफ़ से मिलाया है, या यह नाटक ही बुद्ध के बहुत बाद का है। क्योंकि इसमें बुद्ध को विष्णु का अवतार कहा गया है।

[2] किसी किसी प्रति में 'यस्यार स्वमथो' पाठ भी मिलता है। वहाँ पर 'महितः' का अर्थ (पुत्र के लिये) पूजन किया हुआ और 'आर' का अर्थ प्राप्त हुआ होगा।

घर में) पृथ्वी पर फैले हुए दुष्ट लोगों के भार को हरण करने के लिये स्वयं वन्दनीय विष्णु ने अपने अंश के चार हिस्से कर (राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में) पुत्र रूप से जन्म लिया।

नाटक की समाप्ति पर का अंश :—

मूल

चतुर्दशभिरे[1]वाङ्कैर्भुवनानिचतुर्दश।
श्रीमहानाटकं धत्ते केवलं वर्त्म[2]निर्मलम्॥

अर्थ

यह नाटक अपने १४ अङ्कों से १४ भुवनों के निर्मल मार्ग को धारण करता है।

मूल

रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ
निहितममृतबुद्ध्या प्राङ्महानाटकं यत्।
सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं तत् क्रमेण
ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण॥

अर्थ

यह महानाटक पहले वायु-पुत्र हनूमान् ने बनाया था। और वाल्मीकि ने इसे अत्युत्तम (या अमृत तुल्य) समझ समुद्र में डाल दिया था। परन्तु बुद्धिमान् नरेश भोज ने इसे वहाँ से निकलवालिया। वही नाटक फिर से दामोदर मिश्र द्वारा तैयार होकर जगत् की रक्षा करे।

---

[1] इससे प्रकट होता है कि इसमें कुल १४ अङ्क हैं। यह नाटक छप चुका है।

[2] 'वर्त्म' के स्थान में 'ब्रह्म' पाठ भी है। इस शब्द का अर्थ मोक्ष होगा।

मूल

इति श्रीमद्धनूमद्रचिते महानाटके श्रीरामविजयो नाम चतुर्दशोङ्कः।

अर्थ

यहाँ पर श्री हनूमान् के बनाए महानाटक में श्री रामचन्द्र की विजय नाम वाला चौदहवाँ अङ्क समाप्त हुआ।

भोज राजाङ्कः[1]

यह सुन्दर वीर राघव का बनाया एक अङ्क का रूपक है। इसमें भोज के विरुद्ध कल्पित षडयंत्र का उल्लेख है। साथ ही इसमें सिन्धुल, शशिप्रभा[2], भोज और लीलावती[3] के नाम दिए हैं। यह रूपक, पेन्नार नदी तटस्थ 'तिरुकोयिलूर' गाँव के 'देहलीश' के मन्दिर में खेलने के लिये बनाया गया था।

इसी प्रकार 'सिंहासन द्वात्रिंशत्कथा' और शायद 'वेतालपञ्चविंशति:' में भी भोज से सम्बन्ध रखने वाली कल्पित-कथाएँ हैं।

शब्दसाम्राज्यम्[4]

इस व्याकरण में भोजीय व्याकरण के सूत्रों के अनुसार शब्दसिद्धि

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २, खण्ड १ 'सी,' पृ० २४१३-१५।

[2] नवसाहसाङ्क चरितमें सिन्धुल की स्त्री का नाम शशिप्रभा लिखा है।

[3] कथाओं के अनुसार यह भोज की स्त्री का नाम था।

[4] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ३, खण्ड १ 'बी,' पृ० ३३६२-६४।

दी गई है। साथ ही इसमें अन्य व्याकरणाचार्यों के मतों का भी उल्लेख है।

गिरिराजीय टीका[1]

यह 'काटयवेम' की लिखी 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की टीका है। इसमें लिखा है :—

> मुनीनां भरतादीनां (भोजादीनां) चभूभृताम्।
> शास्त्राणि सम्यगालोच्य नाट्यवेदार्थ वेदिनाम्॥

इस से प्रकट होता है कि भरत मुनि के समान ही राजा भोज भी 'नाट्य शास्त्र' का आचार्य माना जाता था।

स्मृतिरत्नम्[2]

इस ग्रन्थ का कर्ता लिखता है :—

> भोजराजेन यत्प्रोक्तं स्मार्त्तमन्यत्र चोदितम्।
> न्यायसिद्धं च संगृह्य वचनानि पुरातनैः॥
> अनुष्ठान प्रकारार्थं स्मृतिरत्नं मयोच्यते।

इससे ज्ञात होता है कि राजा भोज धर्मशास्त्र का भी आचार्य समझा जाता था।

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० १, खण्ड १, 'ए,' पृ० ४०५।

[2] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० १, खण्ड १ 'बी,' पृ० ६४६।

अभिनवरामाभ्युदयम्[1]

इसके लेखक अभिरामकामाक्षी ने भोज की प्रशंसा में इस प्रकार लिखा है :

' · · सएव तेजस्सविताहिभोजः'

अर्थात्—वह तेज में सूर्य के समान भोज है।

पञ्चकल्याण चम्पू[2]

इसका लेखक चिदम्बर कवि भोज के विषय में लिखता है :—

भूयात्सभूरिविजयो भुवि भोजराजो
भूयानुदारकवितारसवासभूमिः ॥

अर्थात्—उदार (श्रेष्ठ) कविता के रस के रहने का स्थान वह भोजराज पृथ्वी पर बड़ी (या बहुत) विजय प्राप्त करे।

कन्दर्पचूड़ामणिः

इसके रचयिता श्री वीरभद्र राजा ने अपने ग्रन्थ में लिखा[3] है :—

भोजइवायं निरतो नानाविद्यानिबन्धनिर्माणे।
समयोच्छिन्नप्राये सोद्योगः कामशास्त्रेऽपि ॥२॥

अर्थात्—वह भोज के समान ही, अनेक विषयों के ग्रन्थ लिखने

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खण्ड १ 'बी,' पृ० ५२०३।

[2] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० ४, खण्ड १ 'ए,' पृ० ४२५७।

[3] अध्याय १०। यह ग्रन्थ छप चुका है।

में, और समय के प्रभाव से नष्ट प्राय कामशास्त्र को उन्नति (या ज्ञान प्राप्त) करने में, लगा हुआ है।

साहित्यचिन्तामणिः[1]

इसमें 'काव्य' के प्रयोजन बतलाते हुए ग्रन्थकार ने उदाहरण रूप से लिखा है :—

'भोजादेश्चित्तपप्रभृतीनामिव वाञ्छितार्थसिद्धिर्लाभः'

इससे प्रकट होता है कि भोज ने चित्तप आदि कवियों को बहुत कुछ उपहार दिया था।

सङ्गीतरत्नाकरः[2]

इसके रचयिता शार्ङ्गदेव ने लिखा है :—

उद्भ (रुद्र) टोऽनग्निभूपालो भोजभूवल्लभस्तथा।
परमर्दीच सोमेशो जगदेकमहीपतिः॥
व्याख्यातारो . . .

इससे ज्ञात होता है कि राजाभोज सङ्गीतशास्त्र का भी आचार्य था। इसकी पुष्टि आगे उद्धृत ग्रन्थ के लेख से भी होती है।

सङ्गीतसमयसारः[3]

इसका कर्ता पार्श्वदेव लिखता है :—

शास्त्रं भोजमतङ्गकश्यपमुखाः व्यातेनिरे ते पुरा।

---

[1] कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २२, पृ० ८७०१।

[2] कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २२, पृ० ८७४८।

[3] कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २२, पृ० ८७५२।

इस से सिद्ध होता है कि भोज ने सङ्गीत शास्त्र पर भी कोई ग्रन्थ लिखा था।

भेषजकल्पसारसंग्रहः[1]

इसके प्रारम्भ में लिखा है :—

बाहटे चरके भोजे वृद्धभोजे च हारिते।

❀ ❀ ❀

... तत्सारं समुद्धृतम् ॥

इससे प्रकट होता है कि भोज आयुर्वेद का भी आचार्य माना जाता था।

जाम्बवतीपरिणयम्[2]

इस काव्य के कर्ता एकामरनाथ ने राणा इम्मडि-अंकुश की प्रशंसा करते हुए राजा भोज की प्रशंसा में लिखा है :—

मूल

श्रुत्वा सत्कविवर्यभोजमहिभृत्सर्वज्ञशिङ्गमा
भूत्वाखिडत्यमवेक्ष्य भूतलपतीनज्ञानिदानीन्तनान्।

इससे ज्ञात होता है कि श्रेष्ठ कवियों ने राजा भोज की विद्वत्ता की बहुत कुछ प्रशंसा की है।

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा संपादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २३, पृ० ८८७३।

[2] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा संपादित गवर्नमेंट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २०, पृ० ७७३५।

नटेशविजयः[1]

इस काव्य के कर्ता वेङ्कट कृष्ण ने अपने आश्रयदाता नरेश गोपाल के लिये लिखा है :—

'बोधे कलानां नवभोजराजः'

अर्थात्—वह विद्या सम्बन्धी कलाओं के ज्ञान में नवीन भोज ही था।

रम्भामञ्जरी

इस 'सट्टक' के कर्ता नयचन्द्र सूरि ने जैत्रचन्द्र (जयचन्द्र) की प्रशंसा करते हुए उस की दानशीलता की तुलना राजा भोज से की है :—

दाणेणं वलिभोयविक्कमकहानिव्वाहगो नायगो।
सो एसो जयचन्दणाम ण पहू कस्सासये पीइदो॥

संस्कृतच्छाया—

दानेन बलि भोजविक्रम कथानिर्व्वाहको नायकः।
स एष जैत्रचन्द्रनाम न प्रभुः कस्याशये प्रीतिदः॥

अर्थात्—अपने दान से बलि, भोज, और विक्रम की कथा का निर्वाह करने वाला यह जैत्रचन्द्र किस के चित्त में प्रीति उत्पन्न नहीं करता है?

---

[1] महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी द्वारा संपादित गवर्नमेंट ओरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, की संस्कृत पुस्तकों की सूची, भा० २०, पृ० ७७४६।

भोज के वंशज

इस अध्याय में भोज के बाद होने वाले मालवे के परमार-नरेशों का संक्षिप्त इतिहास दिया जाता है :—

१० जयसिंह (प्रथम) सं० ९ (भोज) का उत्तराधिकारी

पहले लिखा जा चुका है कि, राजा भोज की मृत्यु के समय धारा पर शत्रुओं ने आक्रमण किया था। परन्तु इस जयसिंह ने कल्याण के सोलंकी (चालुक्य) सोमेश्वर (आहवमल्ल) से सहायता प्राप्त कर धारा के राज्य का शीघ्र ही उद्धार कर लिया।[1]

इस के राज्य समय इस के सामंत वागड़ के परमार शासक मंडलीक (मंडन) ने कन्ह नामक 'दण्डाधीश' को पकड़ कर इसके हवाले कर दिया था।

जयसिंह का वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५) का एक दानपत्र[2] और वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) का एक शिलालेख[3] मिला है।

उदयपुर (ग्वालियर) और नागपूर से मिली प्रशस्तियों में इस राजा का नाम नहीं है।

---

[1] स मालवेन्दुं शरणप्रविष्टमकण्टके स्थापयतिस्म राज्ये।

(विक्रमाङ्कदेवचरित, सर्ग ३, श्लो० ६७)

[2] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ३, पृ० ४८-५०।

[3] यह टूटा हुआ लेख बाँसवाड़ा राज्य के पाँणाँ हेडा गाँव के मंडलीश्वर के मन्दिर में लगा है।

११ उदयादित्य[1]=सं० १० का उत्तराधिकारी

यातो वि० सं० ११११६ (ई० स० १०५९) में जयसिंह मर गया था, या फिर उदयादित्य ने उस से मालवे का राज्य छीन लिया होगा।

इसी उदयादित्य ने अपने नाम पर उदयपुर नगर (ग्वालियर-राज्य में) बसाया था। वहाँ से मिली प्रशस्ति में भोज के पीछे जयसिंह का नाम न देकर उदयादित्य का ही नाम दिया है।[2] उसी में यह भी लिखा है कि इस (उदयादित्य) ने कर्णाट वालों से मिले हुए गुजरात के राज कर्ण से अपने पूर्वजों का राज्य छीन लिया था।[3]

---

[1] नागपुर से मिली प्रशस्ति में लिखा है:-

तस्मिन्वासवबन्धुतामुपगते राज्ये च कुल्याकुले
भग्नस्वामिनितस्य बन्धुरुदयादित्योऽभवद्भूपतिः।

इससे ज्ञात होता है कि यह उदयादित्य भोज का वंशज न होकर बन्धु था।

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० २, पृ० १८५)

[2] तत्रादित्य प्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुति मिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत्।
विस्रस्तांगो निहत्योद्भटरिपुति [मि] रं खड्गदण्डांशुजालै
रन्योभास्वानिवोद्यन्द्युतिमुदितजनात्मोदयादित्यदेवः ॥२१॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३६)

[3] नागपुर की प्रशस्ति से भी इस बात की पुष्टि होती है:—

येनोद्धृत्य महार्णवोपममिलत्कर्णाटकर्णप्रभु
त्यूर्वीपालकदर्थितां भुवमिमां श्रीमद्वराहायितम्

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० २, पृ० १८५)

इससे यह भी अनुमान होता है कि, शायद जयसिंह के गद्दी बैठने

इस की पुष्टि 'पृथ्वीराज विजय' से भी होती है। उस में लिखा है कि उदयादित्य ने, सांभर के चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) तृतीय के दिए, घोड़े पर चढ़कर गुजरात के राजा कर्ण को जीता।

इस से अनुमान होता है कि उदयादित्य ने, चौहानों से मेलकर, यह चढ़ाई (कर्ण के पिता) भीमदेव की मालवे पर की चढ़ाई का बदला लेने के लिये ही की होगी।

भोज की बनाई पाठशाला के स्तम्भों पर नरवर्मा के खुदवाए 'नागबंध' में उदयादित्य के बनाए संस्कृत के वर्णों, नामों और धातुओं के प्रत्यय दिए हुए हैं।[1]

इसका बनाया शिव का मन्दिर उदयपुर (ग्वालियर राज्य) में विद्यमान है। वहाँ पर परमार नरेशों के अनेक लेख लगे हैं। उनमें के दो लेखों से उक्त मन्दिर का वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) में उदयादित्य के राज्य समय प्रारम्भ होकर[2] वि० सं० ११३७ (ई० स० १०८०)

पर उसे कमज़ोर जान चेदि के राजा कर्ण ने फिर मालवे पर चढ़ाई की हो और उसी समय कर्णाटवालों की सेना जयसिंह की सहायता के लिये आई हो। परन्तु अन्त में जयसिंह के मारे जाने, अथवा अन्य किसी कारण से, वहाँ पर उदयादित्य ने अधिकार कर लिया हो।

[1] वहीं पर यह भी खुदा है :—

उदयादित्यदेवस्य वर्णनागकृपाणिका।
· · · मणिश्रेणी सृष्टा सुकविबन्धुना॥ · · ·।
कवीनां च नृपाणां च हृदयेषु निवेशिता॥

इसी प्रकार उसकी रचना के नमूने महाकाल के मन्दिर के पीछे की छतरी में लगे लेख के अन्त में, और 'ऊन' नामक गाँव में भी मिले हैं।

[2] जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ६, पृ० ५४६। परन्तु डाक्टर हाल (Dr. F. E. Hall) के मतानुसार यह लेख सन्दिग्ध है।

में समाप्त होना प्रकट होता है।[1] उदयादित्य के समय का वि० सं० ११४३ (ई० स० १०८६) का एक लेख झालरापाटन से भी मिला है।[2]

भाटों की ख्यातों में उदयादित्य के छोटे पुत्र जगदेव की वीरता का लम्बा किस्सा लिखा मिलता है।[3] परन्तु शायद इस में सत्य का अंश बहुत ही थोड़ा है। हाँ, परमार नरेश अर्जुनवर्मा की लिखी 'अमरु शतक' की 'रसिक संजीवनी' नामक टीका के इस अवतरण[4] से—

यथास्मत्पूर्वजरूपवर्णने नाचिराजस्य :—
सत्रासा इव सालसा इव लसद्गर्वा इवार्द्रा इव
व्याजिह्मा इव लज्जिता इव परिभ्रान्ता इवार्ता इव ।
त्वद्रूपे निपतन्ति कुत्र न जगद्देव प्रभो सुभ्रुवां
वातावर्तनर्तितोत्पलदलद्रोणिद्रुहो दृष्टयः ॥

इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि जगदेव नाम का वीर और उदार पुरुष इस वंश में अवश्य हुआ था।

---

[1] इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भा० २०, पृ० ८३।

[2] जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, (१९१४) भा० १०, पृ० २४१-२४३।

[3] मिस्टर फ़ॉर्ब्स ने 'रासमाला' में लिखा है कि, उदयादित्य की सोलङ्किनी रानी से जगदेव का जन्म हुआ था। युवावस्था में विमाता की ईर्ष्या के कारण उसे धारा को छोड़कर अणहिलवाडे के राजा सोलङ्की सिद्ध-राज-जयसिंह के आश्रय में जाना पड़ा। यद्यपि अपनी स्वामि-भक्ति के कारण कुछ दिन के लिये तो वह गुजरातनरेश का कृपा-पात्र हो गया, तथापि अन्त में उसे धारा को लौट आना पड़ा। प्रबन्धचिन्तामणि में उसको उदयादित्य का पुत्र नहीं लिखा है।

[4] 'अमरुशतक' के चौथे श्लोक की टीका (पृ० ८)।

उदयादित्य के दो पुत्र थे।[1] लक्ष्मदेव और नरवर्मा।

१२ लक्ष्मदेव=सं० ११ का पुत्र

यद्यपि परमारों की पिछली प्रशस्तियों और दान पत्रों में इस राजा का नाम छोड़ दिया गया है, तथापि इसके छोटे भाई नरवर्मा के स्वयं तैयार किए[2] (नागपुर से मिले) लेख में इसका और इसकी विजयों का उल्लेख मिलता है। उसमें लिखा है :—

पुत्रस्तस्य जगत्त्रयैकतरणेः सम्यक्प्रजापालन—
व्यापार प्रवणः प्रजापतिरिव श्रीलक्ष्मदेवोऽभवत्।

इसी के बाद उस में लक्ष्मदेव का गौड़, चेदि, पाण्डय, लङ्का, तुरुष्क, और हिमालय के 'कीर' नरेश, आदि को विजय करना लिखा है। परन्तु इनमें से (चेदि) त्रिपुरी पर की चढ़ाई, और मुसलमानों के साथ की लड़ाई के सिवाय अन्य बातों में सत्य का अंश होने में सन्देह होता है।

१३ नर वर्मा=सं० १२ का छोटा भाई

लक्ष्मदेव के पीछे पुत्र न होने से उसका छोटा भाई नरवर्मा उस का उत्तराधिकारी हुआ। यह भोज के समान ही स्वयं विद्वान और विद्वानों का आश्रयदाता था। उदयादित्य के इतिहास में जिन 'नागबन्ध,' आदिकों का उल्लेख कर चुके हैं, वे इसी के समय खुदवाए गए थे। क्योंकि उनके साथ इसके नाम का भी उल्लेख मिलता है। इसने अपनी कई

---

[1] उदयादित्य की पुत्री श्यामल देवी का विवाह मेवाड़-नरेश विजयसिंह से हुआ था।

[2] तेन स्वयं कृतानेकप्रशस्तिस्तुतिचित्रितम्
श्रीमल्लक्ष्मीधरेणैतद्देवागारमकार्यत ॥५६॥

(नागपुर-प्रशस्ति)

प्रशस्तियाँ स्वयं लिखी थीं।[1] यद्यपि यह स्वयं शैव-मतानुयायी था, तथापि विद्वान् होने के कारण अन्यमतों के आचार्यों का भी आदर किया करता था, और उनके साथ होनेवाले शास्त्रार्थों में भी भाग लेता था। इसी प्रकार का एक शास्त्रार्थ शैवाचार्य विद्याशिववादी और जैनाचार्य रत्नसूरि[2] के बीच, महाकाल के मन्दिर में, हुआ था।

प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि—जिस समय गुजरात का राजा जयसिंह (सिद्धराज) अपनी माता को लेकर सोमनाथ की यात्रा को गया उस समय मालवे के राजा यशोवर्मा ने उसके राज्य पर चढ़ाई करदी। यह देख जयसिंह के मंत्री सांतु ने उसे अपने स्वामी की उक्त यात्रा का पुण्य देकर वापिस लौटा दिया। परन्तु वास्तव में यह घटना नरवर्मा से ही सम्बन्ध रखती है। इसका बदला लेने के लिये ही जयसिंह ने धारा पर चढ़ाई की थी।[3] यह युद्ध लगातार १२ वर्षों तक चलता रहा। इसी से इसके पुत्र यशोवर्मा के गद्दी बैठने के समय भी यह झगड़ा जारी था।

इसके समय की दो प्रशस्तियों में संवत् मिलता है। इनमें से पहली पूर्वोक्त वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) की नागपुर की प्रशस्ति[4]

---

[1] नागपुर की वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) की प्रशस्ति, और उज्जैन के महाकाल के मन्दिर से मिली (खण्डित) प्रशस्ति।

[2] यह समुद्रघोष के शिष्य सूरप्रभसूरि का शिष्य था।

अभयदेवसूरि के 'जयन्तकाव्य' की प्रशस्ति में लिखा है कि यह नरवर्मा वल्लभसूरि का बड़ा आदर करता था।

[3] इसकी पुष्टि (बाँसवाड़ा राज्य के) तलवाड़ा गाँव के एक मन्दिर की गणपति की मूर्ति के आसन पर खुदे लेख से होती है।

(राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर, की रिपोर्ट, ई० स० १९१४-१५ पृ० २)

[4] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० २, पृ० १८२-८८।

है, और दूसरी वि० सं० ११६४ (ई० स० ११०७) की मधुकरगढ़ की प्रशस्ति है।[1]

'राजतरङ्गिणी' से ज्ञात होता है कि—काश्मीर-नरेश हर्ष[2] के पौत्र 'भिक्षु' को कुछ दिनों तक धारा में रहकर इसी नरवर्मा की शरण लेनी पड़ी थी।[3]

नरवर्मा ने वि० सं० ११९० (ई० स० ११३३) तक राज्य किया था।

१४ यशोवर्मा=सं० १३ का पुत्र

इसकी राज्य-प्राप्ति के समय तक भी गुजरातनरेश जयसिंह वाला झगड़ा जारी था। अन्त में जयसिंह ने धारा के दक्षिणी द्वार को तोड़कर यशोवर्मा को, मय उसके कुटुम्बवालों के, क़ैद कर लिया। इससे मालवे के बड़े भाग के साथ साथ चित्तौड़, डूंगरपुर, और बाँसवाड़े पर भी उसका अधिकार हो गया। इस विजय के उपलक्ष्य में जयसिंह ने 'अवन्तिनाथ' की उपाधि धारण[4] की थी। कुछ दिन बाद यशोवर्मा, ने

---

[1] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ५, परिशिष्ट, (इन्सक्रिपशन्स ऑफ़ नॉर्दर्न इण्डिया, नं० ८२।

[2] हर्ष की मृत्यु वि० सं० ११५८ (ई० स० ११०१) में हुई थी।

[3] सवृत्तप्रत्यभिज्ञोय पुत्रवन्नरवर्मणा।
मालवेन्द्रेण शस्त्रास्त्रविद्याभ्यासमकार्यत ॥२२८॥
(राजतरंगिणी-तरंग ८)

इसके बाद इस 'भिक्षु' ने काश्मीर लौटकर ई० स० ११११-११२८ के बीच एक बार कुछ दिन के लिये वहाँ पर अधिकार कर लिया था।

[4] इन बातों की पुष्टि वि० सं० ११९५ की ज्येष्ठ वदि १४ के उज्जैन से मिले जयसिंह के लेख से भी होती है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय सोलङ्कीनरेश जयसिंह की तरफ़ से नागरवंशी महादेव मालवे का शासक नियत था।

गुजरातनरेश की क़ैद से निकल कर अजमेर के चौहाननरेश की सहायता से अपने राज्य का कुछ हिस्सा गुजरातवालों से वापिस छीन लिया। अन्त में शायद जयसिंह और यशोवर्मा के बीच सन्धि हो गई थी।

इसके समय के दो दान पत्र मिले हैं। पहला वि० सं० ११९१ (ई० स० ११३४) का है।[1] इसमें का लिखा दान नरवर्मा के सांवत्सरिक-श्राद्ध पर दिया गया था। सम्भवत: यह उसका प्रथम सांवत्सरिक-श्राद्ध ही होगा। दूसरा वि० सं० ११९२ (ई० स० ११३५) का है।[2] इसका दूसरा पत्र ही मिला है। इसमें यशोवर्मा की माता मोमला देवी की मृत्यु पर संकल्प की हुई पृथ्वी के दान का उल्लेख है।

इसके तीन पुत्र थे। जयवर्मा, अजयवर्मा और लक्ष्मीवर्मा।

१५ जयवर्मा = सं० १४ का पुत्र।

इसके समय मालवे पर गुजरात वालों का अधिकार होने से या तो यह उनके सामन्त की हैसियत से रहता था, या फिर विन्ध्याचल के पहाड़ी प्रदेश में घुस गया था। वड़नगर से मिली वि० स० १२०८ की कुमारपाल की प्रशस्ति में लिखा है[3]:—

'द्वारालम्बितमालवेश्वरशिरः'

अर्थात्—कुमारपाल ने[4] मालवनरेश का मस्तक काटकर अपने द्वार पर लटका दिया था।

---

[1] इसका उल्लेख महाकुमार लक्ष्मी वर्मदेव के वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३) के दानपत्र में मिलता है। यह (दूसरा) दानपत्र पहले दानपत्र की फिर से पुष्टि करने के लिये ही दिया गया था।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १९, पृ० ३५३)

[2] इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १९, पृ० ३४९।

[3] एपिग्राफिया इण्डिका, भा० १, पृ० २९६।

[4] यह कुमारपाल वि० सं० ११९९ (ई० स० ११४२) में गद्दी पर बैठा था।

इससे ज्ञात होता है कि इस समय के पूर्व ही कुमारपाल ने मालवनरेश जयवर्मा को पकड़कर मार डाला था। आबू से मिली प्रशस्ति में लिखा[1] है :—

"यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिप्रत्यर्थितामागतं।
गत्वा सत्वरमेव मालवपतिं वल्लालमालब्धवान्‌ ॥३५॥

इससे ज्ञात होता है कि गुजरात नरेश कुमारपाल के सामन्त यशोधवल ने, जिस मालवनरेश को मारा था, उसका नाम बल्लाल था।[2] परन्तु मालवे के परमार नरेशों की प्रशस्तियों में बल्लाल का उल्लेख नहीं मिलता है। अतः इसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।[3]

इसी जयवर्मा से कुछ काल के लिये मालवे के परमारों की दो

---

[1] एपिग्राफिया इण्डिका, भा० ८, पृ० २११।

[2] कीर्तिकौमुदी, में भी चालुक्यनरेश कुमारपाल द्वारा बल्लालदेव का हराया जाना लिखा है।

[3] ऐसी भी प्रसिद्धि है कि, पहले जिस 'ऊन' गाँव का उल्लेख किया जा चुका है वह इसी बल्लाल ने बसाया था। वहाँ के एक शिवमन्दिर से दो लेख-खण्ड मिले हैं। उनमें इसका नाम लिखा है। 'भोज प्रबन्ध' का कर्ता बल्लाल और यह बल्लाल एक ही थे, या भिन्न इसका निश्चय करना भी कठिन है।

प्रोफ़ेसर कीलहार्न का अनुमान है कि, यशोवर्मा के पकड़े जाने पर मालवे का कुछ भाग शायद बल्लाल नाम के किसी वीर और उद्योगी पुरुष ने अधिकृत कर लिया होगा। परन्तु श्रीयुत सी० वी० वैद्य जयवर्मा का ही उपनाम बल्लाल देव मानते हैं। नहीं कह सकते कि यह पिछला अनुमान कहाँ तक ठीक है, क्योंकि मालवे के परमारों की प्रशस्तियों से जयवर्मा के इस उपनाम की सूचना नहीं मिलती है।

शाखाएँ हो गई थीं। सम्भव है कि, जयवर्मा पर के, गुजरातनरेश कुमारपाल के हमले से उसके राज्य में गड़बड़ मच गई हो और इसी कारण उसका छोटा भाई अजयवर्मा उससे बदल गया हो। परन्तु उसका दूसरा भाई लक्ष्मीवर्मा उसी (जयवर्मा) के पक्ष में रहा हो और इसी के बदले में जयवर्मा ने अपने राज्य का एक बड़ा प्रदेश उसे जागीर में दिया हो।[1] इसके बाद शीघ्र ही जयवर्मा के गुजरातनरेश द्वारा पकड़ लिए जाने पर लक्ष्मी वर्मा को उक्त प्रदेश (भोपाल और होशंगाबाद के आस पास के प्रदेश) पर अधिकार करने में अपने बाहुबल से ही काम लेना पड़ा हो।[2] फिर भी इस शाखा वाले अपने नामों के आगे महाराजाधिराज, परमेश्वर, आदि की उपाधि न लगाकर महाकुमार की उपाधि ही धारण करते थे।[3] इससे ज्ञात होता है कि बहुत कुछ स्वाधीन

---

[1] इसकी पुष्टि हरिश्चन्द्रवर्मा के दानपत्र से होती है। उसमें लक्ष्मी वर्मा का जयवर्मा की कृपा से राज्य पाना लिखा है।

[2] इसकी सूचना महाकुमार उदयवर्मा के वि० सं० १२५६ (ई० स० ११९९) के दानपत्र से मिलती है। उसमें लिखा है :—

'...जयवर्म्मदेवराज्ये व्यतीते निजकरकृतकर वालप्रसादावाप्तनिजाधिपत्य...'

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १९, पृ० २५४)

[3] महाकुमार उपाधिधारण करनेवाली मालवे के परमारों की शाखा :—

१ महाकुमार लक्ष्मीवर्मा = १५ जयवर्मा का छोटा भाई

यह यशोवर्मा का पुत्र और जयवर्मा का छोटा भाई था। इसका वृत्तान्त ऊपर दिया जा चुका है। इसका वि० सं० १२०० (ई० स० ११४४) का एक दानपत्र मिला है।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १९, पृ० ३५२-३५३)

हो जाने पर भी इस शाखा वाले पूर्ण स्वाधीन या राजा नहीं हो सके थे।

१६ अजय वर्मा=सं० १५ का छोटा भाई

पहले लिखा जा चुका है कि इसने अपने बड़े भाई जयवर्मा के प्रभाव के शिथिल हो जाने से उसके राज्य के कुछ अंश पर अधिकार कर लिया था। इसके शासन में धारा के आसपास का प्रदेश था और इसकी उपाधियाँ महाराजाधिराज, और परमेश्वर थीं।

इस शाखा के नरेशों के नामों के साथ 'समाधिगतपञ्चमहाशब्दालङ्कार' की उपाधि भी लगी रहती थी।

२ महाकुमार हरिश्चन्द्र वर्मा=सं० १ का पुत्र

इसका वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७८) का एक दानपत्र भोपाल राज्य से मिला है। उसी में इसके द्वारा वि० सं० १२३५ में दिए गए दान का भी उल्लेख है।

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ७, पृ० ७३६)

३ उदयवर्मा=सं० २ का पुत्र

वि० सं० १२५६ (ई० स० १२००) का इसका भी एक दानपत्र मिला है।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १६, पृ० २५४-२५५)

इसी के छोटे भाई का नाम देवपाल था; जो मुख्य शाखावाले अर्जुनवर्मा के निस्सन्तान मरने पर उसके गोद चला गया। उदयवर्मा के बाद का इस शाखा का इतिहास नहीं मिलता है। शायद देवपाल के बड़ी शाखा में गोद चले जाने के कारण यह शाखा यहीं पर समाप्त हो गई हो।

१७ विन्ध्यवर्मा=सं० १६ का पुत्र

यह वीर और प्रतापी राजा था।[१] इसने गुजरातनरेशों की निर्बलता से लाभ उठाकर अपने राज्य का गया हुआ हिस्सा वापिस ले लिया।[२]

---

[१] इसके पौत्र अर्जुनवर्मा के वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१५) के दानपत्र में लिखा है :—

तस्मादजयवर्म्माभूज्जयश्रीविश्रुतः सुतः ॥
तत्सूनुर्वीरमूर्द्धन्यो धन्योत्पत्तिरजायत
गुर्जरच्छेदनिर्बंधी विंध्यवर्मा महासुतः ॥

(जर्नल अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी, भा० ७, पृ० ३२-३३)

[२] उदयपुर (ग्वालियर राज्य) के शिव मन्दिर से मिले वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) के एक टूटे हुए लेख से प्रकट होता है कि, उस समय उक्त प्रदेश गुजरात के सोलंकी नरेश कुमारपाल के अधिकार में था।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १८, पृ० ३४३)

इसी प्रकार वहाँ से मिली वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७३) की प्रशस्ति से सिद्ध होता है कि उस समय वहाँ पर गुजरातनरेश अजयपालदेव का अधिकार था।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० १८, पृ० ३४७)

गुजरात के सोलङ्कीनरेशों के इतिहास से सिद्ध होता है कि, वैसे तो सोलङ्कीनरेश अजयपाल के समय से ही उक्त शाखा का प्रभाव घटने लग गया था। परन्तु उसके पुत्र मूलराज द्वितीय के बाल्यावस्था में गद्दी पर बैठने के कारण उसके बहुत से सामन्त स्वतन्त्र हो गये। सम्भवतः इसी मौक़े पर विन्ध्यवर्मा ने भी स्वतन्त्र होकर गुजरातवालों के अधिकृत मालवे के प्रदेशों पर फिर से अधिकार कर लिया होगा।

सोमेश्वर के बनाये 'सुरथोत्सव' में लिखा है कि विन्ध्यवर्मा गुजरातवालों से हारकर भाग गया था। (सर्ग १५, श्लो० ३६)

यह नरेश भी विद्या-रसिक था। इसका 'सान्धि विग्रहिक'-मंत्री बिल्हण कवि था।[1] परन्तु यह 'विक्रमाङ्कदेव चरित' के कर्ता काश्मीर के बिल्हण कवि से भिन्न था।

श्रीयुत लेले और कर्नल लूअर्ड विन्ध्यवर्मा का समय ई० स० ११६० से ११८० (वि० सं० १२१७ से १२३७) तक मानते हैं।

सपादलक्ष (सवालाख) में होनेवाले मुसलमानों के अत्याचारों को देख माँडलगढ़ (उदयपुर राज्य) का रहने वाला आशाधर[2] नामक

---

[1] माँडू से मिले विन्ध्यवर्मा के लेख में लिखा है :—

'विन्ध्यवर्मनृपतेः प्रसादभूः सान्धिविग्रहिकबिल्हणः कविः।'

(परमार्स ऑफ़ धार ऐण्ड मालवा, पृ० ३७)

यह बिल्हण देवपाल के समय तक इसी पद पर रहा था।

[2] यह आशाधर व्याघ्रेर वाल (बघेर वाल) जाति का था। इसके पिता का नाम सल्लक्षण, माता का नाम रत्नी, स्त्री का नाम सरस्वती, और पुत्र का नाम चाहड़ था। जैन मुनि उदयसेन ने आशाधर को 'कलिकालिदास' के नाम से भूषित किया है। उपर्युक्त कवि बिल्हण इसे 'कविराज' के नाम से पुकारता था। इस (आशाधर) ने धारा में रहते समय धरसेन के शिष्य महावीर से 'जैनेन्द्र व्याकरण' और जैनसिद्धान्त पढ़े थे। विन्ध्यवर्मा का पौत्र अर्जुनवर्मा भी इसका बड़ा आदर करता था। उसके राज्य समय यह नालछा के नेमिनाथ के मन्दिर में आकर रहने लगा था।

इसके अनेक शिष्य थे। उनमें से देवेन्द्र, आदि को इसने व्याकरण, विशालकीर्ति, आदि को तर्कशास्त्र, विनयचन्द्र, आदि को जैनसिद्धान्त और बाल सरस्वती, व महाकवि मदन को छन्दः शास्त्र पढ़ाया था।

आशाधर ने अपने बनाए ग्रन्थों की सूची इस प्रकार दी है :—

१ 'प्रमेयरत्नाकर' (स्याद्वादमत का तर्कग्रन्थ), २ 'भरतेश्वराभ्युदय'

जैन पण्डित अपने निवासस्थान को छोड़कर मालवे में जा बसा था। वहीं पर उसके और विन्ध्यवर्मा के मंत्री बिल्हण कवि के बीच मैत्री हो गई।

१८ सुभटवर्मा=सं० १७ का पुत्र

यह भी एक वीर पुरुष था। इसने अपने राज्य को स्वतंत्र[1] करने के साथही गुजरात पर भी चढ़ाई की थी परन्तु उसमें इसे विशेष सफलता नहीं मिली।[2] उस समय वहाँ पर सोलंकी भीम द्वितीय का अधिकार था। इस सुभटवर्मा को सोहड भी कहते थे।

काव्य और उसकी टीका, ३ 'धर्मामृतशास्त्र' और उसकी टीका (जैन मुनियों और श्रावकों के आचार का ग्रन्थ), ४ 'राजीमती-विप्रलम्भ' (नेमिनाथ विषयक खण्ड-काव्य), ५ अध्यात्मरहस्य' (योग), ६ 'मूलाराधना', 'इष्टोपदेश', और 'चतुर्विंशतिस्तव', आदि की टीकाएँ, ७ 'क्रियाकलाप' (अमरकोष की टीका), ८ रुद्रट के 'काव्यालंकार की टीका, ९ (अर्हत्-) 'सहस्रनामस्तव'-सटीक, १० 'जिनयज्ञकल्प'-सटीक, ११ 'त्रिषष्टिस्मृति' (आर्ष महापुराण के आधार पर ६३ महापुरुषों की कथा), १२ 'नित्यमहोद्योत' (जिनपूजन सम्बन्धी), १३ 'रत्नत्रयविधान' (रत्नत्रय-पूजा माहात्म्य), और १४ 'वाग्भट-संहिता' (वैद्यक) की 'अष्टाङ्गहृदयोद्योत' नामक टीका।

इनमें से 'त्रिषष्टिस्मृति' वि० सं० १२९२ (ई० स० १२३५) में देवपाल के राज्य में और 'भव्यकुमुदचन्द्रिका' नाम की 'धर्मामृतशास्त्र' की टीका वि० सं० १३०० (ई० स० १२४४) में जयतुगीदेव के समय समाप्त हुई थी।

[1] बॉम्बे गज़टियर में लिखा है कि—देवगिरि के यादव राजा सिंघण ने सुभटवर्मा पर विजय प्राप्त की थी। (भा० १, खण्ड २, पृ० २४०)

[2] इसकी पुष्टि अर्जुनवर्मा के दानपत्र से भी होती है।

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ५, पृ० ३७८-३७९)

श्रीयुत लैले और कर्नल लुअर्ड इसका राज्यकाल ई० स० ११८० से १२१० (वि० सं० १२३७ से १२६७) तक अनुमान करते हैं।

१९ अर्जुनवर्मा=सं० १८ का पुत्र

यह नरेश स्वयं विद्वान् कवि और गानविद्या में निपुण था।[1]

इसके समयके तीन दानपत्र मिले हैं। पहला मांडू से मिला वि० सं० १२६७ (ई० स० १२१०) का,[2] दूसरा भड़ौच से मिला वि० सं० १२७० (ई० स० १२१३) का,[3] और तीसरा अमरेश्वर[4] (मान्धाता) से मिला वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१५) का है।[5] इसने गुजरात नरेश जयसिंह[6] को हराया था[7]।

'प्रबन्धचिन्तामणि' में लिखा है कि, मालवनरेश सोहड़ के गुजरात पर चढ़ाई करने पर भीमदेव के मंत्री ने उसे समझाकर लौटा दिया था। (पृ० २४६)

'कीर्तिकौमुदी' में भीमदेव के मंत्री के स्थान में बघेल लवणप्रसाद का नाम दिया है। (सर्ग २, श्लो० ७४)

यह लवणप्रसाद भीम द्वितीय का सामन्त था।

[1] 'काव्यगान्धर्वसर्वस्वनिधिना येन सांप्रतम्।
भारावतारणं देव्याश्चक्रे पुस्तकवीणयोः॥'
(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ६, पृ० १०८)

[2] जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ५, पृ० ३७८।

[3] जर्नल अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, भा० ७, पृ० ३२।

[4] अमरेश्वरतीर्थ रेवा और कपिला नदियों के सङ्गम पर है।

[5] जर्नल अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, भा० ७, पृ० २५।

[6] गुजरातनरेश भीमदेव द्वितीय के समय उसके रिश्तेदार जयसिंह (जैत्रसिंह--जयंतसिंह) ने कुछ दिन के लिये उससे अणहिलवाड़े का शासन छीन लिया था। परन्तु अन्त में वहाँ पर फिर से भीमदेव का अधिकार होगया।

[7] 'बाललीलाहवे यस्य जयसिंहे पलायिते।'
(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ६, पृ० १०६)

इसी (अर्जुनवर्मा) के समय इसके गुरु (बालसरस्वती) मदन[१] ने 'पारिजातमञ्जरी' (विजयश्री) नाम की नाटिका[२] बनाई थी। इस में भी अर्जुनवर्मा और गुजरातनरेश जयसिंह के बीच के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध पावागढ़ के पास हुआ था, और इस में जयसिंह को हारकर भागना पड़ा था।

यह नाटिका पहले पहल, वसन्तोत्सव पर, भोजकी बनाई पाठशाला[३] में खेली गई थी।

'प्रबन्ध चिन्तामणि' में लिखा[४] है कि—भीम (द्वितीय) के समय अर्जुनवर्मा ने गुजरात को नष्ट[५] किया था।

इसी (अर्जुनवर्मा) ने 'अमरूशतक' पर 'रसिकसंजीवनी' नाम की टीका लिखी थी।

इस अर्जुनवर्मा की उपाधि 'महाराज' लिखी मिलती है।

२० देवपाल=सं० १९ का उत्तराधिकारी

यह (१४) यशोवर्मा के पौत्र महाकुमार हरिश्चन्द्रवर्मा का छोटा पुत्र और महाकुमार उदयवर्मा का छोटा भाई था। तथा

---

[१] यह पूर्वोक्त आशाधर का शिष्य और गौड़ ब्राह्मण था।

[२] एक शिला पर खुदे इस नाटिका के पहले दो अङ्क धारा की कमालमौला मसजिद से मिले हैं।

(एपिग्राफिया इण्डिका, भा० ८, पृ० १०१-१२२)

[३] यही पाठशाला आजकल कमालमौला मसजिद के नाम से प्रसिद्ध है।

[४] (पृ० २५०)।

[५] अर्जुनवर्मा के लेखों में इसका उल्लेख न होने से अनुमान होता है कि या तो यह घटना वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१५) के बादकी है, या इसका तात्पर्य जयसिंह वाली घटना से ही है।

अर्जुनवर्मा के निस्सन्तान मरने के कारण उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसकी उपाधि 'साहसमल्ल' थी।

इसके समय के तीन शिलालेख और एक दानपत्र मिला है। इनमें का पहला शिलालेख वि० सं० १२७५ (ई० स० १२१८) का,[1] दूसरा वि० सं० १२८६ (ई० स० १२२९) का,[2] और तीसरा वि० सं० १२८९ (ई० स० १२३२) का है।[3] इसका दानपत्र वि० सं० १२८२ (ई० स० १२२५) का है।[4]

यह माहिष्मती (महेश्वर=इन्दौर राज्य में) से दिया गया था।

इसी के राज्यसमय वि० सं० १२९२ (ई० स० १२३५) में आशाधर ने अपना 'त्रिषष्टि स्मृति' नामक ग्रन्थ समाप्त किया था।[5]

पहले लिखा जा चुका[6] है कि, इसके समय शम्सुद्दीन अल्तमश

---

[1] इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भा० २०, पृ० ३११।

[2] इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भा० २०, पृ० ८३।

[3] इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भा० २०, पृ० ८३।

[4] एपिग्राफिया इण्डिका, भा० ९, पृ० १०८-११३।

[5] आशाधर की बनाई 'जिनयज्ञकल्प' नामक पुस्तक में लिखा है:—

विक्रमवर्षसपञ्चाशीतिद्वादशशतेष्वतीतेषु।
आश्विनसितान्त्यदिवसे साहसमल्लापराख्यस्य॥
श्रीदेवपालनृपतेः पमारकुलशेखरस्य सौराज्ये।
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रन्थोयं नेमिनाथ चैत्यगृहे॥

इससे प्रकट होता है कि आशाधर का यह 'जिनयज्ञकल्प' भी वि० सं० १२८५ में देवपाल के राज्यसमय ही समाप्त हुआ था, और देवपाल का ही दूसरा नाम 'साहसमल्ल' भी था।

[6] इसी पुस्तक का 'मालवे के परमार राज्य का अन्त' नामक अध्याय,

ने ग्वालियर पर कब्जा करने के बाद, वि० सं० १२९२ (ई० स० १२३५) में भिलसा, और उज्जैन पर भी अधिकार कर लिया था, और इसी अवसर पर उसने वहाँ (उज्जैन) के महाकाल के मन्दिर को भी तोड़ा था। परन्तु वहाँ पर उसका अधिकार स्थायी न हुआ। उसके लौट जाने पर उक्त प्रदेश फिर से परमार नरेशों के शासन में आगया। हाँ, इनका शासन शिथिल अवश्य हो गया था।

२१ जयतुगीदेव (जयसिंह द्वितीय)=सं० २० का पुत्र

इसके समय के दो शिला लेख मिले हैं। इनमें का पहला वि० स० १३१२ (ई० स० १२५५) का राहतगढ़ से,[1] और दूसरा वि० सं० १३१४ का (कोटा राज्य के) अत्रू नामक गाँव[2] से मिला है।

आशाधर ने अपने 'धर्मामृतशास्त्र' के अन्त मे लिखा है :--

पंडिताशाधरश्चक्रे टीकां क्षोदक्षमामिमाम् ॥२८॥
प्रमारवंशवार्द्धीन्दुदेवपालनृपात्मजे।
श्रीमज्जैतुगिदेवे सिस्थाम्नावंतीनवंत्यलम् ॥३०॥
नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्।
विक्रमाब्दशतेष्वेपात्रयोदशसु कार्तिके ॥३१॥

अर्थात--नालछा के नेमिनाथ के मन्दिर मे रहते हुए, आशाधर ने, इस 'क्षोदक्षमा' नामक टीका को, वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) में, परमारनरेश देवपाल के पुत्र जैतुगिदेव के राज्य में, बनाया।

इससे प्रकट होता है कि वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) के

---

[1] इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० २० पृ० ८४।

[2] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० १८२ की टिप्पणी ६ इस लेख में शताब्दी के, अगले, दो अङ्क (१३) छूट गए हैं।

पूर्व ही किसी समय देवपालदेव मर गया था, और जयतुगीदेव राज्य का स्वामी हो चुका था।[1]

इसीके दूसरे नाम जैत्रसिंह और जयसिंह (द्वतीय) भी थे[2]

---

[1] चीरवा के लेख में लिखा है :—

यः श्रीजेसलकार्ये भवदुत्थूणकरणांगणे प्रहरन्।
पंचलगुडिकेन समं प्रकटव (च) तो जैत्रमल्लेन ॥२८॥

इससे ज्ञात होता है कि मेवाड़ के, गुहिलनरेश जैत्रसिंह की तरफ़ के, चित्तौड़ के कोतवाल के छोटे पुत्र, मदन ने अपने स्वामी जेसल (जैत्रसिंह) के लिये अथूंणा (बाँस वाड़ा राज्य में) के पास 'पंचलगुडिक' जैत्रमल्ल के साथ युद्ध किया। एक तो अर्थूणा के परमार शासक मालवे के परमारों के सामन्त थे। दूसरा मेवाड़ के गुहिलनरेश जैत्रसिंह का समय वि० सं० १२७० से १३०९ (ई० स० १२१३ से १२५३) तक (अथवा इससे भी आगे तक) होने से जयतुगी और ये दोनों समकालीन थे। तीसरा परमारनरेश जैत्रसिंह के नाम के साथ 'पंचलगुडिकेन' विशेषण लगा है। सम्भव है, यह जयतुगी को 'महाकुमार' उपाधि धारिणी शाखा की सन्तान प्रकट करने के लिये ही, 'पञ्चमहाशब्द' के स्थान में, निरादर सूचक रूप में, प्रयुक्त किया गया हो।

इन्हीं अनुमानों के आधार पर विद्वान लोग इस युद्ध का इसी जयतुगी के साथ होना मानते हैं।

[2] गुजरात में बघेलों का राज्य स्थापित करने वाले वीसलदेव ने भी अधिकार प्राप्ति के बाद मलवनरेश से युद्ध किया था। यह घटना वि० सं० १३०० और १३१८ (ई० स० १२४३ और १२६१) के बीच की होगी। ऐसी हालत में वीसल का यह युद्ध जयतुगी देव अथवा उसके उत्तराधिकारी के समय ही हुआ होगा। कहते हैं कि, गणपति व्यास ने इस घटना पर धाराध्वंस' नामक एक काव्य भी लिखा था।

२२ जयवर्मा द्वितीय=सं० २१ का छोटा भाई

इसके समय का वि० सं० १३१४ (ई० स० १२५७) का एक लेख[1] और वि० स० १३१७ (ई० स० १२६०) का एक दानपत्र[2] मिला है।

इसमें का लिखा दान अमरेश्वर-क्षेत्र में दिया गया था। उस समय इसका 'सांधि विग्रहिक' मालाधर, और 'महाप्रधान' राजा अजयदेव था।

२३ जयसिंह तृतीय=सं० २२ का उत्तराधिकारी

इसके समय का वि० सं० १३२६ (ई० स० १२६९) का एक शिलालेख पथारी गाँव से मिला है।[3]

वि० सं० १३४५ के कवाल जी के कुंड (कोटाराज्य में) के शिलालेख में लिखा है कि रणथंभोर के चौहाननरेश जैत्रसिंह ने मांडू में स्थित जयसिंह को बहुत तंग किया और उसके सैनिकों को 'झंपायथा' की घाटी में हराकर रणथंभोर में क़ैद करदिया।[4]

---

[1] परमार्स ऑफ़ धार ऐण्ड मालवा, पृ० ४० ।

[2] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ६, पृ० १२०-२३ ।

[3] एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० ५, में प्रकाशित—प्रोफ़ेसर कीलहार्न की इन्स्क्रिपशन्स ऑफ़ नॉर्दर्न इण्डिया, सं० २३२ ।

[4] ततोभ्युदयमासाद्य जैत्रसिंहर्गविर्न्नवः ।
अपि मंडपमध्यस्थं जयसिंहमतीतपत् ॥७॥

* * *

येन झंपाइथाघट्टे मालवेशभटाः शतम् ।
व(ब)द्ध्वा रणस्तम्भपुरे क्षिप्तानीताश्च दासताम् ॥८॥

२४ अर्जुन वर्मा द्वितीय=सं० २३ का उत्तराधिकारी

पूर्वोक्त कवालजी के कुण्ड के लेख में लिखा है :—

सां (सा) म्राज्यमाज्य परितोषितहव्यवाहो ।
हंमीरभूपतिरविंव (द) त भृतधात्र्याः ॥१०॥

*   *   *

निर्जित्य येनार्जुनमाजिमूर्ध्नि ।
श्रीम्मालवस्योज्जगृहे हटेन ॥११॥

इससे प्रकट होता है कि रणथंभोर के चाहाननरेश हंमीर ने अर्जुन वर्मा को हराकर मालवे का प्रदेश छीन लिया था।

यह घटना वि० सं० १३३९ और १३४५ (ई० स० १२८२ और-१२८८) के बीच किसी समय हुई[1] होगी, और हम्मीर ने अपने राज्य की सीमा मे मिला हुआ मालवे का कुछ अंश दबा लिया होगा।

२५ भोज[2] द्वितीय=सं० २४ का उत्तराधिकारी

'हम्मीर महाकाव्य' में लिखा है :—

ततो मण्डलकृद्दुर्गात्करमादाय सत्वरम् ।
ययौ धारां धराखार्गं वारांराशिर्महौजसां ॥१७॥

[1] 'हम्मीर महाकाव्य' में हम्मीर की राज्य-प्राप्ति का समय वि० सं० १३३६ (ई० सं० १२८३) और प्रबन्धकोष के अन्त की वंशावली में वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) दिया है। तथा कवालजी के कुण्ड का हम्मीर का शिला लेख वि० स० १३४५ (ई० सं० १२८८) का है।

[2] सिप्रा से मिली सारंगदेव के समय को प्रशस्ति में लिखा है :—

*   *   *

सारंगदेव इति शार्ङ्गधरानुभावः ॥१२॥

परमारान्वयप्रौढो भोजो भोज इवापरः।
तत्राम्भोजमिवानेन राज्ञाम्लानिमनीयत ॥१८॥
(सर्ग ९)

इससे ज्ञात होता है कि, हम्मीर ने, माँडू से कर लेकर, धारा पर चढ़ाई की। इस पर वहाँ का राजा परमारनरेश भोज द्वितीय घबरा गया।

वि० सं० १३४५ के, (कोटा राज्य में के) कवाल जी के कुण्ड पर के, लेख में इस घटना का उल्लेख न होने से प्रकट होता है कि, यह घटना इस समय के बाद, और वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०१) के पहले[1] किसी समय हुई होगी।

पहले लिखा जा चुका है कि—धारा की अब्दुल्लाशाह चंगाल की क़ब्र के फ़ारसी लेख और उर्दू की 'गुलदस्ते अब्र' नामक पुस्तक में लिखा

युधि यादवमालवेश्वरा—
वकृत क्षीणबलौ बलेन यः।
(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २८१)

इससे प्रकट होता है कि गुजरातनरेश बघेल सारंगदेव ने मालवनरेश को हराया था। परन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि, यह कौनसा मालव-नरेश था। सारंगदेव के समय का वि० सं० १३५० (ई० स० १२९३) का एक शिलालेख आबू से भी मिला है।

फ़ारसी तवारीख़ों से ज्ञात होता है कि सारंगदेव ने उस गोगादेव को; जो पहले मालवनरेशों का मंत्री था, परन्तु बाद में आधे राज्य का स्वामी बन बैठा, हराया था। इस गोगादेव का खुलासा हाल पहले दिया जा चुका है।

[1] इसी वर्ष वीर हम्मीर, सुलतान अलाउद्दीन के साथ के युद्ध में, मारा गया था।

है कि उक्त अब्दुल्लाशाह की करामातों को देखकर भोज ने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था। उक्त लेख हिजरीसन् ८५९ (वि० सं० १५१५= ई० स० १४५८) का होने से, या तो भोज के मुसलमान होने की यह कथा कल्पित ही है, या फिर इसका सम्बन्ध भोज द्वितीय से है।

२६ जयसिंह चतुर्थ=सं २५ का उत्तराधिकारी

वि० स० १३६६ (ई० स० १३०९) का इसका एक शिलालेख[1] उदयपुर (ग्वालियर राज्य) से मिला है।

इसी के राज्य में मालवे पर मुसलमानों का अधिकार हो गया, और वहाँ का प्रदेश छोटे छोटे सामन्त नरेशों में बँट गया।

इसके बाद का इस शाखा के किसी परमारनरेश का हाल नहीं मिलता है।

---

[1] इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० २०, पृ० ८४

परमारनरेशों के वंशवृक्ष और नकशे

आबू के परमारों का वंशवृक्ष

परमार धौमराज के वंश में

१ सिन्धुराज
|
२ उत्पलराज
|
३ आरण्यराज
|
४ कृष्णराज (प्रथम)
|
५ धरणीवराह
|
- ६ महिपाल (देवराज)
  |
  ७ धन्धुक
  |
  - ८ पूर्णपाल
  - ९ कृष्णराज द्वितीय
    :
    - १० ध्रुवभट
      |
      - ११ रामदेव
        |
        १३ यशोधवल[1]
        |
        - १४ धारावर्ष
          |
          १५ सोमसिंह
          |
          १६ कृष्णराज (तृतीय)
          |
          १७ प्रतापसिंह
          :
          विक्रमसिंह[2]
        - प्रल्हाददेव
      - १२ विक्रमसिंह
    - १ सोछराज (किराडू के परमार)
      |
      २ उदयराज
      |
      ३ सोमेश्वर (वि० सं० [illegible])
- १ वाक्पतिराज (जालोर की शाखा)
  |
  २ चंदन
  |
  ३ देवराज
  |
  ४ अपराजित
  |
  ५ विजल
  |
  ६ धारा वर्ष
  |
  ७ [illegible] (वि० सं० [illegible])

---

[1] आबू पर के नेमिनाथ के मन्दिर के लेख में लिखा है :—

धंधुकध्रुवभटादयस्ततस्ते रिपुद्विपघटाजितोऽभवन् । यत्कुलेऽजनि पुमान्मनोरमो रामदेव इति कामदेवजित् ॥३४॥
रोदः कंदरवर्तिकीर्तिलहरीलिप्तामृतांशुद्युतेरप्रद्युम्नवशो यशोधवल इत्यासीत्तनूजस्ततः ॥

(एपिग्राफिया इंडिका भा० ८ पृ० २१०-२११)

इससे यशोधवल का रामदेव का पुत्र होना ही प्रकट होता है। सम्भव है उसके छोटे होने के कारण ही रामदेव के बाद विक्रमसिंह गद्दी पर बैठा हो।

[2] वि० सं० १३५६ (ई० स० १२९९) का, इसके समय का एक लेख, सिरोही राज्य के वर्माण गाँव के, ब्राह्मण स्वामी नाम के, सूर्य के मन्दिर से मिला है। उसमें इसकी उपाधि 'महाराज कुल' (महारावल) लिखी है। वि० सं० १२८७ की आबूपर की तेजपाल के मन्दिर की प्रशस्ति में परमार नरेश सोमसिंह के नाम के साथ भी 'राजकुल' (रावल) की उपाधि लगी है। इसी विक्रमसिंह के समय जालोर के चौहानों ने आबू के परमार राज्य के पश्चिमी भाग पर अधिकार कर लिया और बाद में वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) के करीब चौहान राव लुम्भाने आबू के परमार राज्य की समाप्ति करदी।

मालवे के परमारों का वंशवृक्ष

आबू के परमारों का नक्शा

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन अन्य नरेश
१	सिन्धुराज	परमार धौमराज के वंश में		
२	उत्पलराज	सं० १ का पुत्र या उत्तराधिकारी		
३	आरण्यराज	सं० २ का पुत्र		
४	कृष्णराज (प्रथम)	सं० ३ का पुत्र		
५	धरणीवराह	सं० ४ का पुत्र		
६	महीपाल (देवराज)	सं० ५ का पुत्र	वि० सं० १०५९	सोलंकी मूलराज, राष्ट्रकूट धवल
७	धंधुक	सं० ६ का पुत्र		सोलंकी भीमदेव(प्रथम), परमार भोज(प्रथम)
८	पूर्णपाल	सं० ७ का पुत्र	वि०सं० १०९९ और ११०२	
९	कृष्ण राज (द्वितीय)	सं० ८ का छोटा भाई	वि०सं० १११७ और ११२३	सोलंकी भीमदेव(प्रथम), चौहान बालप्रसाद
१०	ध्रुवभट	सं० ९ का वंशज		
११	रामदेव	सं० १० का वंशज		

१२	विक्रमसिंह	सं० ११ का उत्तराधिकारी		सोलंकी कुमारपाल, चौहान अर्णो-राज (आना)
१३	यशोधवल	सं० १२ का भतीजा	वि० सं० १२०२	सोलंकी कुमारपाल, मालवे का राजा बल्लाल
१४	धारावर्ष	सं० १३ का पुत्र	वि० सं० १२२०, १२३७, १२४६, १२६५ और १२७६	सोलंकी कुमारपाल, सोलंकी अजयपाल, सोलंकी मूलराज (द्वितीय), सोलंकी भीमदेव (द्वितीय), उत्तरी कोंकण का राजा मल्लिकार्जुन, दक्षिण का यादव नरेश सिंघण, सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश, चौहान केल्हण, गुहिल सामन्तसिंह, कुतुबुद्दीन ऐबक
१५	सोमसिंह	सं० १४ का पुत्र	वि०सं० १२८७ और १२९३	सोलंकी भीमदेव (द्वितीय),
१६	कृष्णराज	सं० १५ का पुत्र		
१७	प्रतापसिंह	सं० १६ का पुत्र	वि० सं० १३४४	गुहिल जैत्रसिंह
१८	विक्रमसिंह	सम्भव है यह सं० १७ का उत्तराधिकारी हो	वि० सं० १३५६	(इसका उक्त संवत् का एक शिला लेख सीरोही राज्य के वर्माण गांव के सूर्य के मन्दिर में लगा है।)

मालवे के परमारों का नकशा

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन अन्य नरेश
१	उपेन्द्र (कृष्णराज)	मालवे के परमार राज्य का संस्थापक		
२	वैरिसिंह (प्रथम)	सं० १ का पुत्र		
३	सीयक	सं० २ का पुत्र		
४	वाक्पतिराज (प्रथम)	सं० ३ का पुत्र		
५	वैरिसिंह (द्वितीय) (वज्रटस्वामी)	सं० ४ का पुत्र		
६	श्रीहर्ष (सीयक-द्वितीय, सिंहभट)	सं० ५ का पुत्र	वि० सं० १००५ और १०२९	दक्षिणी-राष्ट्रकूट खोट्टिगदेव, वागड़ का परमार कङ्कदेव,
७	वाक्पतिराज (द्वितीय) (मुञ्ज, अमोघवर्ष, उत्पलराज, पृथ्वीवल्लभ, श्रीवल्लभ)	सं० ६ का पुत्र	वि०सं० १०३१, १०३६ और १०५०	हैहय युवराजदेव (द्वितीय), गुहिल शक्तिकुमार, कर्णाट का सोलंकी तैलप (द्वितीय,)

८	सिंधुराज (सिंधुल, कुमार-नारायण, नवसाहसांक)	सं० ७ का छोटा भाई		सोलंकी चामुण्डराज
९	भोज (त्रिभुवन नारायण)	सं० ८ का पुत्र	वि० सं० १०७६, १०७८, १०५९, १०९१ और (श० सं० ९६४) १०९९	आबू का परमार नरेश धंधुक, हैहय गांगेयदेव, और कर्ण, सोलंकी भीमदेव (प्रथम), कर्णाट का सोलंकी जयसिंह (द्वितीय) और सोमेश्वर, चौहान वीर्यराम, चौहान अणहिल्ल, महमूद गज़नवी, लाहौर का नरेश आनन्दपाल, काश्मीर नरेश अनंतदेव, इन्द्ररथ, तोग्गल, चंदेल विद्याधर
१०	जयसिंह (प्रथम)	सं० ९ का उत्तराधिकारी	वि० सं० १११२ और १११६	वागड़ का परमार मंडन (मंडलीक), कर्णाट का सोलंकी सोमेश्वर (आहव-मल्ल)
११	उदयादित्य	सं० १० का उत्तराधिकारी	वि० सं० १११६, ११३७ और ११४३	चौहान विग्रहराज (वीसल तृतीय), सोलंकी कर्ण, गुहिल विजयसिंह
१२	लक्ष्मदेव	सं० ११ का पुत्र		
१३	नरवर्मा	सं० १२ का छोटा भाई	वि० सं० ११६१ और ११६४	सोलंकी सिद्धराज-जयसिंह,

संख्या	नाम	परस्पर का सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन अन्य नरेश
१४	यशोवर्मा	सं० १३ का पुत्र	वि० सं० ११९१ और ११९२	सोलंकी सिद्धराज-जयसिंह, मालव नरेश बल्लाल
१५	जयवर्मा	सं० १४ का पुत्र		
१६	अजयवर्मा	सं० १५ का छोटा भाई		सोलंकी कुमारपाल
(१)	महाकुमार लक्ष्मीवर्मा	सं० १५ का भाई	वि० सं० १२००	
(२)	महाकुमार हरिश्चन्द्र वर्मा	सं० (१) का पुत्र	वि० सं० १२३५ और १२३६	
(३)	महाकुमार उदयवर्मा	सं० (२) का पुत्र	वि० सं० १२५६	
१७	विंध्यवर्मा	सं० १६ का पुत्र		सोलंकी कुमारपाल, अजयपाल, मूलराज (द्वितीय), और भीमदेव (द्वितीय)
१८	सुभटवर्मा (सोहड़)	सं० १७ का पुत्र		सोलंकी भीमदेव (द्वितीय) बघेल लवणप्रसाद
१९	अर्जुनवर्मा (प्रथम)	सं० १८ का पुत्र	वि० सं० १२६७, १२७० और १२७२	सोलंकी जयसिंह, और भीमदेव (द्वितीय)
२०	देवपाल (साहसमल्ल)	सं० (२) का पुत्र	वि० सं० १२७५, १२८२, १२८५, १२८६, १२८९	शम्सुद्दीन अल्तमश

२१	जयतुगीदेव (जयसिंह द्वितीय जैत्रमल्ल)	सं० २० का पुत्र	वि० सं० १३००, १३१२ और १३१४	गुहिल जैत्रसिंह
२२	जयवर्मा (द्वितीय)	सं० २१ का छोटा भाई	वि० सं० १३१४ और १३१७	
२३	जयसिंह (तृतीय)	सं० २२ का उत्तराधिकारी	वि० सं० १३३१	चौहान जैत्रसिंह
२४	अर्जुन वर्मा (द्वितीय)	सं० २३ का उत्तराधिकारी		चौहान हम्मीर
२५	भोज (द्वितीय)	सं० २४ का उत्तराधिकारी		चौहान हम्मीर
२६	जयसिंह (चतुर्थ)	सं० २५ का उत्तराधिकारी	वि० सं० १३६६	

भोज के सम्बन्ध की अन्य किंवदन्तियाँ

एक दिन जिस समय राजा भोज अन्तःपुर में पहुँचा, उस समय उसकी रानी एकान्त में अपनी सखी से बातकर रही थी। परन्तु राजा का चित्त किसी विचार में उलझा हुआ था, इससे बिना सोचे समझे, वह भी उनके पास जाकर खड़ा हो गया (यह देख रानी की सखी लजा कर वहाँ से हट गई, और रानी के मुख से 'मूर्ख' शब्द निकल पड़ा। यद्यपि यह शब्द बहुत ही धीमे स्वर में कहा गया था, तथापि राजाने इसे सुनलिया, और वह चुप चाप लौटकर राजसभा में जा बैठा। उस समय राजा के मनमें अनेक तरह के विचारों का तूफान उठ रहा था। परन्तु फिर भी रानी के कहे शब्द का तात्पर्य समझने में वह असमर्थ था। इतने में राजसभा के पण्डित आकर वहाँ पर उपस्थित होने लगे। उन्हें देख भोज ने प्रत्येक पण्डित के आने पर 'मूर्ख' शब्द का उच्चारण करना शुरू किया। इस नई घटना को देख वे विद्वान् भी स्तम्भित होने लगे। कोई भी इसके मर्म को न समझ सका। परन्तु कालिदास के आने पर, जब राजा ने यही शब्द कहा, तब उसने उत्तर दिया :—

> खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे।
> गतं न शोचामि कृतं न मन्ये॥
> द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्!
> किं कारणं भोज भवामि मूर्खः?

अर्थात्—हे राजा भोज! न तो मैं मार्ग में खाता हुआ चलता हूँ, न हँसता हुआ बोलता हूँ, न गई बात का सोच करता हूँ, न किए हुए कार्य का घमंड करता हूँ, और न (वार्तालाप करते हुए)

दो जनों के बीच जाकर खड़ा होता हूँ, फिर भला मैं मूर्ख क्यों होने लगा ?

यह सुनते ही राजा समझ गया कि, मेरे, एकान्त में बातें करती हुई रानी और उसकी सखी के, पास जाकर खड़े होने से ही रानी ने यह शब्द कहा था।

राजा भोज की सभा के अन्य विद्वान् कालिदास के चातुर्य और मान को देख-देखकर मन ही मन उससे कुढ़ा करते थे। साथ ही वे समय-समय पर उसकी दुर्बलताओं को, भोज के समने, प्रकट कर, उसे उसकी नज़र से गिराने की चेष्टा में भी नहीं चूकते थे। एक बार उन लोगों ने राजा से निवेदन किया कि, महाराज ! आप जिस कालिदास का इतना मान करते हैं, वह ब्राह्मण होकर भी, मत्स्य भक्षण करता है। यह सुन राजा भोज ने कहा—यदि ऐसा है तो आप लोग उसे मौक़े पर पकड़वाइए; जिससे मुझे इस बात का विश्वास हो जाय। इस पर पण्डित बोले कि यदि श्रीमान् की यही इच्छा है, तो, इसी समय, स्वयं चलकर नदी तीर पर बैठे हुए कालिदास की तलाशी ले लीजिए। इसमें सारा भेद अपने आप ही खुल जायगा। इसके बाद कुछ ही देर में वे पण्डित, राजा भोज को लेकर, नदी-किनारे जा पहुँचे। कालिदास उस समय तक वहीं था। इसलिये उसने जब राजा को, पण्डितों के साथ, वहाँ आते देखा, तो, उसको भी सन्देह हो गया। और वह अपनी इष्टदेवी का स्मरण कर, बगल में एक छोटी सी गठरी दबाए, उठ खड़ा हुआ। परन्तु राजा ने तत्काल पास पहुँच उससे पूछा :—

कक्षे किं ?

अर्थात्—(तुम्हारी) बगल में क्या है ?

इस पर उसने कहा :—

मम पुस्तकं

अर्थात्—मेरी किताब है।

तब राजा बोला :—

किमुदकं ?

अर्थात्—पानी सा क्या नजर आता है ?

कालिदास ने कहा :—

काव्येषु सारोदकम्।

अर्थात्—यह कविताओं में का साररूप जल है।

तब राजा ने पूछा :—

गन्धः किं ?

अर्थात्—इसमें गन्ध क्यों है ?

इस पर कालिदास बोला :—

ननु रामरावणवधात्संग्रामगन्धोत्कटः।

अर्थात्—यह तो, राम द्वारा रावण के मारे जाने से, युद्ध की वेढव गंध है।

तब राजा ने फिर पूछा:—

जीवः किं ?

अर्थात्—इसमें जीव कैसा है ?

कालिदास ने कहा :—

मम गौडमंत्र लिखितं संजीवनं पुस्तकम्।

अर्थात्—इसमें मेरा 'गौड-मंत्र' लिखा होने से पुस्तक सजीव कर देने वाली है।

तब फिर राजा बोला :—

पुच्छः किं ?

अर्थात्—इसमें पूँछ सी क्या है ?

इस पर कालिदास ने कहा—

खलु ताडपत्र लिखितं।

अर्थात्—पुस्तक 'ताड़-पत्र' पर लिखी हुई है।

उसकी इस चतुराई और उपज को देखकर राजा प्रसन्न हो गया और उसके मुख से आप ही आप यह वाक्य निकल गया :—

हा ! हा !! गुणाढ्यो भवान्।

अर्थात्—ओहो ! आप तो बड़े ही गुणी हैं।

कहते हैं कि, इसके बाद जब कालिदास के बगल की उस गठरी को खोल कर देखा गया तब देवी के प्रभाव से वास्तव में ही उसमें से ताड़पत्र पर लिखी एक पुस्तक निकल आई।

एक रोज़ राजा भोज और कालिदास बगीचे में घूम रहे थे। इतने में ही वहाँ पर मणिभद्र नाम का एक विद्वान् आ पहुँचा और राजा को इधर उधर घूमते देख स्वयं भी उनके साथ हो लिया। उस समय राजा के दाँए हाथ की तरफ़ कालिदास, और बाँए की तरफ़ वह नवागत विद्वान् था। कुछ देर घूमने के बाद उस विद्वान् को शरारत सूझी, और उसने कालिदास का अपमान करने की नीयत से बाँए हाथ की तारीफ़ में श्लोक के ये तीन पद पढ़े :—

गृह्णात्येष रिपोः शिरः प्रतिजवं कर्षत्यसौ वाजिनं
धृत्वा चर्मधनुः प्रयाति सततं संग्रामभूमावपि ॥
द्यूतं चौर्यमथस्त्रियं च शपथं जानाति नायं करो

अर्थात्—यह बायाँ हाथ, (रणाङ्गण में) आगे होकर शत्रु का सिर पकड़ता है, तेज घोड़े को खींचकर रोकता है, ढाल और धनुष लेकर युद्ध में आगे बढ़ता है। परन्तु जुआ खेलना, चोरी करना, पर स्त्री का आलिङ्गन करना, और कसम खाना, यह बिलकुल नहीं जानता।

अभी उक्त विद्वान् ने ये तीन पाद ही कहे थे कि कालिदास उसके मतलब को ताड़कर बोल उठा :—

दानानुद्यततां विलोक्य विधिना शौचाधिकारो कृतः ॥

अर्थात्— परन्तु ब्रह्मा ने इसे, दान देने में असमर्थ देख कर ही, 'आबदस्त' लेने का काम सौंपा है।

यह सुन भोज हँस पड़ा और मणिभद्र लज्जित हो गया।

एक बार एक विद्वान् अपने कुटुम्ब को, जिसमें उसकी स्त्री, उसका पुत्र, और पुत्र वधू थी, लेकर भोज से मिलने को चला। धारा नगरी के पास पहुँचने पर उसे सामने से, एक ब्राह्मण आता दिखाई दिया। यह हाल ही में भोज से सम्मान प्राप्त कर लौट रहा था। नज़दीक पहुँचने पर आने वाले ब्राह्मण ने उस वृद्ध-विद्वान् से पूछा—"महाराज! आप कहाँ जा रहे हैं?" यह सुन विद्वान ने कहा :—

गच्छाम्यहं श्रुति पुराण समग्रशास्त्र—
पारंगतं कलयितुं किल भोजभूपम्।

अर्थात्— मैं वेद, पुराण, और शास्त्रों के ज्ञाता, राजा भोज से मिलने जा रहा हूँ।

इसपर ब्राह्मण बोल उठा :—

वेत्त्यक्षराणि नहि वाचयितुं स राजा
मह्यं ललाटलिखितादधिकं ददौ यः।

अर्थात्— वह राजा तो, जिसने मुझे भाग्य में लिखे से भी अधिक धन दिया है, (मालूम होता है) अक्षर पढ़ना भी नहीं जानता।[1]

---

[1] यहाँ पर ब्राह्मण ने राजा को भाग्य में लिखे अक्षरों के पढ़ने में असमर्थ बतलाकर उसकी दानशीलता की प्रशंसा की है। इसे संस्कृत साहित्य में 'व्याज-स्तुति' कहते हैं।

इसके बाद, जब राजा को उस कुटुम्ब के नगर के पास पहुँचने की सूचना मिली, तब उसने, एक आदमी के हाथ, एक लोटा दूध उस के निवास स्थान पर भेजदिया। उसे देख वृद्ध विद्वान् राजा के आशय को समझ गया और उसने उस दूध में थोड़ी सी शक्कर मिलाकर वह लौटा वापिस राजा के पास लौटा दिया।

राजा ने लोटा भर दूध भेजकर यह सूचित किया था कि, हमारी सभा में तो पहले से ही उज्ज्वल कीर्ति वाले विद्वान् भरे हैं। परन्तु पण्डित ने उसमें बूरा मिलाकर यह जता दिया कि हम भी उनमें, दूध में चीनी की तरह, मिलकर रह सकते हैं।

इसके बाद राजा स्वयं एक साधारण क्षत्रिय का सा भेस बना कर, उस कुटुम्ब को देखने के लिए चला। उस समय वह वृद्ध विद्वान् और उसका पुत्र एक तालाब के तीर पर बैठे सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। राजा ने वहाँ पहुँच, पहले तो, उस विद्वान के पुत्र की तरफ़ देखा और फिर तालाब से एक चुल्लू पानी उठाकर पीलिया। यह देख उस युवक विद्वान् ने भी एक कंकरी उठाकर तालाब में डाल दी।

राजा ने चुल्लू भर पानी पीकर उस युवक को यह जनाया था कि, पहले तुम्हारे पूर्वज ब्राह्मण अगस्त्य ने एक चुल्लू में समुद्र का सारा जल पी डाला था। तुम भी ब्राह्मण हो। क्या तुम में भी वह सामर्थ्य है? इसका आशय समझ, उस युवक विद्वान ने जल में कंकरी छोड़ यह जवाब दिया कि, श्रीरामचन्द्र ने समुद्र पर पत्थरों से पुल बाँध दिया था। तुम भी तो क्षत्रिय हो। क्या तुम में भी वैसी सामर्थ्य है?

यह देख उस समय तो राजा वहाँ से चला आया। परन्तु सायं-काल के समय लकड़हारे के रूप में फिर वहाँ जा उपस्थित हुआ, और रात हो जाने का बहाना कर उन्हीं के निवास के पास एक तरफ़ लेट रहा।

इसी समय सरस्वती कुटुम्ब ने सोचा कि विदेश में, रात में, सब का सो रहना ठीक नहीं है। इसी से उन्होंने बारी-बारी से सामान का पहरा देना निश्चय किया। पहले-पहल जब वृद्ध विद्वान् पहरे पर नियत हुआ और कुटुम्ब के अन्य तीनों व्यक्ति सो गए, तब लकड़हारे के वेष में छिपे राजा ने लेटे ही लेटे यह श्लोकार्ध पढ़ा :—

असारे खलु संसारे सारमेतत्त्रयं स्मृतम् ।

अर्थात्—इस असार संसार में ये तीन ही सार हैं।

इस पर वह विद्वान बोल उठा :—

काश्यां वासः सतां सेवा मुरारेः स्मरणं तथा ।

अर्थात—काशी का निवास, सत्पुरुषों की टहल और ईश्वर का भजन।

इसके बाद जब वह वृद्ध विद्वान सो गया, और उसकी स्त्री पहरे पर बैठो, तब फिर राजा ने वही श्लोकार्ध पढ़ा। इसपर वृद्धा बोली :—

कसारः शर्करायुक्तः कंसारिचरणद्वयम् ।

अर्थात्—खाने को बूरा मिला हुआ कसार और सेवा करने को कृष्ण के दोनों चरण।

इसी तरह जब पुत्र को बारी आई तब राजा ने यह श्लोकार्ध पढ़ा—

असारे खलु संसारे सारं श्वसुर मन्दिरम् ।

अर्थात्—इस असार संसार में सुसराल ही सार है।

इस पर वह युवक बोल उठा :—

हरः शेते हिमगिरौ हरिः शेते पयोनिधौ ।

अर्थात् –(इसी से) महादेव हिमालय पर और विष्णु समुद्र में जाकर आराम करते हैं।

अन्त में पुत्र-वधू के पहरे के समय राजा ने यह श्लोकार्ध कहा :—

असारे खलु संसारे सारं सारङ्गलोचना ।

अर्थात्--इस असार संसार में एक स्त्री ही सार है ।

इस पर उस विदुषी ने राजा को पहचान कर इस श्लोकार्ध की पूर्ति इस प्रकार की :—

यस्यां कुक्षौ समुत्पन्नो भोजराजभवादृशः ।

अर्थात्—जिसके गर्भ से, हे भोजराज ! आपके समान (पुत्र रत्न) उत्पन्न हुआ है ।

इस प्रकार अपने पहचान लिये जाने के कारण राजा शीघ्र वहाँ से उठकर चल दिया और दूसरे दिन उसने उस कुटुम्ब को राजसभा में बुलाकर पूरी तौर से सम्मानित किया ।

एक दिन एक विद्वान राजा भोज की सभा में आरहा था । परन्तु उसके द्वार पर पहुँचने पर, राजा की आज्ञा आने तक के लिये, द्वारपाल ने उसे रोक लिया । इसके बाद जब चोबदार के द्वारा राजा की आज्ञा प्राप्त हो गई तब वह विद्वान राज-सभा में पहुँचा दिया गया । वहाँ पर उसने, भोज के सामने खड़े हो, यह श्लोक पढ़ा :---

राजन् दौवारिकादेव प्राप्तवानस्मि वारणम् ।
मद्वारणमिच्छामि त्वत्तोहं जगतीपते ॥

अर्थात—हे राजा ! मैंने वारण (साधारण हाथी या रुकावट) तो (तुम्हारे) द्वारपाल से ही पालिया है अब तुमसे मद्वारण (मस्त हाथी) चाहता हूँ ।

इस श्लोक में, राज-द्वार पर रोके जाने की शिकायत के साथ ही, 'वारण' शब्द में श्लेष रखकर, हाथी माँगने की चतुराई को देख राजा प्रसन्न हो गया और पूर्व की तरफ खड़े ब्राह्मण के सामने से मुख

फिराकर दक्षिणाभिमुख होकर बैठ गया। यह देख ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ, और वह फिर राजा के सामने जाकर बोला :—

अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुतः।
मार्गणौघः समायाति गुणो याति दिगन्तरम्॥

अर्थात्—हे राजा! तुमने यह अजीब धनुर्विद्या कहाँ सीखी है? इससे बाणों (याचकों) का समूह तो तुम्हारे पास आता है, और धनुष की रस्सी (कीर्ति) दूर-दूर तक जाती है।[1]

यह सुन राजा ने फिर उधर से मुँह फिरा लिया और पश्चिमाभिमुख होकर बैठ गया। यह देख ब्राह्मण को फिर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह फिर राजा के सामने पहुँचकर बोला :—

सर्वज्ञ इति लोकोयं भवन्तं भाषते मृषा।
पदमेकं न जानासि वक्तुं नास्तीति याचके॥

अर्थात्—नाहक ही लोग आपको सर्वज्ञ कहते हैं। आप तो माँगने को आए हुए को इनकार करना भी नहीं जानते।

यह सुन राजा ने अपना मुख उत्तर दिशा की तरफ़ घुमा लिया। इस पर पण्डित ने उस तरफ़ पहुँच यह श्लोक पढ़ा :—

सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या त्वं स्तूयसे जनैः।
नारयो लेभिरे पृष्टं न वक्षः परयोषितः॥

अर्थात्—हे राजन्! लोग कहते हैं कि आप प्रत्येक समय प्रत्येक वस्तु देने को उद्यत रहते हैं। यह सब झूठ है। क्योंकि, न तो आपके शत्रुओं ने ही कभी आपकी पीठ पाई (देखी) है, न पराई स्त्रियों ने ही आपका (वक्ष) आलिङ्गन पाया है।

---

[1] साधारणतया धनुर्विद्या में गुण (धनुष की रस्सी) तो पास रहती है और मार्गणौघ (तीरों का समूह) दूर जाता है।

यह सुन राजा एकदम उठ खड़ा हुआ। यह देख उक्त कवि ने फिर राजा को सुनाकर कहाः—

राजन् कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति।
अभाग्यच्छत्रसंछन्ने मयि नायान्ति बिन्दवः॥

अर्थात्—हे राजन्! यद्यपि आप चारों तरफ़ सुवर्ण की धाराएँ बरसा रहे हैं, तथापि मेरे ऊपर बदकिस्मती की छतरी लगी होने से उनकी बूँदें मुझ तक नहीं पहुँचती हैं।

यह सुन राजा जनाने में चला गया। इस पर कवि को बड़ा ही दुःख हुआ और वह अपने भाग्य को कोसता हुआ सभा से लौट चला। उसकी यह दशा देख, मार्ग में खड़े, भोज के मंत्री, बुद्धिसागर ने उससे सारा हाल पूछा, और उसके सुन लेने पर कहा कि, यदि कवि की इच्छा हो, तो, जो कुछ राजा भोज ने उसे दिया है, उसकी एवज़ में, एक लक्ष रुपये उसे मिल सकते हैं। यह सुन कवि को बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि वह जानता था कि, राजा ने, उसके हर एक श्लोक को सुनकर मुँह फेर लेने के सिवाय, उसे कुछ भी नहीं दिया है। इसीसे उसने बुद्धिसागर की वह शर्त मान ली और एक लक्ष रुपिये लेकर ख़ुशी-ख़ुशी अपने घर चला गया। इधर राजा भोज, अन्तःपुर में पहुँच, राज्य छोड़कर जाने की तैयारी करने लगा था; क्योंकि उसने उस कवि के चमत्कार पूर्ण श्लोकों को सुनकर मन ही मन एक-एक श्लोक पर अपना एक एक दिशा का राज्य उसे दे डाला था। परन्तु बुद्धि सागर ने पहुँच निवेदन किया कि आपको राज्य छोड़कर जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं आपके आशय को समझ गया था, इसीसे मैंने एक लक्ष रुपये देकर कवि से यह राज्य वापिस ख़रीद लिया है। यह सुन राजा ने अपने मंत्री की बुद्धि की सराहना की।

——

संकर्षण नामक विद्वान् ग़रीब होने पर भी किसी के पास जाता आता न था। यह देख उसकी स्त्री ने उसे राजा भोज के पास जाने के लिये बहुत कुछ समझाया और कहा :—

अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते।
अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः॥

अर्थात्—जिस प्रकार, कीमती माणक (लालरंग के रत्न विशेष) को भी सुवर्ण के आश्रय की ज़रूरत रहती है—(सुवर्ण में जड़े या पिरोए जाने के बिना 'माणक' की शोभा नहीं बढ़ती) उसी प्रकार पण्डितों, स्त्रियों और लताओं की भी बिना आश्रय के शोभा नहीं होती।

इस पर उस ब्राह्मण ने राजा के पास जाना अङ्गीकार कर लिया। इसके बाद जब वह भोज की सभा में पहुँचा, तब राजा ने उसे प्रथम बार आया देख पूछा :—

कुत आगम्यते विप्र !

अर्थात्—हे ब्राह्मण, तुम कहाँ से आ रहे हो ?

यह सुन ब्राह्मण बोला:—

कैलासादागतो स्म्यहम्।

अथान्—मैं कैलास से आया हूँ।

तब फिर भोज ने पूछा:—

शिवस्य चरणौ स्वस्ति

अर्थात्—शिवजी कुशल से तो हैं ?

इस पर ब्राह्मण ने उत्तर दिया:—

किं पृच्छसि शिवोमृतः॥

अर्थात्—आप क्या पूछते हैं ? शिवजी तो मर गए।

यह सुन राजा को, ब्राह्मण के कहने पर, बड़ा आश्चर्य हुआ, और उसने बड़े आग्रह से उस कथन का तात्पर्य पूछा। तब ब्राह्मण ने कहा :—

अर्धं दानववैरिणा गिरिजयाप्यर्धं हरस्याहृतं
देवेत्थं भुवनत्रये स्मरहराभावे समुन्मीलति।
गंगा सागरमम्बरं शशिकला शेषश्चपृथ्वीतलं
सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत्त्वां मां च भिक्षाटनम् ॥

अर्थात्—महादेव का आधा भाग (शरीर) तो विष्णु ने और आधा पार्वती ने ले लिया—(अर्थात्—शिवजी का आधा शरीर 'हरिहर' रूप में और आधा 'अर्धनरीश्वर' रूप में मिल गया) इससे तीनों लोकों में महादेव का अभाव हो गया। (और उनकी सम्पत्ति इस प्रकार बँट गई।) गंगा तो समुद्र में जा मिली। चन्द्रमा की कला आकाश में जा पहुँची। शेषनाग पाताल में चला गया। सर्वज्ञता और प्रभुत्व आपके हाथ लगा। रह गया भिक्षा माँगना सो, वह मेरे पल्ले पड़ा है।

ब्राह्मण की चतुरता को देख राजा ने पास खड़े सेवक को आज्ञा दी कि, इस ब्राह्मण को एक भैंस दे दो; जिससे इसके बालबच्चों को दूध पीने का सुभीता हो जाय। परन्तु वह दुष्ट कर्मचारी, एक ऐसी भैंस ले आया जो देखने में तो मोटी ताज़ी थी, परन्तु बूढ़ी और बाँझ थी। ब्राह्मण शीघ्र ही उसकी दुष्टता को ताड़ गया। इसलिये भैंस के कान के पास अपना मुख ले जाकर धीरे धीरे कुछ बड़बड़ाने लगा, और फिर भैंस के मुँह के सामने अपना कान करके खड़ा हो गया। उसकी इन चेष्टाओं को देख राजा ने इसका कारण पूछा। इस पर उसने कहा—महाराज! मैंने उसके कान के पास मुख ले जाकर पूछा था कि क्या वह गर्भवती है? इस पर उसने मेरे कान में कहा :--

भर्ता मे महिषासुरः कृतयुगे देव्या भवान्या हत—
स्तस्मात्तद्दिनतो भवामि विधवा वैधव्यधर्मोह्यहम्।

दन्ता मे गलिताः कुचा विगलिता भग्नं विषाणद्वयं
वृद्धायां मयि गर्भसम्भवविधिं पृच्छन्न किं लज्जसे ॥

अर्थात्--भगवती दुर्गा ने सत्ययुग में ही मेरे पति महिषासुर (भैंसे के आकार के राक्षस विशेष) को मार डाला था। इसलिए उसी दिन से मैं विधवा हो गई हूँ और विधवा के धर्म को भी पालती आती हूँ। फिर अब तो मेरे दाँत टूट गए हैं, थन लटक गए हैं, और दोनों सींग भी टूट गए हैं। ऐसी हालत में मुझ बुढ़िया से गर्भ होने की बात पूछते क्या तुझे लज्जा भी नहीं आती ?

इस अपूर्व कथन को सुन भोज बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने उस दुष्ट कर्मचारी को दण्ड देने के साथ ही उस ब्राह्मण को, दूध देनेवाली अच्छी भैंस, और बहुत सा द्रव्य देकर, सन्तुष्ट किया।

एक बार राजा भोज की सभा में एक विद्वान् आया। उसे देख राजा ने उससे उसका हाल और वहाँ आने का कारण पूछा। यह सुन विद्वान् बोला :—

शूली जातः कदशनवशाद्भैक्ष्ययोगात्कपाली
वस्त्राभावाद्विगतवसनः स्नेहशून्यो जटावान्।
इत्थं राजंस्तव परिचयादीश्वरत्वं मयाप्तं
नाद्यापि त्वं मम नरपते! ह्यर्धचन्द्रं ददासि ॥

अर्थात्—मैं ख़राब भोजन मिलने से शूली (शूलरोग से पीड़ित), भिक्षा माँगकर गुज़ारा करने से कपाली (खप्पर-या जहरी नारियल का पात्र रखनेवाला), पहनने को कपड़े न होने से दिगम्बर (नंगा) और तेल, आदि के न मिलने से जटावाला, हो गया हूँ। हे राजा! इस तरह आपके दर्शन से मैंने महादेव का रूप तो पा लिया है; क्योंकि महादेव भी शूली (त्रिशूलधारी), कपाली (कपालधारी), दिगम्बर, जटाधारी, और ईश्वर है। परन्तु साथ ही वह 'अर्धचन्द्र' धारी भी है।

फिर आप मुझे भी (अर्धचन्द्र) (गला पकड़कर धक्का) क्यों नहीं देते; जिससे मैं पूरा शिवरूप बन जाऊँ।

राजा ब्राह्मण की, अपनी दशा प्रकट करने की, इस चतुराई को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे यथोचित द्रव्य देकर सन्तुष्ट किया।

एक ग़रीब ब्राह्मण, गन्नों के टुकड़ों की एक छोटी सी पोटली लेकर, भोज के दर्शन करने को धारा की तरफ़ चला। परन्तु मार्ग में, रात हो जाने के कारण, वह एक स्थान पर सो रहा। उसके इस प्रकार सो जाने के कारण किसी दुष्ट ने वे गन्ने तो उसकी पोटली से निकाल लिए, और उनके स्थान पर कुछ लकड़ी के टुकड़े, बाँध दिए। प्रातःकाल होते ही, वह ब्राह्मण, नित्य-कर्म से निवृत्त हो, सीधा राज-सभा में जा पहुँचा और राजा के सामने पोटली रखकर खड़ा हो गया। इसके बाद जब राजा ने उसे खोल कर देखा तब उसमें से लकड़ी के टुकड़े निकल पड़े। यह देख राजा को क्रोध चढ़ आया, और साथ ही वह ब्राह्मण भी, जिसे गन्नों के टुकड़ों के चोरी हो जाने का कुछ भी पता न था, उन्हें देख घबरा गया। इस घटना को देख कालिदास को ब्राह्मण की हालत पर दया आ गई। इसलिये उसने ब्राह्मण का पक्ष लेकर कहा :—

दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यद्रुमैर्भूषितं
दग्धा वायु सुतेन हेमनगरी लङ्कापुनः स्वर्णभूः।
दग्धो लोकसुखो हरेण मदनः किं तेन युक्तं कृतं
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं नहि॥

अर्थात्—बली अर्जुन ने, सुन्दर वृक्षों से शोभित, खाण्डव वन को; वायु पुत्र हनूमान् ने स्वर्ण उत्पन्न करने वाली, सोने की लङ्का को; और महादेव ने, लोगों को सुख देने वाले, कामदेव को जला डाला। क्या ये काम ठीक हुए? (भला जलाना तो दरिद्रता को था)।

परन्तु लोगों कों दुःख देने वाली उस दरिद्रता को आज तक किसी ने भी नहीं जलाया है।

इस लिये हे राजा! यह ब्राह्मण, आप के सामने, इन लकड़ी के टुकड़ों को, जो दरिद्रता का रूप हैं, रख कर, इन्हें जलाने की प्रार्थना करता है। यह सुन राजा प्रसन्न हो गया और उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर विदा किया। इसपर ब्राह्मण भी, प्रसन्न होकर, राजा से विदा हुआ। परन्तु वह फिर-फिर कर अपने उपकारी कालिदास की तरफ़, कृतज्ञता भरी दृष्टि से, देखता जाता था। यह देख राजा ने उससे बार-बार घूमकर देखने का कारण पूछा। इसपर उसने कहा—"महाराज! कई वर्षों से दरिद्रता ने मेरा पीछा कर रक्खा था। परन्तु आज आपने द्रव्य देकर उससे मेरा पीछा छुड़वा दिया है। इस लिये मैं देखता हूँ कि अब उसकी क्या दशा है? कहीं फिर भी तो वह मेरे पीछे नहीं लगी है"। ब्राह्मण के इस चतुराई भरे कथन को सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

एक रात्रि को राजा भोज की आँख खुली, तो उसने देखा कि चन्द्रमा की किरणें, जाली लगे छोटे द्वार में होकर, पास में सोई हुई रानी की छाती पर पड़ रही हैं। इस पर तत्काल उसके मुख से यह श्लोकार्ध निकल पड़ा :—

गवाक्षमार्गं प्रविभक्तचन्द्रिको
विराजते वक्षसि सुभ्रु ते शशी।

अर्थात्—हे सुन्दर नेत्रवाली! जाली के मार्ग से प्रवेश करने के कारण बट गई है चाँदनी जिस की, ऐसा यह चन्द्रमा, तेरी छाती पर अपूर्व शोभा देता है।

इसके बाद राजा ने इस श्लोक का उत्तरार्ध बनाने की बहुत कोशिश की, परन्तु न बना सका। इसलिये वह बार बार उसी पूर्वार्ध का उच्चारण

करने लगा। इसके पहले ही, एक चोर, चोरी करने के लिये, राजमहल में घुस आया था, और राजा के जग जाने से एक कोने में छिपा बैठा था। उसने, जब राजा के मुख से, उसी आधे श्लोक को दो-चार बार सुना, तब उस से न रहा गया और उसने उसका उत्तरार्ध बनाकर इस तरह कहा :—

प्रदत्तझम्पः स्तनसङ्गवाञ्छया
विदूरपातादिव खण्डतांगतः ॥

अर्थात्—(ऐसा ज्ञात होता है कि) स्तनों के स्पर्श को इच्छा से, बहुत ऊँचे से कूद पड़ने के कारण ही, यह टुकड़े टुकड़े हो गया है।

एकाएक चोर के मुँख से इस प्रकार के बचन सुन, राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ, और उसने उसे पकड़वाकर एक कोठरी में बन्द करवा दिया। प्रातःकाल जब उसका विचार होने लगा, तब उसने राजा। को लक्ष्य कर कहा :—

भट्टिर्नष्टो भारविश्चापि नष्टो
भिक्षुर्नष्टो भीमसेनश्च नष्टः।
भुक्कुण्डोहं भूपतिस्त्वं च राजन्
'भानां' पंक्तावन्तकः संप्रविष्टः ॥

अर्थात्—हे राजा! भट्टि, भारवि, भिक्षु, और भीमसेन तो मर चुके। अब मैं जिसका नाम भुक्कुण्ड है, और आप, जो भूपति कहाते हैं बाकी रहे हैं। परन्तु 'भ' की पंक्ति में यमराज घुसा हुआ है। (तात्पर्य यह कि 'भ' से लेकर 'भी' तक के अक्षर जिनके नाम के आदि में थे उनको तो काल खा चुका है। अब 'भु' से नाम का प्रारम्भ होने के कारण मेरी, और उसके बाद 'भूपति' कहलाने के कारण आपकी बारी है। इसलिये जब तक मैं जीता रहूँगा आप भी बचे रहेंगे)

उसकी इस युक्ति को सुन राजा भोज ने उस चोर का अपराध क्षमा कर दिया।

एक बार राजा भोज कालिदास से अप्रसन्न हो गया और उसने उसे अपने देश चले जाने की आज्ञा दे दी। परन्तु कुछ काल बाद, जब राजा को कालिदास का अभाव खटकने लगा, तब उसने उसके ढूँढ निकालने की एक युक्ति सोच निकाली और उसी के अनुसार चारों तरफ़ यह सूचना प्रचारित करवा दी कि, जो कोई नया श्लोक बनाकर हमारी सभा में लायेगा उसे एक लाख रुपया इनाम दिया जायगा। इससे अनेक लोग अच्छे अच्छे श्लोक बनाकर राजसभा में लाने लगे। परन्तु भोज ने पहले से ही अपनी सभा में तीन ऐसे पण्डित नियत कर रक्खे थे कि, उनमें से एक को एक बार, दूसरे को दो बार, और तीसरे को तीन बार सुन लेने से नया श्लोक याद हो जाता था। इसलिये जब कोई आकर नया श्लोक सुनाता तब उन पण्डितों में का पहला पण्डित उसे पुराना बतला कर स्वयं उसे, वापिस सुना देते। इसके बाद दूसरा और तीसरा पण्डित भी उसी प्रकार क्रमशः उसे सुना देता। इससे श्लोक लाने वाला लज्जित होकर लौट जाता था। जब कोई भी लाख रुपये प्राप्त न कर सका तब कालिदास ने राजा की चाल को ताड़ कर एक ग़रीब और वृद्ध ब्राह्मण को एक श्लोक देकर राज सभा में भेज दिया। वह श्लोक इस प्रकार था :

'स्वस्ति श्रीभोजराज त्रिभुवनविदितो धार्मिकस्ते पिताभूत्'
पित्रा ते वै गृहीता नवनवतिमिता रत्नकोट्यो मदीयाः।
ता मे देहीति राजन् सकल बुधजनैर्ज्ञायते सत्यमेत—
न्नो वा जानन्ति ते तन्मम कृतिमथवा देहि लक्षं ततो मे॥

अर्थात्—हे राजा भोज! संसार जानता है कि आपके पिता बड़े धार्मिक और सत्य वादी थे। उन्हों—आपके पिता—ने मुझसे

निन्यानवे करोड़ (रत्न) रुपये क़र्ज़ लिए थे। शायद इस बात की सच्चाई (आप की सभा के) सारे ही पण्डित जानते हैं। परन्तु यदि वे नहीं जानते हैं, और इस श्लोक को मेरा बनाया हुआ ही समझते हैं, तो मुझे एक लाख रुपये दिलवाइए।

इसे सुन राज-सभा के पण्डित राजा का मुहँ देखने लगे। क्योंकि यदि वे इसे पुराना कहते हैं तो राजा को निन्यानवे करोड़ के फेर में पड़ना पड़ता है, और जो नया बतलाते हैं, तो अपनी घोषणा के अनुसार राजा को एक लाख रुपये देने पड़ते हैं। इसी बीच राजा भोज उस श्लोक की रचना-चातुरी को देखकर समझ गया था कि, हो न हो, यह कालिदास ही की करामात है। इसलिये उसने ब्राह्मण को एक लाख रुपये से सन्तुष्ट कर इस श्लोक के बनाने वाले का नाम-धाम पूँछ लिया और स्वयं वहाँ पहुँच कालिदास को धारा में लौटा लाया।

एक बार रात्रि में आँख खुल जाने के कारण भोज को अपने ऐश्वर्य का विचार आ गया। इससे उसके मुख से निकला :—

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति दन्ति निवहास्तरलास्तुरङ्गाः

अर्थात्—मेरी रानियाँ सुन्दर हैं, मेरे मित्र मेरे पक्ष में हैं, मेरे भाई बन्धु अच्छे हैं, और मेरे नौकर भी स्वामि-भक्त हैं। इसी प्रकार मेरे यहाँ मस्त हाथी और चपल घोड़े भी हैं।

अभी राजा इतना ही कह पाया था कि, कोने में छिपा, चोर; जो चोरी के लिये महल में आकर, राजा के जग जाने से वहाँ छिपा बैठा था, बोल उठा :—

सम्मीलिते नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति॥

अर्थात्—(ऐ राजा !) आँखें मिच जाने पर (यह सब) कुछ भी नहीं है।

राजा ने उसकी मौक़े की उक्ति से प्रसन्न होकर, उसका राज महल में सेंध लगाने का अपराध क्षमा कर दिया, और उसे बहुत सा इनाम देकर विदा किया।

एक बार विलोचन नाम का कवि, अपने कुटुम्ब को साथ लेकर, भोज की सभा मे पहुँचा। उसे देख भोज ने कहा :—

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ।

अर्थात्—बड़े आदमियों के कार्य की सिद्धि उनके अपने ही बल में रहती है, न कि साथ के सामान में।

इस पर उस कवि ने इस 'श्लोक-पाद' की पूर्ति इस प्रकार की :—

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनं
वने वासः कंदादिकमशनमेवं विधगुणः ।
अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत कराम्भोज कुहरे
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

अर्थात्—अगस्त्य ऋषि घड़े में से जन्मे थे, जंगल के जानवरों (हरिणादिकों) के साथ पले थे, भोजपत्र पहनते थे, जंगल में रहते थे और कंद-मूल, आदि खाकर निर्वाह करते थे। फिर भी उन्होंने समुद्र का एक ही चुल्लू करडाला। (इसी से कहते हैं कि—) बड़े लोगों के कार्य की सिद्धि उनके अपने बल में रहती है, सामान में नहीं।

इसके बाद राजा की आज्ञा पाकर उस कवि की स्त्री ने कहा :—

रथस्यैकं चक्रं भुजगनमिताः सप्ततुरगाः
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि ।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

अर्थात्—सूर्य के रथ के एक ही पहिया है, उस में जुड़े सातों घोड़ों पर साँपों का साज है, रास्ता बिना सहारे का—शून्य में है, और रथ का हाँकने वाला लूला है। फिर भी सूर्य हमेशा ही इस लम्बे आकाश का पार कर लेता है। (इसी से कहा है कि—) बड़े लोगों के कार्य की सिद्धि उनके अपने बल में ही रहती है, पास की सामग्री में नहीं।

फिर कवि का पुत्र बोला :—

> विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
> र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
> पदातिर्मर्त्योसौ सकलमवधीद्राक्षस कुलं
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

अर्थात—लङ्का जैसे नगर का जीतना, पैदल ही समुद्र का पार करना, रावण जैसे शत्रु का मुकाबला, साथ में केवल बंदरों की सहायता और स्वयं पैदल मनुष्य। इतना होते हुए भी जब श्री रामचन्द्र ने सारे ही राक्षस-वंश का नाश कर डाला, तब कहना पड़ता है कि, श्रेष्ठ पुरुषों की क्रियासिद्धि उन्हीं की ताक़त में रहती है, साथ के समान में नहीं।

इसके बाद पण्डित की पुत्र-वधू ने कहा :—

> धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशां
> दृशां कोणो बाणः सुहृदपि जडात्माहिमकरः।
> स्वयं चैकोऽनङ्गः सकलभुवनं व्याकुलयति
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

अर्थात—कामदेव का धनुष फूलों का है, (उसकी) प्रत्यंचा—(धनुष की रस्सी) भौरों की है, बाण स्त्रियों के कटाक्षों के हैं, दोस्त बे जानवाला चन्द्र है, और वह ख़ुद बिना शरीर का है। फिर भी अकेला

ही सारी दुनिया को घबरा देता है। इसीसे कहा है कि तेज वाले प्राणि-यों की कामयाबी, उनके बल में ही रहती है, उपकरण में नहीं।

इन चमत्कार से भरी उक्तियों को सुन भोज ने उनका यथोचित-दान और मान से सत्कार किया।

एक बार राजा ने कालिदास से अपने 'मरसिये' बनाने को कहा। परन्तु उसने इनकार कर दिया। इसी सम्बन्ध की बात के बढ़ते-बढ़ते दोनों एक दूसरे से अप्रसन्न हो गए, और कालिदास धारा को छोड़ कर विदेश चला गया। कुछ दिन बाद राजा भी भेस बदल कर कालिदास के पास पहुंचा। उस समय कवि उसे न पहचान सका। बात चीत के सिलसिले में जब कालिदास को ज्ञात हुआ कि, वह पुरुष धारा का रहने वाला है, तब उसने उससे भोज के कुशल समाचार पूछे। राजा को अच्छा मौका हाथ लगा। इससे उसने कहा कि, आप जिस के विषय में पूछते हैं, वह तो कुछ दिन हुए मर चुका। यह सुन कवि घबरा गया, और उस के मुख से निकल पड़ा :—

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते॥

अर्थात्—राजा भोज के स्वर्ग जाने पर आज धारा नगरी बगैर आधार के हो गई, सरस्वती का सहारा नष्ट हो गया, और सारे ही विद्वान आश्रय-हीन हो गए हैं।

यह सुनते ही भोज मूर्छित हो गया। इसी समय कालिदास ने भी उसे पहचान लिया और उसके होश में आने पर पूर्वोक्त श्लोक को बदल कर इस प्रकार कहा :—

अद्य धारा शुभाधारा शुभालम्बा सरस्वती।
पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते॥

अर्थात्—राजा भोज के पृथ्वी पर होने के कारण आज धारा श्रेष्ठ आधार वाली है, सरस्वती को भी अच्छा सहारा प्राप्त है, और सारे ही विद्वान् आश्रय-युक्त (शोभायमान) हो रहे हैं।

इस घटना के बाद दोनों लौट कर धारा में चले आए।

एक बार राजा ने सभा के पण्डितों को इस समस्या की पूर्ति करने को कहा :—

'टटं, टटं, टं, टटटं, टटं, टः,'

जब अन्य कोई भी इस कार्य में सफल न हुआ, तब कालिदास ने इस की पूर्ति इस प्रकार की :—

भोजप्रियायाः मदविह्वलायाः करच्युतं चन्दनहेमपात्रम्।
सोपानमार्गेण करोति शब्दं टटं, टटं, टं, टटटं, टटं, टः॥

अर्थात—मदसे विह्वल होकर, जिस समय, भोज की रानी, सोने की, चंदन की कटोरी लेकर, जीने पर चढ रही थी, उस समय उसके हाथ से गिर जाने के कारण, वह कटोरी, जीनों पर से लुड़कती हुई, टटं, टटं, टं टटटं, टटं, ट: शब्द करने लगी।

इस उक्ति को सुन राजा ने कालिदास को हर तरह से सम्मानित किया।

इसी प्रकार के और भी कई किस्सों का सम्बन्ध भोज से लगाया जाता है।

परिशिष्ट

(१) राजा भोज का तीसरा दानपत्र

राजा भोज का तीसरा दानपत्र वि० सं० १०७६ का है।[1] यह भी ताँबे के दो पत्र पर खुदा है। इन पत्रों की लंबाई १३ इंच और ऊंचाई (या चौड़ाई) ८¾ इंच है। इनको जोड़ने के लिये पहले पत्र के नीचे के और दूसरे पत्र के ऊपर के भाग में दो दो छेद करके दो मोटी ताँबे की कड़ियाँ डाली हुई हैं। दूसरे पत्र के नीचे के बाँए कोने में दुहरी पंक्तियों के चतुष्कोण के बीच उड़ते हुए गरुड़ की आकृति बनी है। गरुड़ का मुख पंक्तियों की तरफ़ है और उसके बाँए हाथ में सर्प है। यह चतुष्कोण उक्त पत्र के नीचे की ५ पंक्तियों के सामने तक बना है।

इस ताम्रपत्र में भी अनेक स्थानों पर तालव्य शकार के स्थान में दन्त्य सकार और दन्त्य सकार के स्थान में तालव्य शकार का प्रयोग मिलता है तथा 'ब' के स्थान में 'व' तो सब स्थानों पर ही खुदा है। दो स्थानों पर 'न' के स्थान में 'ण' का प्रयोग मिलता है। रेफयुक्त व्यंजन अधिकतर द्वित्त लिखा गया है। 'त्र' 'क्र' आदि में संयुक्त व्यंजन के नीचे पूरा 'र' लिखा है। 'व' और 'ध' की लिखावट में विशेष अन्तर नहीं है। 'कृ' के लिखने का ढंग ही निराला है।

इस ताम्रपत्र की लिखावट संस्कृत भाषा में गद्य-पद्य मय है और इसमें भी पहले दो ताम्रपत्रों में उद्धृत वे ही ९ श्लोक हैं। इसके अन्तर

---

[1] एपिग्राफ़िया इंडिका, भा० १८ (जुलाई १९२६) पृ० ३२०-३२५।

भी राजा भोज के अन्य ताम्रपत्रों के से ही, ई० स० की ११वीं शताब्दी के मालवे की तरफ़ के प्रचलित नागरी अक्षर हैं।

यह ताम्रपत्र इंदौर से ८ कोस पश्चिम के बटमा गाँव में, हल चलाते समय, एक किसान को मिला था। इसमें जिस 'नाल तडाग' गाँव के दान का उल्लेख है वह इन्दौर-राज्य के कैरा-प्रान्त का 'नार' (नाल) गाँव होगा।

इस ताम्रपत्र में लिखा दान वि० सं० १०७६ की भादों सुदी १५ (ई० स० १०२० की ४ सितंबर) को कोंकण पर अधिकार करने की खुशी में दिया गया था। इसमें तिथि के साथ वार का उल्लेख नहीं मिलता है। दोनों पत्रों की इबारत के नीचे राजा भोज के हस्ताक्षर भी हैं।

राजा भोज के वि० सं० १०७६ के दूसरे ताम्रपत्र की नकल

पहला पत्र

(१) ओं[1] [॥ॐ] ज [य] ति व्योमकेशो सौ यः सर्गाय विभर्तितां[2] ऐंद्वीं सिरसा[3] लेखां जगद्वीजां कुरा[4] कृतिम् ॥ [१ॐ] तन्वन्तु वः

(२) स्मरारातेः कल्याणमनिशं जटाः [।ॐ] कल्पान्त समयो द्दामतडिद्वलय पिंगलाः ॥ [२ॐ] परमभट्टारक महा-

(३) राजाधिराज परमेश्वर श्री सीयकदेव पादानुध्यात परम-भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर-

(४) श्री वा [क्प] तिराजदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सिंधुराज देव पा-

---

[1] चिन्ह विशेष द्वारा सूचित किया गया है। [2] बिभर्ति।

[3] शिरसा। [4] जगद्बीजां कुरा"।

(५) दानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेव: कुशली ।। न्याय पद्रसप्ता-

(६) दशकान्त: पातिनालतडागे समुपगतान्समस्त राजपुरुषा-न्ब्राह्मणो[१] त्तरान्प्रति निवा.स पट्टकिल जनपदादीं-

(७) श्च समादिशत्यस्तु व: संविदितम् ।। यथास्माभि: स्नात्वा चराचर गुरु भगवन्तं भवानीपतिं समभ्यर्च्चर्य ।

(८) संसारस्यासारतां दृष्ट्वा वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-मापातमात्र मधुरा विषयोपभोग: ।।

(९) प्राणास्तृणाग्रजलविंदु[२]समा नराणां (।) धर्म्म: सखा परमहो परलोकयाने ।। [२ॐ] भ्रमत्संसार चक्राग्र=

(१०) धाराधारामिमां श्रियं । प्राप्य येन ददुस्तेषां पश्चात्ताप: परं फलम् ।। [४ॐ] इति जगतो विनश्वरं

(११) स्वरूपमाकलय्योपरिलिखितग्राम: स्वसीमातृणगोचरयूति-पर्यन्त: सहिरण्यभागभोग:

(१२) सोपरिकर: सर्व्वादायसमेतश्च ।।[३] विशाल ग्रामविनिर्गत-पूर्व्व [जा] य . स्थाण्वीश्वरादागताय ।[४]

(१३) स्वहस्तोयं श्री भोजदेवस्य [ॐ]

दूसरा पत्र

(१४) कौसिक[५]सगोत्राय । अघमर्षण विश्वामित्र कौसिके[६] तित्रि: प्रव राय[७]। माध्यंदिनशाखाय । भट्ट-

---

[१] ब्राह्मणो । [२] प्राणास्तृणाग्रजलबिंदु° ।

[३] ऐसे चिह्न अनेक जगह निरर्थक ही खोद दिए गए हैं ।

[४] इस पंक्ति का सम्बन्ध दूसरे पत्र की पहली पंक्ति से है ।

[५] कौशिक° । [६] कौशिके° । [७] त्रिप्रवराय ।

(१५) ठक्कुसिक सुताय पण्डित देल्हाय। कौंकणमहणविजय-पर्व्वाणि। मातापित्रोरात्मनश्च पुण्यय-

(१६) शोभिवृद्धये। अदृष्टफलमं [गो] कृत्यचन्द्रार्कार्णवक्षि-तिसमकालं यावत्तया भक्त्या शाशने[1] नोदक-

(१७) पूर्व्वं प्रतिपादित इति॥ तन्मत्वा यथा दीयमानभागभोग-कर हिरण्यादिकमाज्ञा श्रवणविधेयै-

(१८) भूंत्वा सर्व्वमस्मै समुपनेतव्य [2]। सामान्यं चैतत्पुण्य फलं वुध्वा[3] अस्मद्वंशजैरण्यै[4] रपि भाविभो=

(१९) क्तृभिरस्मत्प्रदत्तधर्म्मो दायो[5] यमनुमन्तव्यः पालनीयश्च॥ उक्तं च॥ वहुभि[6] र्व्वं सुधा भुक्ता राजभिः

(२०) सगरादिभिर्य्ये (भिः। य) स्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं॥ [५] यानीह दत्तानि पुरानरेंद्रैर्द्दानानि

(२१) धर्म्मार्थ यसस्कराणि [7]। (।) निर्म्मोल्यवान्ति प्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददीत॥ [६॥] अस्मत्कु-

(२२) लक्रममुदारमुदाहरद्भिरण्यैश्च[8] दानमिदमभ्यनुमोदनीयं। [।] लक्ष्म्यास्तडिच्छलिलवुद्बुदचञ्च[9]—

(२३) लाया: दानं फलं परयसः[10] परिपालनं च। [।७] सर्व्वानेतान्भाविनः पार्थिवेंद्रान्भूयो भू-

(२४) यो याचते रामभद्रः। [।] सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः॥ [८॥]

---

[1] शासने०। [2] समुपनेतव्यं। [3] बुद्ध्वा। [4] रन्यै०।

[5] धर्म्मदायो०। [6] बहुभि०। [7] यशस्कराणि। [8] रन्यैश्च।

[9] ०स्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्च०। [10] परयशः।

(२५) इति कमल दलांबु[1] विंदुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य-
जीवितं च । शकल[2]मिद मुदाहृ-

(२६) तं च बुध्वा[3] नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्या [:॥]
[॥४॥] इति ॥ सम्वत् १०७६ भाद्रपद शुदि १५ स्वय-

(२७) माज्ञा ॥ मङ्गलं महाश्रीः ॥ स्वहस्तोयं श्रीभोजदेवस्य [॥॥]

राजा भोज के वि० स० १०७६ के तीसरे ताम्रपत्र का भाषार्थ ।

(यहाँ पर पहले के दानपत्रों में दी हुई इबारत का अर्थ छोड़कर विशेष इबारत का अर्थ ही लिखा जाता है ।)

पहले के दो श्लोकों में शिव की स्तुति है ।

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव; जो कि श्री सीयकदेव के पुत्र वाक्पतिराज के उत्तराधिकारी श्री सिन्धुराज का पुत्र है, न्याय पद्र के १७ (गाँवों) में के नालतडाग में इकट्ठे हुए सब राजपुरुषों और ब्राह्मणों सहित वहाँ के निवासियों तथा पटेलों आदि को आज्ञा देता है कि तुम को जानना चाहिए कि हमने स्नान करने के बाद महादेव की पूजन करके और संसार की असारता को देखकर...[4] तथा जगत के नाशवान् रूप को समझ कर ऊपर लिखा गाँव उसकी पूरी सीमा तक मय गोचर भूमि, आयके सुवर्ण, हिस्से, भोग की रकम, अन्य सब तरह की आय और सब तरह के हक के, स्थाएवीश्वर से आए हुए कौशिक गोत्री तथा अघमर्षण, विश्वामित्र और कौशिक इन तीन प्रवर वाले माध्यंदिनी शाखा के भट्ट ठट्ठसिक के पुत्र पण्डित देल्ह को, जिसके पूर्वज विशालग्राम के रहने वाले थे, कोंकण पर अधिकार करने

---

[1] °दलांबु° । [2] सकल° । [3] बुद्ध्वा ।

[4] इस स्थान पर पूर्वोक्त दानपत्रों में दिये हुए संसार की असारता के सूचक वे ही दो श्लोक हैं ।

के विजयसूचक उत्सव पर, अपने माता पिता और अपने निज के पुण्य और यश की वृद्धि के लिए पुण्यफल को मानकर, चन्द्र, सूर्य, समुद्र और पृथ्वी रहे तब तक के लिए, पूर्ण भक्ति के साथ जल हाथ में लेकर आज्ञा के द्वारा, दिया है। यह जानकर इसका दिया जानेवाला हिस्सा लगान, कर, सुवर्ण आदि हमारी आज्ञा को मानकर सब उसीके पास पहुँचाना चाहिए।

यह पुण्य सब के लिए एकसा है; ऐसा समझ कर हमारे पीछे होने वाले हमारे वंश के और दूसरे राजाओं को भी हमारे दिए इस दान की रक्षा करनी चाहिए...[1]

संवत् १०७६ की भादों सुदि १५

यह स्वयं हमारी आज्ञा है। मंगल और श्री वृद्धि हो।

यह स्वयं भोजदेव के हस्ताक्षर हैं।

(२) राजा भोज का चौथा दानपत्र

राजा भोज का चौथा दानपत्र वि० सं० १०७९ का है। यह भी ताँबे के दो पत्रों पर, जिनकी चौड़ाई १३ इंच और ऊंचाई ९ इंच है, खुदा है। इसके दोनों पत्रों का तोल ३ सेर १० छटाँक है। इनको जोड़ने के लिये भी पहले पत्र के नीचे के और दूसरे पत्र के ऊपर के भाग में दो दो छेद करके ताँबे की दो कड़ियाँ डाल दी गई थीं। इन कड़ियों में से प्रत्येक का व्यास २ १/४ इंच और मुटाई ३/८ इंच है। इस ताम्रपत्र में खुदे अक्षरों की लंबाई ५/१६ से १/२ इंच तक है। पहले ताम्रपत्र के अक्षर दूसरे की अपेक्षा कुछ कम खुदे और घिसे हुए हैं। इन पत्रों की पंक्तियों के बाँई ओर करीब १ इंच का हाशिया छुटा हुआ है। दूसरे ताम्रपत्र की अन्तिम ७ पंक्तियों के प्रारम्भ की तरफ़ (नीचे के बाँए कोने में) दुहेरी लकीरों के

---

[1] इसके आगे अन्य दानपत्रों वाले वे ही ४ श्लोक खुदे हैं।

३ इंच लंबे चौड़े चतुष्कोण के भीतर उड़ने हुए गरुड़ की आकृति बनी है। गरुड़ का मुख पंक्तियों की तरफ़ है; और उसके बाँए हाथ में सर्प है। इन पत्रों पर भी एक ही तरफ़ अक्षर खुदे हैं; जो राजा भोज के अन्य दान पत्रों के अक्षरों के समान ही हैं।

इस दानपत्र में भी कहीं कहीं 'श' के स्थान में 'स' और 'स' के स्थान में 'श' तथा 'य' के स्थान में 'ज' लिखा गया है। 'ब' के स्थान में 'व' का प्रयोग तो सर्वत्र ही किया गया है। संयुक्त व्यंजन में 'र' के साथ का अक्षर प्राय द्वित्त लिखा गया है। कहीं कहीं अनुस्वार और विसर्ग का प्रायोग निरर्थक ही कर दिया गया है। साथ ही श्लोकान्त और वाक्यान्त तक में 'म' के स्थान में अनुस्वार ही लिखा गया है।

इस ताम्रपत्र की लिखावट भी संस्कृत भाषा में गद्यपद्यमय है और इस में भी अन्य ताम्रपत्रों के समान वे ही ९ श्लोक हैं।

यह ताम्रपत्र हाल ही में श्री युत रामेश्वर गौरीशंकर ओझा एम० ए० को देपालपुर (इंदौर राज्य) मे मिला है।[१] इस में जिस किरिकैका गाँव में की भूमि के दान का उल्लेख है वह इंदौर राज्य के देपालपूर परगने का करको गाँव है; जो चंबल के तट पर स्थित है।

इसमें का लिखा दान वि० सं० १०७९ की चैत्र सुदी १४ (ई० सं० १०२३ की ९ मार्च) को दिया गया था।

इस दान पत्र के दोनों पत्रों के नीचे भी राजा भोज के हस्ताक्षर हैं; जहाँ पर उसने अपना नाम भोजदेव ही लिखा है।

---

[१] श्रीयुत रामेश्वर ओझा के 'हिन्दुस्तानी' (अक्टोबर १९३१, पृ० ४९४-५१५) में प्रकाशित लेख के आधार पर ही यह विवरण दिया गया है।

राजा भोज के ०वि सं० १०७९ के ताम्रपत्र की नकल

पहला पत्र।

(१) ओं[1]—[॥] जयति व्योमकेशोसौ यः सर्गाय विभर्ति[2] तां। ऐंदवीं सिरसा[3] लेखां जगद्बीजांकुराकृतिं[4] ॥ [१॥]

(२) तन्वन्तु वः स्मराराते: कल्याणमनिसं[5] जटा:। कल्पान्त समयोद्दामतडिद्वलयपिंगला: ॥ [२॥]

(३) परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सीयकदेव पादानुध्यात परमभट्टारक-

(४) महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वाक्पतिराज देव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज-

(५) परमेश्वर श्री सिंधुराजदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोज दे-

(६) वः कुशली ॥ श्री मदुज्जयनी[6] पश्चिम पथकान्तः पाति किरिकैकायां समुपगतान्समस्तराजपु-

(७) रुषान्ब्राह्मणो[7]त्तरान्प्रतिनिवासि पट्टकिल जनपदादींश्च समादिशत्यस्तु वः संविदितं ॥ यथा

(८) श्रीमद्धारावस्थितैरस्माभिः पारद्धि[8]प्रभृतिकृतप्राणिवध-प्रायश्चित्त दक्षिणायां स्नात्वा चराचरगु-

(९) रुं भगवन्तं भवानीपतिं समभ्यर्च्च्य संसारस्यासारतां दृष्टा[9]वाताभ्र विभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-

---

[1] चिह्न विशेष द्वारा सूचित है। [2] बिभर्ति। [3] शिरसा। [4] जगद्बीजांकुराकृतिम्। [5] मनिशं। [6] ०दुज्जयिनी। [7] ०ब्राह्मणो०। [8] पारगविप्र०। [9] दृष्ट्वा।

(१०) मापातमात्र मधुरो विषयोपभोगः [।] प्राणास्तृणाग्र-जलबिंदु[१] समा नराणां धर्म्मस्सखा परमहो

(११) परलोक याने । [। ३॥] भ्रमत्संसार चक्राग्र धाराधारा मिमांश्रियं । प्राप्य ये न ददुस्तेषां पश्चात्तापः

(१२) परं फलमि (म) [॥४॥] (इ) ति जगतो विनश्वरं स्वरूप-माकलय्योपरि लिखित ग्रामात ग्रामसामान्य भूमे -[२]

(१३) श्चतुस्त्रंशत्यंश[३] प्र [स्थ] कं हल चतुष्टयसंवत्तो[४] स्वसीमातृणगोचरयूतिपर्य-न्तं सहिरण्यभागभो-

(१४) गं सोपरिकरं सर्व्वादाय समेत च । श्री मान्यखेट-विनिर्गताय । आत्रेय सगोत्राय । आत्रेयार्च्चना-[५]

(१५) स्वहस्तोयं श्री भोजदेवस्य [।]

दूसरा पत्र ।

(१६) नसस्यावाश्वेतित्रिः[६] प्रवराय[७] । वहवृच[८] शाखाय भट्ट मामेश्वरसुत ब्राह्मण[९]वच्छलाय । श्रुताध्यय-

(१७) न संपन्नाय ॥ (।) मातापित्रोरात्मनश्च पुण्य जसो[१०] भिवृद्धये अदृष्ट फलमंगीकृत्य चन्द्रा[११]र्काणर्वक्षिति-

(१८) समकालं यावत्परया भक्त्याशाशने नोदक[१२] पूर्व्वं प्रति-पादितमिति मत्वा यथा दीयमानभागभोगक-

(१९) हिरण्यादिकं देवब्राह्मण[१३]भुक्तिवर्जमाज्ञा श्रवणविधे यैर्भूत्वा सर्व्वमस्मै समुपनेतव्यं ॥ (।) सा-

---

[१] बिंदु० । [२] भूमे । [३] श्चतुस्त्रिंशत्यंश । [४] ०संवृत्तं । [५] इस पंक्ति का सम्बन्ध दूसरे पत्र की पहली पंक्ति से है । [६] ०श्यावाश्वे० । [७] त्रिप्रवराय । [८] बह्वृचा । [९] ब्राह्मण । [१०] पुण्ययशो० । [११] चंद्रार्का० । [१२] शासनेनो० । [१३] ब्राह्मण ।

(२०) मान्यं चैतत्पुण्यफलं बुध्वा[1] अस्मद्वंशजैरन्यैरपि भावि भोक्तृभिरस्मत्प्रदत्त धर्म्मादायोयमनुमन्तव्यः

(२१) पालनीयश्च ॥ (।) वहुभिर्व्वसुधा[2] भुक्ता राजभिस्स-गरादिभिर्य्य (भिः । य) स्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा

(२२) फलं ॥ [५] यानीह दत्तानि पुरा नरेंद्रैर्दानानि धर्म्मार्थ-जसस्कराणि[3]। निर्म्माल्यवान्ति प्रतिमानि तानि

(२३) को नाम साधुः पुनराददीत ॥ [६ ॥] इत्यस्मत्कुलक्रम-मुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमो-

(२४) दनीयं । लक्ष्म्यास्तडित्सलिलवुद्वुद[4] चंचलायाः दानं फलं परयसः[5]

(२५) परिपालनश्च[6] ॥ [७ ॥] सर्व्वानेतान्भविनः पार्थिवेंद्रान्भू यो भूयो याचते

(२६) राम भद्रस्सा (द्रः । सा) मान्योय धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भ-

(२७) वद्भिः ॥ [८ ॥] इति कमलदलाम्वुविंदु[7] लोलां श्रियमनु चिन्त्य मनुष्य जीवि-

(२८ तं च । स [क] ल मिदमुदाहृतं च वुध्वा[8] नहि पुरुषैः पर कीर्त्तयो विलोप्या [ः ॥ ९ ॥]

(२९) इति ॥ (।) सम्वत १०७९ चैत्र शुदि १४ स्वयमाज्ञा ॥ (।) मंगलं महा-

(३०) श्रीः ॥ (।) स्वहस्तोयं श्री भोजदेवस्य [॥]

---

[1] बुद्ध्वा । [2] बहुभिर्व्वसुधा । [3] यशस्कराणि ।
[4] बुद्बुद० । [5] परयशः । [6] परिपालनं च ।
[7] ०दलाम्बुबिंदु । [8] बुद्ध्वा ।

राजा भोज के वि० सं० १०७९ के दानपत्र का भाषार्थ ।

(यहाँ पर पहले के दानपत्रों में आई हुई इबारत के अर्थ को छोड़कर विशेष इबारत का अर्थ ही दिया जाता है ।)

पहले के दो श्लोकों में शिव की स्तुति है ।

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव, जो कि श्री सीयकदेव के पुत्र वाक्पतिराज के उत्तराधिकारी श्री सिन्धुराज का पुत्र है, श्री उज्जयिनो (प्रान्त) के पश्चिमी ज़िले किरिकैका गाँव में एकत्रित हुए सब राजकर्मचारियों और ब्राह्मणों सहित वहाँ के निवासियों तथा पटेलों आदि को आज्ञा देता है । तुम सब को मालूम हो कि धारा नगरी में रहते हुए हमने, विद्वान् ब्राह्मणों के भोजन के लिए की गई हिंसा के प्रायश्चित की दक्षिणा स्वरूप[1] (चंबल) नदी में स्नान करने के बाद भगवान् शंकर की पूजन करके और संसार की असारता को देख कर...[2] तथा जगत् के नाशवान् रूप को समझ कर, ऊपर लिखे गाँव के साथ की जमीन में से चौंतीस अंश समतल[3] भूमि, जो ४ हलों से जोती जा सके, और जो अपनी सीमा की घास तथा गोचर भूमि से

---

[1] महाभारत में लिखा है कि चंद्रवंशी नरेश रन्तिदेव के यहाँ सदा ही अगणित अतिथियों को भोजन कराया जाता था । इस कार्य के लिये उसने दो लाख रसोईदार नियत कर रक्खे थे । उन अतिथियों के भोजन के लिये होनेवाले पशुबध से एकत्रित चर्म से जो रुधिरधारा बहती थी उसी से चर्मण्वती (चंबल) नदी की उत्पत्ति हुई थी ।

(द्रोणपर्व, अध्याय ६७, श्लो० १-५)

[2] इसके आगे पूर्वोक्त दानपत्रों में लिखे गये संसार की असारता के सूचक वे ही दो श्लोक हैं ।

[3] इसके लिये प्रस्थक शब्द का प्रयोग किया गया है ।

भी युक्त है, मय आय के सुवर्ण, हिस्से, भोग की आमदनी, अन्य प्रकार की सब तरह की आय और सब तरह के हक्के, मान्यखेट से आए आत्रय, आर्चनानस और श्यावश्व इन तीन प्रवरों से युक्त आत्रेय गोत्र वाले, तथा बह्वृच शाखा के भट्ट सामेश्वर के पुत्र वेदपाठी वच्छल नामक ब्राह्मण को अपने माता पिता और अपने निजके पुण्य और यशकी वृद्धि के लिये, पुण्यफल को स्वीकार करके, चन्द्र, सूर्य, समुद्र और पृथ्वी रहे तब तक के लिये, पूर्ण भक्ति के साथ जल हाथ में लेकर, आज्ञा के द्वारा, दान दी है। ऐसा जान कर देवताओं और ब्राह्मणों के लिये नियत भाग को छोड़कर बाकी का सारा इसका लगान, आदि उसको देना चाहिए। हमारे बाद में होने वाले हमारे वंशके और दूसरे वंश के राजाओं को भी इसे मानना और इसकी रक्षा करना चाहिए।[1]

संवत १०७९ की चैत्र सुदि १४

यह स्वयं हमारी आज्ञा है। मंगल और श्रीवृद्धि हो।

यह स्वयं भोजदेव के हस्ताक्षर हैं।

राजा भोज के समय की अन्य प्रशस्तियां

(३) तिलकवाड़े के वि० सं० ११०३ के ताम्रपत्र में भी भोजदेव की प्रशंसा लिखी है। इससे अनुमान होता है कि उसका लिखवाने वाला श्री जसोराज भी शायद राजा भोज का सामंत था। (Proceedings and Transactions of the First Oriental Conference, Poona, Vol. II, pp. 319-26)

(४) कल्याण (नासिक जिले में भोजदेव के सामंत यशोवर्म्मा का एक दानपत्र मिला है। इस में भोज को कर्णाट, लाट, गुजरात, चेदि और कोंकण के राजाओं को जीतनेवाला लिखा है। यद्यपि इसमें

[1] इसके आगे अन्य दानपत्रों में लिखे वे ही ४ श्लोक दिए हैं।

संवत् नहीं है; तथापि स्वर्गीय विद्वान् राखालदास बैनर्जी इसका समय ई० स० १०५६ (वि० सं० ११११३) से पूर्व अनुमान करते हैं। (Annual Report of the Archaeological Survey of India, 1921-22, pp. 118, 119)

(५) 'सुभाषितरत्नभांडागार'[१] में दिए इस श्लोक से—

अस्य श्रीभोजराजस्य द्वयमेव सुदुर्लभम्।
शत्रूणां शृंखलैर्लोहं ताम्रं शासन पत्रकैः॥

अर्थात—राजा भोज के यहाँ, शत्रुओं को कैद करने के कारण लोहा, और दानपत्रों के देने के कारण ताँबा, ये दो वस्तुयें ही दुर्लभ हैं।

इस उक्ति के अनुसार कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वास्तव में राजा भोज ने अनेक दानपत्र लिखवाए थे। परन्तु कालान्तर से या तो वे नष्ट हो गए हैं, या अभी मालवे में शोध का कार्य न होने से अज्ञात अवस्था में पड़े हैं।

भोज से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य ग्रन्थ अथवा शिलालेख।

(६) ई० स० १९३० के दिसम्बर में पटने में हिस्टोरिकल रेकर्ड कमीशन का तेरहवाँ अधिवेशन और पुरानी वस्तुओं की प्रदर्शनी हुई थी। उस अवसर पर धार रियासत की तरफ से जो वस्तुएँ आई थीं उनमें की एक टूटे हुए शिलालेख की छाप के अन्त में लिखा था—

"इति महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव विरचित: कोद(एड:)।"

अर्थात्—यहाँ पर महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव का बनाया 'कोदण्ड' नामक काव्य समाप्त हुआ।

---

[१] पृ० १२१।

शिलालेख की इस छाप में ७६ पंक्तियाँ थीं और उनसे ज्ञात होता था कि इस प्राकृत काव्य की श्लोक संख्या ५५८ से अधिक रही होगी। परन्तु इस समय लेख का बहुत सा भाग नष्ट हो जाने से प्रत्येक श्लोक का कुछ न कुछ हिस्सा नष्ट हो गया है।

आगे उक्त काव्य की स्मृति के आधार[१] पर एक नमूना उद्धृत किया जाता है :—

"धवलो धवलो बुद्धसि भारं लहुअ खग्ग नीरधारा निवड इसो सेसु धेरि आण जहा......."

संस्कृतच्छाया :—

"धवलः धवलः वर्धयसि भारं लघुकखड्ग नीरधारा निविड ईषत् शेष धैर्याणां यथा......."

(७) धार रियासत से प्रदर्शनार्थ आई हुई वस्तुओं में दूसरी छाप एक अन्य लेख खण्ड की थी जिसमें कुल ८३ पंक्तियां थीं। परन्तु उनसे प्रकट होता था कि इस शिला पर खुदे प्राकृत काव्य की श्लोकसंख्या ३५५ से अधिक ही होगी। उनमें का ३०६ वाँ श्लोक इस प्रकार था :

"असि किरण रज्जुबद्धं जेणं जय कुंजरं तुमं धरसि जय कुंजरस्स थंभो ....॥३०६॥"

संस्कृतच्छाया :—

"असि किरण रज्जुबद्धं येन जय कुंजरं त्व धरसि जय कुंजर स्तंभः... ..."

---

[१] हमने श्रीमान् काशीनाथ कृष्णलेले से इस विषय में पत्र व्यवहार-किया था। यद्यपि कारणवश हम उक्त काव्य के अधिक और शुद्ध उदाहरण देने में कृतकार्य न हो सके तथापि उपर्युक्त अवतरणों के लिए धार रियासत और उसके ऐतिहासिक विभाग के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

अनुमान होता है कि इसमें जिस 'जयकुंजर स्तम्भ' का उल्लेख है वह सम्भवत: भोज की लाट ही होगा।

भोज के समकालीन कवि

(८) शीलाभट्टारिका

औफ्रैट (Aufrecht) ने 'शार्ङ्गधर पद्धति' में एक (पुष्पिताग्रा) श्लोक[1] उद्धृत किया है :--

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां
यदिह जरास्वपिमान्मथा विकाराः।
तदपि च न कृतं नितम्बिनीनां
स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा॥

इस के पूर्वार्ध को वह (Aufrecht) 'शीला-भट्टारिका' और उत्तरार्ध को 'भोज' का बनाया हुआ बतलाता है। इससे 'शीलाभट्टारिका' का भोज के समय होना सिद्ध होता है।[2]

(९) चित्तप

'सुभाषित रत्न भाण्डागार' में यह श्लोक दिया है :—

वल्मीकि प्रभवेण रामनृपतिर्व्यासेन धर्मात्मजो
व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्कोनृपः।
भोजश्चित्तप-बिल्हण-प्रभृतिभिः कर्णोऽपि विद्यापतेः
ख्यातिं यान्ति नरेश्वराः कविवरैः स्फारैर्न भेरीरवैः॥

इससे प्रकट होता है कि 'चित्तप' कवि भी भोज का सम-कालीन था।

---

[1] यह श्लोक भर्तृहरि के 'शृङ्गारशतक' में भी मिलता है।
(देखो श्लोक २७)

[2] 'सुभाषितावलि' Introduction पृ० १२०।

(१०) नोट

राजा भोज के दानपत्रों में मालवे का प्रचलित कार्तिकादि संवत मान लेने से उसके वि० सं० १०७८ की चैत्र सुदी १४ के ताम्रपत्र की उक्त तिथि के दिन ई० स० १०२२ की १९ मार्च होगी।

(११) सम्राट् भोज

कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि राजा भोज एक सम्राट् था और उसका राज्य करीब करीब सारे ही भारत वर्ष पर था।[१] उसका अधिकार पूर्व में डाहल (चेदि), कन्नौज, काशी, बंगाल, बिहार, उडीसा, और आसाम तक; दक्षिण में विदर्भ,[२] महाराष्ट्र, कर्णाट और कांची तक; पश्चिम में गुजरात, सोराष्ट्र और लाट[३] तक; तथा उत्तर में चित्तौड़,[४]

---

[१] आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयाद्वा
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन ।
उन्मूल्योर्वीभरगुरुगणा लीलया चापयष्ट्या
क्षिप्ता दिक्षु क्षितिरपि परां प्रीतिमापादिता च ॥१७॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५)

[२] 'चम्पू रामायण' में भोज की उपाधि 'विदर्भराज' लिखी है।

[३] चेदीश्वरेन्द्ररथतोग्गल भीम मुख्यान्
कर्णाटलाटपति गुर्जरराट् तुरुष्कान् ।
यद्भृत्यमात्रविजितानवलोक्य मौला-
दोष्णां बलानि कलयन्ति न योद्धृलोकान् ॥१९॥

(एपिग्राफ़िया इण्डिका, भा० १, पृ० २३५-२३६)

[४] नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भा० ३, पृ० १-१८ ।

साँभर[1] और काश्मीर[2] तक था। इसीसे उसने अपने राज्य की पूर्वी सीमा पर (सुन्दरवन में) सुण्डीर, दक्षिणी सीमा पर रामेश्वर, पश्चिमी सीमा पर सोमनाथ और उत्तरी सीमा पर केदारेश्वर के मन्दिर बनवाए[3] थे। परन्तु उनका अनुमान मान लेने में हम अपने को असमर्थ पाते हैं; क्योंकि एक तो इसका उल्लेख केवल उदयादित्य की प्रशस्ति में ही मिलता है, जिसे विद्वान लोग, कई कारणों से, बाद की लिखी गई मानते हैं। दूसरा यदि वास्तव में गुजरात और दक्षिण के सोलङ्की नरेश मालव नरेश भोज के आधीन हो गए होते तो फिर उनके और मालवे वालों के बीच युद्ध जारी न रहता। यही शङ्का भोज द्वारा चेदि (डाहल) के हैहयों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के विषय में भी उत्पन्न होती है। रही चारों दिशाओं में मन्दिर और काश्मीर में कुण्ड बनवाने की बात, सो इससे यह मान लेना कि उक्त स्थानों पर भोज का ही आधिपत्य था ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि ऐसे धार्मिक कार्य तो मित्र राज्यों या तटस्थ राज्यों में भी किए जासकते थे। इनके लिये उन देशों को अधीन करने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसे उदाहरण आज भी अनेक मिल सकते हैं।

भोज के राज्य विस्तार के विषय में हमारे विचार यथा स्थान इसी पुस्तक में लिखे जा चुके हैं।

[1] 'पृथ्वीराजविजय,' सर्ग ५, श्लो० ६५-६७।

[2] 'राजतरंगिणी,' तरङ्ग ७, श्लो० १९०-९३।

[3] केदार-रामेश्वर-सोमनाथ-सुण्डीर-कालानल-रुद्रसत्कैः।
सुराश्रयैर्व्याप्य च यः समन्ताद्यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार॥२०॥
(एपिग्राफिया इण्डिका, भा० १, पृ० २३६)

इसी प्रकार भोजपुर (भोपाल) में 'भोजेश्वर' और धार में 'धारेश्वर' के मन्दिर भी इसी ने बनवाए थे।

उदयादित्य का कर्ण को हराना

नागपुर की प्रशस्ति (एपिग्राफिया इण्डिका भा० २ पृ० १८५) में उदयादित्य का कर्ण से अपने राज्य का उद्धार करना लिखा है । इसी प्रकार 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य (सर्ग ५, श्लो० ७६ ७८) में उदयादित्य का गुजरात के राजा कर्ण को हराना लिखा है ।

उदयादित्य वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) में मालवे की गद्दी पर बैठा था और गुजरात का राजा कर्ण वि० सं० ११२० (ई० स० ११६३) में राज्याधिकारी हुआ था । इसलिये सम्भव है उदयादित्य ने पहले चेदि नरेश कर्ण द्वारा दबाया हुआ अपने पूर्वजों का राज्य वापिस छीना हो और बाद में गुजरात नरेश कर्ण को हराकर उसके पिता भीमदेव प्रथम की मालवे पर की चढ़ाई का बदला लिया हो।

अनुक्रमणिका

अ

आ

म

य

श

स

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	२१	तृसामरा	नृसामरो
६	६	विशेष	विशेष बातें
,,	१२	के जेल	के लेख
,,	२१	१०१७	६६८
१०	११	सालव	मालव
१२	१६	सिंहण	सिंघण
,,	२७	त्रिलुलुलायु	त्रिलुलायु
१३	२४	उसका	इनका
१४	२	परके राज्य	परके परमार राज्य
,,	१८	प्रल्हादनदेव	प्रह्लादनदेव
१६	१७	(वाक्यति	(वाक्पति
२०	२५	६६	६८
३१	१२	किस	किसी
४४	१५	भूकीमि	की भूमि
५२	२४	१०७५	१०८५
५४	२०	आषादि	आषाढादि
५६	२५	१८ वीं	१० वीं
५७	३	सावक्रोश्रा	साव्कुक्रोश्रा
६०	१७	और केंकन	और काश्मीर से कोंकन
६६	२३	दयद्रि	दयाद्रि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७५	२३	रोकर	रोककर
७६	२०	सभ्य	क्षुभ्य
८०	१८	विश्वस्तागो	विश्वस्तांगो
८१	२१	वद्ध	वर्द्ध
८२	१	धारा	धारा[२]
८५	१	झोर्ज	झोज
८६	१६	व्याध्य	व्याप्य
९१	२२	कल्वाणपुर	कल्याणपुर
१०४	२२	......	...निस्सन्देह हो यह समुद्रगुप्त के समान एक असाधारण योग्यता वाला नरेश था।
१११	१२	येन	×
११५	२४	स्त्रीकोश	स्त्रीक्रोश
११७	२१	का उल्लेख	उल्लेख
११९	१९	पर्वाण	पर्वाणि
,,	२३	ब्राह्मणों०	ब्राह्मणो०
१२०	१८	वेल्लुवल्ल	वेल्लुवल्ल
१२१	१२	चचलाया	चंचलाया
,,	१२	सप्पपरि	सप्परि
,,	२१	मशा	माशा
१२४	१५	एकचित्र	एकचित्त
१२९	१	अधा	अंधा
१३५	५	संस्कराः	संकराः
,,	८	संस्थिाः	संस्थिताः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३७		इस पृष्ठ के मैटर का संबंध पृ० १३६ के फुटनोट १ से है।	
१३८		इस पृष्ठ के मैटर का संबंध पृ० १३७ से है।	
१३६		इस पृष्ठ के मैटर का संबंध पृ० १३६ पर की वंशावली से है।	
१४०	२६	१३६२	१३६१
१४५	२३	निहत	निहित
१४८	१७	वशाह्नी	वशाह्नी
१५१	१	कृशनु	कृशानु
१५५	८	मादृशा	मादृत्रा
१५६	१२	पराम्परा	परम्परा
१६०	४	एकछत्र	एकच्छत्र
१६५	२५	इसमें	इस
१६७	६	सामार्थ्या	सामर्थ्या
,,	६	न्माहिषी	न्महिषी
१७२	६	जदा	जगदा
१७६	३	पुर्वाह्णे	पूर्वाह्णे
,,	३	पराह्निकम्	पराह्निकम्
१८६	२०	हिशाम	हशाम
१६१	१२	पुष्पभूनि	पुष्पभूति
२०३	४	गोपत्रे	गोपत्रे
२०८	१६	उनमें	उसमें
२१०	२४	नवा	नवीं
२१३	१३	कन्नाज	कन्नौज
२२०	२०	हाराखभिन	हरिखिभिर्न
,,	२०	चवाष्टभि-	चैवाष्टभि-
,,	२१	द्वाद्षाभिगुहो	द्वादशाभिर्गुहो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२०	२१	दशाकद्दुन्हुन	दशाकद्दुन्हेन
२२१	२४	११५७	११५०
२२५	६	(सत्ताईसवाँ)	(छब्बीसवाँ)
२२६	१	(इक्कीसवें)	(बीसवें)
,,	५	भो	×
,,	६	भी	परभी
२२६	२५	लक्ष्मणसिंह	लक्ष्मसिंह
२३४	२४	करीब	पहले
२३५	२२	मारडाला	हराया
२३८	७	(कारण)	(करण)
,,	१६	पद्दाहि	पद्न्वाहि
२४३	१८	अस्पष्ट	अर्थस्पष्ट
,,	१६	सामान	समान
२४४	११ और १६	जीवमित्योज	जीव इत्योज
२५१	१२	गुणोपादन	गुणोपादान
,,	१५	मानप्राशः	मानप्रकाशः
,,	२०	प्रकाशनम्:	प्रकाशनम्
२६२	७	अच्छ्र य	अच्छी बुद्धिवाला
,,	१६	प्रतिष्ठावधिः	प्रतिष्ठाविधिः
२६५	१	सूत्रधार	सूत्रधार[1]
२६७	२२	कों	कीं
२६६	२०	वृत्तानि	प्रवृत्तानि
,,	२०	प्रवर्त्मना	वर्त्मना
२७१	७	चलाने देने से	चलादेने से
२७३	८	इन्द्रोवाल	इन्द्रोवाल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७३	१६	गुणे	गुणेन
२७६	२	करते	करते समय
२८३	६	प्रारंभे	प्रारंभे
२८५	४	ष्ठं	षष्ठं
,,	१४	स्कौतुहलावग्रे	स्कौतूहलावग्रे
२९६	३	यस्याखलं	यस्याखिलं
,,	४	वस्फुरत चेतस	विस्फुरति चेतसि
,,	५	नृपनः स शवा	नृपतिः स शिवा
२९७	२-३	पार्वती सहित सोमेश्वर महादेव को सोम (रस या यज्ञ) और अर्ध शशाङ्क को धारण करने वाले शिव को	सोम (रस या यज्ञ) और अर्ध शशाङ्क को धारण करनेवाले पार्वती सहित सोमेश्वर महादेव को
,,	८	शिवस्वरूपेति ।	शिवस्वरूपे पुराणानां मुख्यतस्तात्पर्य्यप्रदर्शन-मुखेन तदुपदिशति, शिव रूपेति ।
२९८	३-४	( )	×
२९९	१४	मूर्द्धा	मूर्द्ध्ना
३०१	२	भोजदेवनृपसंग्रह सवसारं	श्रीभोजदेवनृपसंग्रहसर्वसारं
३०२	१	शास्त्र	शास्त्रके
३०५	२२	स्वमर्थो	स्वमथो
३०६	२३, २४	इस शब्द का अर्थ मोक्ष होगा	×
३१४	७	गुजरात	चेदि
३१५	१	इस की पुष्टि 'पृथ्वीराज	'पृथ्वीराज विजय' में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		विजय' से भी होती है। उसमें लिखा	लिखा...(सर्ग ४, श्लो, ७६-७८)
३२३	८	समाधि	समधि
३३३	८	चाहान	चौहान
३३४	२०	किमा रंगदेव ने उस गोगादेव	कि सारंगदेव ने उस गोगदेव
३३६	६	महिपाल	महीपाल
,,	१५	(११४४)	(११७४)
,,	१७	प्रल्हादेव	प्रह्लादनदेव
३३७	५	चच्च	चच्च (कंवरसिंह का पौत्र)
,,	७	नवमाहसाङ्क	नवसाहसाङ्क
३४६	२२	कि	किं
३४८	१७	पद	पाद
३५२	६	यस्यां	यस्याः
३५५	१८	फिर भाज	फिर भोज
३५७	२१	पत्र	पात्र
३६०	६	कद	कूद
३६१	४	देश	देश से
,,	१४	देते	देता

परिशिष्ट

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	पत्र	पत्रों
२	३	बटमा	बेटमा
,,	२१	[क्य]	[क्प]
,,	२४	जगद्वीजा	जगद्बीजा
३	२	पद्मसमा	पद्मसम
,,	४	न्याक्षयो	म्याक्षयो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	६	न्यायं	न्याचर्य्य
४	२	पर्व्वांणि	पर्व्वणि
,,	२१	बुद्‍ध्वा	बुद्ध्वा
८	२०	दृष्टा	दृष्ट्वां
,,	२३	दृष्टा	दृष्ट्वा
६	२	नराणं	नराणां
,,	६	भूमे	भूमेः
,,	१६	अद्दष्ट	अदृष्ट
,,	२३	बृह्‍बृधा	बहुधा
१२	३	श्यावश्र	श्यावश्व
१४	५	काव्य की	काव्य का
१६	११	मलयागिरि	मलयगिरि

इनके अलावा पुस्तक में कहीं कहीं 'ए' के स्थान में 'ये' छप गया है, कहीं कहीं समस्त पदों के बीच में जगह छूट गई है, और कहीं कहीं अक्षरों के ऊपर की मात्राऐं नहीं छपी हैं। पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करेंगे।